ISSN: 2249-2577

वर्ष 11 अंक 1
जनवरी-जून, 2019

# लोक प्रशासन

भारतीय लोक प्रशासन संस्थान नई दिल्ली
की अर्धवार्षिक शोध पत्रिका

संपादक
प्रो. एस. एन. मिश्र

# भारतीय लोक प्रशासन संस्थान

**अध्यक्ष**

निदेशक, आई. आई. पी. ए.,
नई दिल्ली

**सम्पादक**

प्रो. एस. एन. मिश्र
नोएडा

## सम्पादक मंडल

प्रो. के. के. पाण्डेय
आई. आई. पी. ए., नई दिल्ली

प्रो. अमिता सिंह
जे.एन.यू., नई दिल्ली

प्रो. श्रीप्रकाश सिंह
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डा. प्रवीण कुमार
प्राचार्य, श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली

डा. अशोक कुमार पाण्डेय
भूतपूर्व आई.ए.एस., नई दिल्ली

**पाठ-संशोधक**

स्नेहलता



**वार्षिक शुल्क** : आजीवन सदस्य-रू. 150, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 200, संस्थागत ग्राहक-रू. 300
**सामान्य अंक** : आजीवन सदस्य-रू. 75, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 100, संस्थागत ग्राहक-रू. 150
**विशेषांक** : आजीवन सदस्य-रू. 100, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 200, संस्थागत ग्राहक-रू. 200

# भारतीय लोक प्रशासन संस्थान

इन्द्रप्रस्थ एस्टेट, रिंग रोड, नई दिल्ली–110002

# Ykkd i’kkluu

## vuØef.kdk


| | i"B |
|---|---|
| lEikndh; | v |
| Yk[k | |
| लोकनीति पर सामाजिक आन्दोलनों का प्रभाव<br>श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी | 1 |
| भारत में राष्ट्रीय एकीकरणः सांस्कृतिक विरासत, समस्याएँ एवं समाधान<br>शशि भूषण कुमार | 8 |
| ग्राम सभा : भारतीय लोकतंत्र का प्रथम सोपान<br>गाँधीजी राय एवं शेखर कुमार | 24 |
| भारत में लोक नीतियों का क्रियान्वयन<br>सुरेन्द्र कुमार | 41 |
| आधुनिक भारत में शहरी सुशासनः 74वाँ संविधान संशोधन के परिपेक्ष्य में<br>उमेश कुमार | 48 |
| लोकनीति और उनके प्रतिमान<br>सुमन कुमार शर्मा | 58 |
| मध्यप्रदेश में आदिवासी महिलाओं का अध्ययन और उदारीकरण का प्रभाव<br>दुर्गेश तेली | 66 |
| लोकनीति एवं नीति निर्मात्री संस्थाएँ<br>अम्बुजेश कुमार मिश्र | 82 |
| सुशासन और लोकनीति<br>महेश कुमार सिंह | 89 |
| विकासशील देशों में विकास प्रशासन की भूमिका<br>स्निग्धा त्रिपाठी | 97 |

i"B

प्रवासी भारतीय एवं भारत सरकार– संक्षिप्त अध्ययन
शीला कुमारी 104

ग्रामीण विकास की योजनाओं में भारत सरकार का योगदान :
एक मूल्यांकन
मो. ताहिर अन्सारी 123

औपनिवेशिक प्रशासन तथा बाढ़ नियंत्रण : उत्तर बिहार का विशेष सन्दर्भ
निशा कुमारी 129

बांग्लादेश में इस्लामिक उग्रवाद का बदलता स्वरूप और उसकी चुनौतियाँ
रवीन्द्र कुमार मीना 139

भारत में निर्धनता की समस्या : चुनौतियाँ और समाधान
राजबीर सिंह दलाल एवं जगजीत सिंह 147

# y[kd

प्रो. श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी – आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

डॉ. शशि भूषण कुमार – सह-आचार्य, स्नातकोत्तर, राजनीति शास्त्र विभाग, आर. एन. महाविद्यालय, हाजीपुर, बिहार।

प्रो. गाँधीजी राय – सेवा निवृत्त, आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार।

डा. शेखर कुमार – प्राध्यापक, सह-प्रशासक महाराजा लॉ कॉलेज, आरा, बिहार।

डॉ. उमेश कुमार – आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, लोक प्रशासन विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार – अध्यक्ष, राजनीति शास्त्र विभाग, बी. एस. कॉलेज, दानापुर, पटना, बिहार।

डॉ. सुमन कुमार शर्मा – सह-आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, राजकीय आर्ट्स, पी.जी. कॉलेज, सीकर, राजस्थान।

डॉ. दुर्गेश तेली – शोध छात्र, राजनीति शास्त्र विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

श्री अम्बुजेश कुमार मिश्र – शोध छात्र, राजनीति शास्त्र विभाग, दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

शीला कुमारी – शोध छात्रा, राजनीति शास्त्र विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार।

स्निग्धा त्रिपाठी – शोधार्थी, राजनीति शास्त्र विभाग, दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

श्री महेश कुमार सिंह – शोध छात्र, राजनीति शास्त्र विभाग, दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

मो. ताहिर अन्सारी – शोध छात्र, राजनीति शास्त्र विभाग, दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

निशा कुमारी – शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

प्रो. राजबीर सिंह दलाल – आचार्य, लोक प्रशासन विभाग, चौधरी देवी लाल विश्वविद्यालय, सिरसा, हरियाणा।

श्री जगजीत सिंह – शोधार्थी, लोक प्रशासन विभाग, चौधरी देवी लाल विश्वविद्यालय, सिरसा, हरियाणा।

श्री रविन्द्र कुमार मीना – शोध छात्र, राजनीति शास्त्र विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली।

# lEikndh;

कौटिल्य ने नीति के महत्त्व को बताते हुए कहा है कि आत्मगुण सम्पन्न राजा छोटे देश का स्वामी होते हुए भी प्रभुत्व-सत्ता की प्रकृतियों से युक्त होकर अपनी 'नीति' के बल से सारी पृथ्वी को जीत सकता है और कभी पराजित नहीं होता।

'नीति' का अध्ययन जिस विषय के रूप में किया जाता है उसे नीति विज्ञान (Policy Science) कहा जाता है। राजनीति विज्ञान के चिन्तक एवं नीति विज्ञान को आगे लाने में हैराल्ड लॉसवेल (Harold D. Lasswell) का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। लॉसवेल ने सर्वप्रथम 1951 में अपने प्रकाशित लेख 'The Policy Orientation' (नीति अभिविन्यास) में 'Policy Science' (नीति विज्ञान) शब्दों का प्रयोग कर नीति विज्ञान की अवधारणा का प्रतिपादन किया।

लोकनीति का निर्माण शून्य में नहीं होता है। नीति का निर्माण सरकार अथवा शासन की सबसे महत्वपूर्ण क्रियाओं में से एक है। इसे लोक प्रशासन एवं राजनीति का केन्द्रीय तत्व माना जाता है क्योंकि नीति निर्माण प्रक्रिया में सरकार के तीनों अंग– विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका एक-दूसरे से सम्बद्ध होते हैं। लोक नीतियाँ किन्हीं मुद्दों अथवा एजेण्डा पर आधारित होती हैं। चूँकि भारत एक लोककल्याणकारी राज्य है तथा संसदीय व्यवस्था की शासन प्रणाली को अपनाते हुए लोकतंत्र का प्रहरी है जिसमें अधिकतम लोगों के कल्याण की विचारधारा को ध्यान में रखते हुए किन्हीं समस्याओं, मुद्दों, कार्यक्रमों, योजनाओं पर नीति बनाई जाती है।

नीति निर्माण के दो मार्ग हैं– एक तो जनता के द्वारा उनके निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से जो विधानमण्डल तथा मंत्रिमंडल में होते हैं और दूसरा प्रशासनिक तन्त्र द्वारा उनके अपने ही उत्तम माध्यम से। इन दोनों मार्गों का मिलन स्थल मंत्रिमंडल होता है। सभी देशों में नीति निर्माण की एक निर्धारित प्रक्रिया होती है। नीति के निर्माण में संवैधानिक घटकों के साथ-साथ गैर-संवैधानिक घटक भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। लोक नीति का क्षेत्र व्यापक है और नीतियाँ शासन के तीनों स्तरों पर अपने-अपने विषय क्षेत्र में निर्मित होती हैं। ये तीन स्तर हैं– संघीय स्तर, राज्य स्तर और स्थानीय स्तर। संघ और राज्यों के कार्यों में सन्तुलन एवं समन्वय बनाये रखने के लिए तीन सूची हैं– संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची, जिससे नीति निर्माण में स्पष्टता एवं एक सीमा बनी रहे।

लोक नीति मात्र सरकार का तकनीकी कार्य ही नहीं है वरन् यह एक जटिल - प्रक्रियात्मक प्रक्रिया है, जो विभिन्न प्रकार की पारिस्थितीय प्रवृत्तियों के द्वारा प्रभावित होती है, जैसे कि सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक इत्यादि के द्वारा। ये पारिस्थितीय कारक तत्व 'नीति संदर्भ' निर्धारित करते हैं तथा हर

नीति को भिन्न-भिन्न प्रकार से परिभाषित एवं निर्मित करते हैं, साथ ही साथ उसके प्रभावों को भी नियंत्रित करते हैं। यही कारण है कि विकसित देशों की नीतियाँ विकासशील देशों से भिन्न हैं। ऐसी नीतियाँ जो एक प्रशासनिक व्यवस्था मे सफल हैं, वे आवश्यक नहीं है कि अन्य प्रशासनिक व्यवस्थाओं में भी सफल होंगी क्योंकि हर प्रशासनिक व्यवस्था की अपनी परिधि है, जो उसकी विशेषताओं को सीमित करती है।

सरलतम् शब्दों में लोकनीति निर्माण में नीति एक वृहद् कथन है जो भविष्य के उद्देश्यों, अपेक्षाओं को प्रतिबिम्बित करता है तथा मार्गदर्शन करता है कि इन उद्देश्यों तक कैसे पहुँचा जा सकता है।

*श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी* ने अपने लेख में भारत में लोक नीतियाँ किस प्रकार से सामाजिक आन्दोलनों से प्रभावित होती रहती हैं, तथा सामाजिक आन्दोलन सदैव प्रशासन पर नई नीतियों को क्रियान्वित करने के लिये दबाव डालते रहते हैं, इसका उल्लेख किया है। इस शोध पत्र में किसान आन्दोलन, कामगार आन्दोलन, नारी आन्दोलन, दलित और जनजातीय आन्दोलनों के लोक नीतियों पर पड़ने वाले प्रभावों का भी विशेष रूप से विवेचन किया गया है।

21वीं सदी के भारत के सम्मुख अनेक गंभीर समस्याओं में से एक राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या है। राष्ट्रीय एकीकरण एक बहु आयामी अवधारणा है। इसके राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक इत्यादि अनेक पक्ष हो सकते हैं, फिर भी मूल रूप में यह ऐसी सामुदायिक या राष्ट्रीयता की भावना है जो विविध समुदायों को एकता के सूत्र में बांधती है ताकि सांस्कृतिक, जातियों भाषाओं व धर्मों के अन्तर को भावनात्मक दृष्टि से सम्पूर्ण इकाई के रूप में ग्रहण किया जा सकें। इसका विश्लेषण *शशि भूषण कुमार* ने अपने लेख में बखूबी किया है।

ग्राम सभा भारतीय लोकतंत्र का प्रथम सोपान है। इसका विश्लेषण *गांधीजी राय* व *शेखर कुमार* ने अपने लेख में किया है कि कैसे ग्राम सभा के मार्ग को विभिन्न समस्याएं अवरूद्ध कर रहीं हैं परन्तु इसके बावजूद ग्रामीण विकास प्रक्रिया में ग्रामीण जनों की भागीदारी सुनिश्चित करने तथा सत्ता के विकेन्द्रीकरण की दृष्टि से ग्राम सभा एक महत्वपूर्ण संस्था के रूप में उभर रही है।

सरकार विभिन्न प्रकार की नीतियों व कार्यक्रमों का निर्माण करती है। जब नीति सरकार बनाती हैं तो उसे लोकनीति कहते हैं। सरकार सामाजिक-आर्थिक विकास हेतु विभिन्न प्रकार की नीतियों का निर्माण करती है। किसी भी नीति की सफलता या विफलता इसके क्रियान्वयन पर ही निर्भर करती है। अतः विकासशील देशों के पिछड़ेपन का एक प्रमुख कारण नीतियों एवं कार्यक्रमों का प्रभावी क्रियान्वयन न होना है। यह *सुरेन्द्र कुमार* ने अपने लेख में प्रस्तुत किया है।

आधुनिक भारत में शहरी सुशासन का अर्थ शहरी क्षेत्र के लिए सरकारी तंत्र की व्यवस्था है। स्थानीय प्रशासन कस्बे, नगर और महानगर की प्रगति के लिए

एक महत्वपूर्ण संस्था है। *उमेश कुमार* ने अपने लेख में 74वें संविधान संशोधन के परिपेक्ष्य से शहरी सुशासन की व्याख्या की है कि किस प्रकार युवा पीढ़ी भ्रष्टाचार के विरूद्ध संघर्षरत् हो जाये। इससे स्वप्रशासन अध्यक्ष देश का सही ढंग से जनता के हित में कार्य कर सकेगा।

*सुमन कुमार शर्मा* के लेख का मुख्य उदेश्य लोकनीति और इसके प्रतिमान का सारगर्भित विश्लेषण प्रस्तुत करना है। लोकनीति एक अनुसंधान के रूप में बीसवीं शताब्दी के मध्य दशक के प्रारम्भ में उद्भवित हुई और वर्तमान दैनिक जीवन और शैक्षणिक परिवेश में लोकनीति एक प्रचलित धारणा बन गयी है।

अपने लेख में *दुर्गेश तेली* ने मध्य प्रदेश में आदिवासी महिलाओं का अध्ययन और उन पर उदारीकरण के प्रभाव के बारे में लिखा है। आदिवासी जनजातीय समुदाय मुख्यतः जंगलों, पहाड़ों में रहना पसंद करते हैं। इनका व्यवसाय व आजीविका यहीं से संसाधनों के द्वारा चलती है। हम उदारीकरण के संदर्भ में आदिवासी समुदायों की महिलाओं की स्थिति के बारे में जानने का प्रयत्न करेंगे।

जनता की विभिन्न माँगों और समस्याओं के समाधान के लिये सरकार जो नीतियाँ बनाती हैं उन्हें लोकनीति कहा जाता है। यह सरकार की महत्वपूर्ण गतिविधि है, क्योंकि यह नागरिकों के जीवन को प्रभावित करती है। लोकनीति के निर्माण के लिये विभिन्न संस्थायें सहयोगी की भूमिका निभाती हैं। जिनके अभाव से इन नीतियों का निर्धारण नहीं हो सकता। इसका विवेचन *अम्बुजेश कुमार मिश्र* ने प्रस्तुत किया है।

सुशासन और लोकनीति वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में विकास के निर्णायक एवं अनिवार्य घटक के रूप में विद्यमान है। सुशासन का प्रत्यक्ष सम्बन्ध किसी की शासन प्रणाली के स्वरूप से न होकर जनता को उपलब्ध कराये जाने वाली गुणवत्तायुक्त संसाधनों से है इसलिये सरकार द्वारा ऐसी नीतियाँ बनाई जायें जो सुशासन के लिए जरूरी हो क्योंकि इन्हीं नीतियों के प्रभावी कार्यान्वयन से हम सुशासन को उपलब्ध करेगें। यह *महेश कुमार सिंह* ने अपने लेख में बताने का प्रयास किया है।

विकास प्रशासन लोक प्रशासन की नूतन विद्या है। यह एक प्रगतिशील व परिवर्तनशील अवधारणा है। वर्तमान समय में विकासशील देशों में विकास प्रशासन मात्र नीति कार्यान्वयन तक सीमित न रहकर जन्म से लेकर मृत्यु तक के क्रमिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। जिससे मानव व समाज का सर्वांगीण विकास सभंव हो सकेगा। इसका *स्निग्धा त्रिपाठी* ने अपने लेख में विवेचन किया है।

प्रवासी भारतीयों में भारतीय मूल के लोग और प्रवासी भारतीय शामिल हैं। जिन्हें भारत और इसके आंतरिक मूल्यों का विचार एक आम सूत्र में बांधे हुए है।

प्रवासी भारतीयों ने अपने आवास के देशों की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारत के पास वर्तमान में 25 मिलियन का एक सशक्त प्रवासी भारतीय समुदाय है। यही कारण है कि प्रवासी आबादी के महत्व को देखते हुए इनके साथ भारत सरकार द्वारा एक संस्थागत ढाँचा बनाने का प्रयास किया जा रहा है। इसी का विश्लेषण *शीला कुमारी* ने अपने लेख में किया है।

*मो० ताहिर अन्सारी* के लेख में ग्रामीण विकास की योजनाओं में भारत सरकार के योगदान तथा मनरेगा, प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना, प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, डिजिटल इंडिया आदि योजनाओं का उल्लेख किया गया है। इसके माध्यम से भारत सरकार द्वारा ग्रामीण विकास की समकालीन योजनाओं को विस्तृत ढंग से समझा जा सकता है।

औपनिवेशिक प्रशासन की यह मान्यता थी कि नदियों के बहाव को नियंत्रित किया जाना चाहिए। जिसके फलस्वरूप नदियों पर व्यापक रूप से तटबंधों तथा अन्य संरचनाओं का निर्माण किया गया। औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा यह प्रयास अपने निहित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया गया जिसका स्थानीय जन-जीवन पर व्यापक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। *निशा कुमारी* का लेख भारत में औपनिवेशिक प्रशासन के बाढ़ नियंत्रण के विभिन्न प्रयासों के वर्णन के माध्यम से पर्यावरण के औपनिवेशीकरण तथा विशेष रूप से नदियों के औपनिवेशीकरण का विश्लेषण करने का एक प्रयास है।

वर्तमान समय में बाग्लादेश इस्लामिक उग्रवाद के एक नए केन्द्र के रूप में उभरा है जिसका ज्वलंत उदाहरण ढाका में 1 जुलाई 2016 के आर्टिशन कैफे पर हुए हमले के रूप में देखा जा सकता है। देश में समकालीन इस्लामिक उग्रवाद के इस स्वरूप को उभारने में वस्तुतः कई कारकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा, लेकिन इनमें सबसे महत्वपूर्ण कारक घरेलू राजनीतिक दशा, विशेष इस्लामिक संस्कृति की उपज तथा वैश्विक परिदृश्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यह *रविन्द्र कुमार मीना* ने अपने लेख में प्रस्तुत किया है।

भारत की प्रमुख समस्याओं में से एक गरीबी है। यह एक आर्थिक और सामाजिक दोनों समस्या है। वर्तमान समय में गरीबों को आंकना भी एक नई चुनौती है। क्योंकि लोक नियंत्रण आधारित संसाधन लगातार कम हो रहे हैं। गरीबी को मिटाना संभव है परन्तु इच्छाशक्ति नहीं है। अवसरों और विकल्पों का अभाव ही गरीबी है। इसका विवेचन *राजबीर सिंह दलाल* एवं *जगजीत सिंह* ने अपने लेख में प्रस्तुत किया है।

— संपादक

# लोकनीति पर सामाजिक आन्दोलनों का प्रभाव


## श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी



***lkjk'k*** *लोक नीतियाँ सामाजिक आन्दोलनों से प्रभावित होती रहती हैं। सामाजिक आन्दोलन सदैव प्रशासन पर नई नीतियों को क्रियान्वित करने के लिए दबाव डालते रहते हैं। सामाजिक आन्दोलन किसी भी देश में सामाजिक परिवर्तन और सरकार की नीतियों को परिवर्तित करने का सशक्त माध्यम है। प्रस्तुत शोध-पत्र, में भारत में लोक नीतियाँ किस प्रकार से सामाजिक आन्दोलनों से प्रभावित होती हैं, इसका उल्लेख किया गया है। इस शोध पत्र में किसान आन्दोलन, कामगार आन्दोलन, नारी आन्दोलन, दलित और जनजातीय आन्दोलनों के लोक नीतियों पर पड़ने वाले प्रभावों का विशेष रूप से विवेचन किया गया है।*


### प्रस्तावना

लोकनीति एक निश्चित परिवेश के अन्तर्गत एक व्यक्ति समूह अथवा सरकार की कार्यविधि की प्रस्तावित प्रक्रिया है, जिसका लक्ष्य किसी विशिष्ट उद्देश्य को प्राप्त करना है। सामान्य रूप से लोकनीति का प्रयोग नियम, प्रथा-परम्परा, रीति-रिवाज एवं विनिश्चय के रूप में किया जाता है किन्तु वास्तविक अर्थ में यह इससे अलग है। नियम, करने एवं न करने योग्य कार्यों में अन्तर करते हुए एक मार्ग दर्शक का कार्य करता है तथा नीतियों से कठोर होता है। रीति-रिवाज एवं प्रथा परम्परा विकसित रूप में कार्य करने की निरन्तर चलने वाली स्वाभाविक प्रक्रिया है। विनिश्चिय अथवा निर्णय नीति के अन्दर ही समाहित और नीतियों पर आधारित होती है। नीति का सम्बन्ध मौलिक विषयों से होता है, जबकि रीति किसी नीति को प्रभावकारी बनाये रखने के साधन से सम्बन्धित होती है। जार्ज टैरी के अनुसार ''नीति उस कार्यवाही, शाब्दिक, लिखित या विहित बुनियादी मार्गदर्शक है जिसे प्रबन्धक अपनाता है तथा जिसका अनुगमन करता है''। डिमॉक ने नीतियों को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''नीतियाँ सजगता से निर्धारित आचरण के नियम हैं, जो प्रशासकीय निर्णयों का मार्गदर्शन करता है''।[1]

प्रत्येक सरकारी अथवा गैर सरकारी संगठनों के लिए कार्य करने के पहले नीतियों का निर्धारण करना आवश्यक होता है। नीतियाँ ही संगठन या प्रशासन में गतिशीलता लाती है। लोक नीतियों का निर्माण सरकार एवं उसके प्रमुख निकायों के द्वारा किया जाता है किन्तु गैर सरकारी संगठन हित समूह, सामाजिक आन्दोलनों का भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव रहता है। राबर्ट स्टोन के अनुसार ''सरकारी इकाई का अपने आस-पास की चीजों से सम्बन्ध लोकनीति कहलाता है''। थॉमस आर.डे. के शब्दों में ''सरकार जो कुछ भी करना चाहती है या नहीं करना चाहती, लोकनीति कहलाती है''। लोकनीति किसी भी सामाजिक प्रणाली को अतीत से भविष्य की ओर ले जाने का महत्वपूर्ण साधन है। यह नागरिकों में लोकतान्त्रिक मूल्यों एवं राजनीतिक क्षमता का विकास कर एकता और अनुशासन बनाए रखती है।

सामाजिक आन्दोलन सामाजिक परिवर्तन एवं सरकार की नीतियों में बदलाव लाने का प्रमुख साधन है। यह वह प्रक्रिया है जिसमें बहुत सारे लोग अनौपचारिक रूप से संगठित होकर सक्रिय रूप से किसी सामाजिक प्रथा या प्रवृत्ति को रोकने या बदलने के लिए अग्रसर हो जाते हैं। सामाजिक आन्दोलन शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में फ्रांसीसी दार्शनिक सेंट साइमन ने किया था। इसमें उसने फ्रांस में उभरने वाले सामाजिक विरोध आन्दोलनों की ओर संकेत किया जो बाद में अन्य देशों में भी अपना स्थान बना लिया था।

आधुनिक समय में सामाजिक आन्दोलन विज्ञान और शिक्षा के प्रसार, औद्योगीकरण, नगरीकरण के कारण श्रमिकों आवागमन और उनकी समस्याओं में वृद्धि से उत्पन्न हुआ और पर्यावरण आन्दोलन से लेकर, युद्ध विरोधी आन्दोलन, स्त्री अधिकार आन्दोलन, मजदूर आन्दोलन, किसान आन्दोलन, जाति एवं भाषा संरक्षण आन्दोलन जैसे अनेक मुद्दों तक फैल गया, जिसके सम्बन्ध में बहुधा औपचारिक राजनीतिक तंत्र एवं सरकार द्वारा विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। सामाजिक आन्दोलन सार्वजनिक नीति और निर्णय की प्रक्रिया में जनसाधारण की सहभागिता का प्रभावशाली उपकरण प्रस्तुत करता है। सामाजिक आन्दोलन व्यापक पैमाने पर लोकहित और गैर परम्परागत प्रतिरोध का प्रतिनिधित्व करने वाला दबाव समूह है। किसी समाज में सामाजिक आन्दोलनों के आविर्भाव से यह संकेत मिलता है कि वहाँ आन्दोलनों ने अल्पसंख्यकों, हाशिये पर खड़े समूहों और अधिकारों से वंचित तबके के लोगों के अधिकारों को बढ़ावा दिया है। वर्तमान समय में सामाजिक आन्दोलनों ने समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान, लोक प्रशासन एवं लोक नीतियों को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। भारत में सामाजिक आन्दोलन का इतिहास अत्यन्त गौरवशाली रहा है। इसने समय-समय पर तत्कालीन शासन व्यवस्था एवं नीति निर्माण को प्रभावित किया है। आधुनिक भारत में इतिहास में विभिन्न समय पर जो सामाजिक आन्दोलन हुए हैं, उनमें मुख्यतः पाँच प्रकार के आन्दोलन हैं : –

1. किसान आन्दोलन
2. कामगार आन्दोलन
3. महिला आन्दोलन
4. दलित आन्दोलन तथा
5. जनजातीय आन्दोलन

भारत एक कृषि प्रधान देश है। भूमि स्वामित्व, नियन्त्रण और जमीनों का उपयोग, काम करने वाले श्रमिकों एवं किसानों कि स्थिति एवं मजदूरी जैसे मुद्दों ने लगातार सामाजिक आन्दोलन के रूप में किसान आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार की है। भारत में किसान आन्दोलन का प्रारम्भ अंग्रेजों के शासन काल में हुआ था। अंग्रेजों द्वारा चलाई गई जमींदारी व्यवस्था, रैयतवाड़ी प्रथा, महलवाड़ी प्रथा और उच्चदर पर लगान की वसूली ने किसानों में असन्तोष को जन्म दिया तथा सरकार के नीतियों के विरूद्ध संगठित होकर विरोध करने के लिए विवश कर दिया। 1955-56 का संथाल विद्रोह जमींदारी व्यवस्था के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ। 1857 के विद्रोह में किसानों की सक्रिय भागीदारी ने अंग्रेजी शासन को भूमिकर व्यवस्था में सुधार करने के लिए सोचने पर मजबूर कर दिया। 1960 में बंगाल में नील उगाने वाले किसानों के विद्रोह ने रैयतवाड़ी प्रथा का विरोध किया इनके संगठित आन्दोलन के कारण 1860 में एक नील आयोग की स्थापना किया गया। 1875 'दक्कन विद्रोह' के फलस्वरूप किसानों को ऋण की समस्या से मुक्ति दिलाने तथा कृषकों की अवस्था में सुधार करने के लिए 1879 में कृषक राहत अधिनियम (Agriculturists Refief Act) पारित किया गया तथा दीवानी प्रक्रिया सहिता (Civil Procedure Code) की धाराओं में संशोधन कर कर्ज न लौटाने वाले किसानों की गिरफ्तारी तथा जेल में बंद करने पर रोक लगा दिया गया।[2]

महात्मा गाँधी के नेतृत्व में चलने वाले चम्पारण आन्दोलन ने नील किसानों को शोषण से मुक्ति दिलाने का प्रयास किया तथा इसके फलस्वरूप चम्पारन कृषि अधिनियम (1917) पारित किया गया। खेड़ा आन्दोलन 1918 तथा 1921 में केरल के मोपला विद्रोह ने भी सरकार को नीतियों पर विचार करने एवं उसमें सुधार करने के लिए अग्रसर किया। भारत के स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व 1946 के तेलंगाना कृषक आन्दोलन ने जमींदारों एवं साहूकारों के शोषण की नीति के खिलाफ जमींदारी प्रथा के उन्मूलन का मार्ग प्रशस्त किया। जिसके फलस्वरूप हैदराबाद जमींदारी प्रथा उन्मूलन अधिनियम 1949 तथा हैदराबाद जोत एवं कृषि अधिनियम 1950 पारित हुआ। उत्तर प्रदेश में जमींदारी उन्मूलन अधिनियम 1952 भी किसान आन्दोलन के कारण ही पारित हुआ।[3]

वर्तमान समय में मध्य प्रदेश में 6 जून 2018 को किसानों ने अपनी समस्याओं

और कर्जमाफी को लेकर मंदसौर में आन्दोलन किया था। इस आन्दोलन में छह किसान मारे गये थे। इस आन्दोलन में किसान स्वामीनाथन कमीशन को लागू करने और कर्ज माफ करने समेत अन्य माँगों को लेकर हड़ताल कर रहे थे। किसान आन्दोलन के प्रभाव से ही आज सभी राज्यों में सरकारें किसानों की कर्जमाफी कर रही हैं तथा आज यह चुनावों में ज्वलन्त मुद्दा बना हुआ है।

भारत में औपनिवेशिक शासन की उपस्थिति में लार्ड डलहौजी के काल में 1853 के पश्चात् भारतीय संचार साधनों में मशीनों का प्रयोग होने लगा। रेल लाइनों के बिछाने तथा इंजनों के लिए कोयला निकालने के लिए मजदूरों का प्रयोग किया जाने लगा। इसी तरह कपड़ा मिलों और चाय के बगानों में भी मजदूरी व्यवस्था पर कार्य किया जाने लगा। भारत में औद्योगीकरण के पश्चात् भारतीय कामगार वर्गों को कम मजदूरी, कार्य के लम्बे घंटे, कारखानों के दूषित वातावरण जैसे समस्याओं का सामना करना पड़ा। इस परिस्थितियों में भारत में कामगारों के शोषण के कारण मजदूर आन्दोलनों का विकास हुआ। इस समय देश के राष्ट्रवादी नेताओं विपिन चन्द्र पाल एवं जी. सुब्रहमण्यम अय्यर ने भारतीय मजदूरों की दशा में सुधार के लिए नियम कानून बनाये जाने के माँग करनी आरम्भ कर दी। मजदूरों के आन्दोलन के परिणाम स्वरूप भारत में प्रथम कारखाना कानून (First Factory Act, 1881) पारित किया गया। 1905 से लेकर 1909 के दौरान रेल कर्मचारियों एवं बम्बई के मिल मजदूरों ने अपनी माँगों को लेकर हड़ताल किया। जिसमें तिलक की महत्वपूर्ण भूमिका थी। इसी बीच भारतीय राजनीति में गाँधी जी का आगमन हुआ। गाँधी के नेतृत्व में अहमदाबाद टेक्सटाइल मजदूरों ने हड़ताल की और अहमदाबाद टेक्सटाइल लेबर एसोसिएशन (1918) की स्थापना हुई। यह आन्दोलन सफल रहा तथा मजदूरों की 27.5 प्रतिशत मजदूरी वृद्धि की माँग सरकार ने मान ली। 1919 में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना के पश्चात् विश्व में श्रमिक आन्दोलन को एक नई दिशा मिली। भारत में भी 31 अक्टूबर 1920 को *ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस* की स्थापना ने कामगारों की समस्याओं को राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ दिया। लाला लाजपतराय के नेतृत्व में इस संगठनों के प्रयास से ही ब्रिटिश शासन ने श्रमिक विवाद अधिनियम (1929) बनाया। श्रमिकों एवं कामगारों के आन्दोलनों का भारतीय संविधान पर भी स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में वर्णित व्यक्ति की गरिमा, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय, मूल अधिकारों में वर्णित अनुच्छेद 14 में, विधि का समान संरक्षण, अनुच्छेद 19 की छः स्वतंत्रताएं[4], अनुच्छेद 23 और 24 में वर्णित शोषण के विरूद्ध अधिकार, नीति निदेशक तत्वों में अनुच्छेद 38 में लोक कल्याण की अभिवृद्धि और सामाजिक व्यवस्था बनाये रखना, अनुच्छेद 42 में काम के न्यायोचित दशाओं एवं प्रसूति सहायता, अनुच्छेद 43 में कर्मकारों के लिए निर्वाह मजदूरी आदि और अनुच्छेद 43(ए) का उद्योगों के प्रबन्ध में

कर्मचारियों की भागीदारी जैसे लोक नीतियों के सामाजिक आन्दोलनों के प्रभाव के कारण ही रखा गया है।

## नारी आन्दोलन

समकालीन विश्व में नारीवाद एक सशक्त विचारधारा के रूप में विकसित हुआ है। नारीवाद अस्तित्वबोध की अभिव्यक्ति है और यह महिलाओं के लिए समान अधिकारों की राजनीति का बोधक है। वस्तुतः 1970 के दशक में नारी शक्ति से सम्बन्धित आन्दोलन शुरू हुआ। मूलतः इस आन्दोलन की आधारशिला आज से लगभग 100 साल पहले रखी गयी। जर्मनी, डेनमार्क, ऑस्ट्रेलिया में लाखों महिलाओं एवं पुरुषों ने महिला अधिकारों हेतु रैलियों में हिस्सा लिया।[5]

नारीवाद आन्दोलन के समर्थकों में शुलस्मिथ फायरस्टीन (The Dialect of Sex) जर्मेनग्रीर (द फीमेल यूनक) केट मिलेट (सेक्सुअल पॉलिटिक्स), पेटमैन (द सेक्सुअल काट्रेक्ट), रॉबिन भार्गन (सिस्टरहुड इज पॉवरफुल), इलशटेन (पब्लिक मैन प्राइवेट वुमैन) साइमन द बउआ (The Second Sex) मैरी वोल्स्टन क्राफ्ट (A Vindication fo the Rights of Women) जॉन स्टुअर्ट मिल (सबजेक्शन ऑफ वुमैन) और अन्ना हजारे प्रमुख हैं। ऐतिहासिक विश्लेषण से इस आन्दोलन के मुख्य मुद्दे निम्नांकित है –

1. स्त्रियों के अधिकारों को मानव अधिकारों के रूप में मान्यता दी जाए।
2. सम्पूर्ण सामाजिक जीवन के सन्दर्भ में स्त्री-पुरुष की समानता स्वीकार की जाए।
3. स्त्री को परम्परागत पराधीनता से मुक्ति प्रदान करने के लिए स्त्रीत्व की नई परिभाषा दी जाए।

विश्व में अधिकांश समाज पुरुष प्रधान होने के कारण महिलाओं ने विभिन्न समयों पर अपने शोषण उत्पीड़न एवं पतन के विरूद्ध आवाज उठायी है। भारतीय समाज में भी समान अधिकार मानवाधिकार, पर्दाप्रथा विरोध, शिक्षा का अधिकार, विधवा-विवाह, बाल-विवाह निषेध जैसे प्रमुख बिन्दुओं पर राजाराम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, दयानन्द सरस्वती, केशव चन्द्र सेन, ऐनी बेसेंट, पी.वी. काणे आदि जैसे समाज सुधारकों ने महिलाओं के स्थिति में सुधार का प्रयास किया। राजाराम मोहन राय के प्रयास से बाल विवाह, सती प्रथा का निषेध जैसा कानून अस्तित्व में आया। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रयास से विधवा पुर्नविवाह अधिनियम पास हुआ, तथा स्त्री शिक्षा का प्रसार-प्रचार हुआ। ज्योतिबा फूले ने स्त्री शिक्षा व उनकी आर्थिक स्वतन्त्रता पर बल दिया। प्रार्थना समाज के महादेव गोविन्द रानाडे और भंडारकर ने बाम्बे विडो रिफार्म एसोसिएशन की स्थापना की। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 26 जनवरी, 1950 में संविधान लागू होने के उपरान्त महिला आन्दोलनों के

प्रभाव के कारण समय-समय पर कई ऐसे अधिनियम पारित किये गये जिन्होंने महिलाओं की दशा सुधारने में योगदान दिया। 1954 का विशेष विवाद अधिनियम, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956, दहेज प्रतिशोध अधिनियम 1961, पंचायती राज अधिनियम, महिला आरक्षण, घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम 2005 जैसे कानून महिला आन्दोलनों के प्रभाव का ही परिणाम हैं।

भारत में दलित और जनजातीय आन्दोलनों ने भी लोकनीतियों को प्रभावित किया है। भारत में वर्णव्यवस्था होने के कारण दलित और जनजातियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी, उनमें गरीबी, अशिक्षा, शोषण जैसी समस्याएँ विद्यमान थीं। कबीर, नानक, राजाराम मोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज, संस्था की स्थापना कर उन्हें समाज की मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया, महात्मा गाँधी ने दलितों के उत्थान और समाज में व्याप्त अस्पृश्यता को समाप्त करने का प्रयास किया। महात्मा ज्योतिबा फूले ने सत्यशोधक समाज की स्थापना कर दलितों के मन में आत्म सम्मान जगाने का कार्य किया। भारत में सामाजिक आन्दोलन के महानायक डॉ. बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर ने महाड़ आन्दोलन, दलित बौद्ध आन्दोलन चला कर इन्हें शिक्षा और सम्मानजनक स्थिति दिलाने का प्रयास किया। भारतीय संविधान में भी दलित एवं जनजातियों को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए अनुच्छेद 15 जाति, धर्म, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर विभेद का निषेध, अनुच्छेद 16 में लोकनीति जन में अवसर की समानता में आरक्षण का निषेध का प्रावधान किया गया तथा अनुच्छेद 17 में अस्पृश्यता का निषेध का प्रावधान किया गया। अनुच्छेद 330 में लोकसभा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधित्व के लिए स्थानों का आरक्षण किया गया। इसी तरह अनुच्छेद 332 और 333 के अन्तर्गत राज्यों में क्रमशः अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित किया, तथा अनुच्छेद 338 और 338(ए) के अन्तर्गत राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग तथा अनुसूचित जनजाति आयोग की स्थापना की गई।

इस प्रकार विभिन्न सामाजिक आन्दोलनों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि इसने समकालीन भारतीय लोकतन्त्र को व्यापक एवं सच्चा लोकतन्त्र बनाया है तथा सामाजिक आन्दोलनों के मुख्य विचारणीय बिन्दुओं ने नीति निर्माताओं और लोकनीति पर प्रभाव डाला है। वर्तमान समय में सरकार द्वारा संचालित विभिन्न योजनाएं यथा– महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना, राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम, राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना (2008), इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना, प्रधानमंत्री अटल पेंशन योजना (2015), आम आदमी बीमा योजना (2013), प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना (2016), जननी सुरक्षा योजना और प्रसूति प्रसुविधा (संशोधन) अधिनियम 2017 जैसी योजनाएँ एवं नीति सरकार की लोक कल्याणकारी नीतियों के प्रमुख उदाहरण हैं। निश्चय ही इस प्रकार की योजनाओं से जनहित के लक्ष्य पूरे

होते हैं और सुविधा वंचित वर्ग को संबल मिलता है तथा विकास पथ पर आगे बढ़ने की शक्ति मिलती है।

## सन्दर्भ

1. अवस्थी एवं अवस्थी, 'प्रशासनिक सिद्धान्त', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, प्रशासन, आगरा, 2000, पृ. 537
2. यशपाल, ग्रोवर वी.एल., 'आधुनिक भारत का इतिहास', एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ. 351
3. वही, पृ. 355
4. बसु, दुर्गा दास, 'भारत का संविधान : एक परिचय', वाधवा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 99
5. त्रिपाठी, श्रीप्रकाश मणि, 'राजनीतिक सिद्धान्त के नवीन पक्ष', अंकित पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2018, पृ. 79

# भारत में राष्ट्रीय एकीकरणः सांस्कृतिक विरासत, समस्याएँ एवं समाधान

## शशि भूषण कुमार

***Ikjk'k***: *21वीं सदी के भारत के सम्मुख अनेक गंभीर समस्याओं में से एक राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या है। आजादी के 71 वर्षों के उपरांत आज भी भारत में सामाजिक -आर्थिक -राजनीतिक उथल -पुथल, आंतकवादी घटनाओं, विभाजनकारी आंदोलनों तथा सांप्रदायिक एवं जातीय झगड़े दृष्टिगोचर हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही तृतीय विश्व के राष्ट्रों को, जिसमें भारत भी एक है, उन सभी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं से जूझना पड़ा जो पश्चिमी राष्ट्रों के सम्मुख क्रमशः आई थीं। राजनीतिक क्रांति के साथ ही उन्हें एक अन्य अधिक मूलभूत क्रांति से भी गुजरना पड़ा है जिसका उद्देश्य सामाजिक विविधता में से राष्ट्रीय एकता प्राप्त करना है। इस प्रकार तृतीय विश्व के राष्ट्रों को एक साथ परिवर्तन व एकीकरण की प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ा है।*[1] *रजनी कोठारी के अनुसार "राजनीतिक विकास की बुनियादी समस्या एकीकरण की है अर्थात् नए राजनीतिक केन्द्र -बिन्दु की स्थापना और सुदृढ़ीकरण, उनका बहुमुखी विस्तार, विभिन्न संस्थाओं का पल्लवन, विविधता को एक सूत्र में संग्रहण कर एक राष्ट्र का निर्माण अर्थात् एकीकरण की क्षमता का विकास; यही समस्या हमारे राष्ट्र-निर्माताओं के सम्मुख सबसे बड़ी समस्या रही है"*[2]*। भारत जैसे विविधतायुक्त राष्ट्रों के लिए यह एक कठिन प्रक्रिया है क्योंकि यह अभी भी संक्रमण की अवस्था में है जहाँ आधुनिकीकरण के प्रयास में ये एकीकरण के परम्परागत तत्वों को तो छोड़ चुके हैं लेकिन ऐसी नवीन परम्पराओं की स्थापना नहीं कर पाए जो राष्ट्रीय एकीकरण का माध्यम बन पातीं।*

### राष्ट्रीय एकीकरण का अर्थ

राष्ट्रीय एकीकरण एक बहुआयामी अवधारणा है जिसके राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक इत्यादि अनेक पक्ष हो सकते हैं। फिर भी अपने मूल रूप में यह ऐसी सामुदायिक या राष्ट्रीयता की भावना है जो विविध समुदायों को एकता के सूत्र में

पिरोती है ताकि संस्कृतियों, जातियों, भाषाओं व धर्मों के अन्तर को भावनात्मक दृष्टि से सम्पूर्ण इकाई के रूप में ग्रहण किया जा सके और उस इकाई के समस्त निवासी चाहे वे किसी भी धर्म, जाति या भाषा से संबंधित हों अपने देश से प्रेम करें और उसकी उन्नति का मार्ग प्रशस्त करें। महात्मा गाँधी ने उस भावना की अभिव्यक्ति इन शब्दों में की'' राष्ट्रीय एकता सामान्य उद्देश्य, सामान्य ध्येय और सामान्य दुःखों की अनुभूति है। इसकी प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग परस्पर सहिष्णुता और सहानुभूति के साथ एक दूसरे के दुःखों को बांटते हुए सामान्य ध्येय की प्राप्ति में सहयोग करना है''।[3] राष्ट्रीय एकीकरण का उद्देश्य समाज में ऐसी भावना का विकास करना है जिससे स्थानीयता, जातीयता, धार्मिक और भाषायी आस्थाओं से ऊपर उठकर व्यक्ति राष्ट्रीय संदर्भ में सोचने लगे और सामुदायिकता का विकास हो सके। जय प्रकाश नारायण के अनुसार एक राष्ट्र के पास राज्य और निश्चित भू-सीमा होते हुए भी राष्ट्रीयता के सार तत्व का अभाव हो सकता है। यह सार तत्व ही राष्ट्रीय चेतना अथवा राष्ट्रीय संवेग है। अतः हमारे देश में जब भी हम राष्ट्रीय एकीकरण की बात करते हैं तो मूलतः हमारा अर्थ इसी राष्ट्रीयता की चेतना का विकास करने से होता है।[4]

जी.एस. घूर्ये (Ghurye) के अनुसार ''राष्ट्रीय एकीकरण एक मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक प्रक्रिया है जो लोगों के दिलों में एकात्मकता, संगठन और एकबद्धता की भावना, सामान्य नागरिकता की भावना और राष्ट्र के प्रति निष्ठा की भावना के विकास को स्वयं में समाविष्ट किए हुए होती है"।[5] आगे इस अवधारणा को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि राष्ट्रीय एकीकरण के दो प्रमुख तत्व हैंः राजनीतिक एकीकरण और सामाजिक एकीकरण। राजनीतिक एकीकरण में भौगोलिक एकीकरण और आर्थिक एकीकरण शामिल हैं जबकि सामाजिक एकीकरण का अर्थ व्यक्तियों और समुदायों के एकीकरण से है ताकि व्यक्ति सामान्य मूल्यों के सहभागी बन सकें। इस प्रकार यह सामाजिक एकीकरण मनोवैज्ञानिक अथवा भावात्मक एकीकरण पर आधारित है अथवा उसका परिणाम कहा जा सकता है। इस संदर्भ में माइरन वीनर (Myron Weiner) का कहना है कि अपने बृहद्तम अर्थ में, एकीकरण का संकेत ऐसे विभाजक आंदोलनों की अनुपस्थिति से होता है जो राष्ट्र को विघटित कर सकते हैं या केन्द्रीय शासन की सत्ता को संकट में डाल सकते हैं और समाज की उन प्रवृत्तियों की ओर भी होता है जो संकुचित हितों के बजाय राष्ट्रीय और सार्वजनिक हितों को प्राथमिकता देती है। इस प्रकार किसी भी राष्ट्रीय नेतृत्व की दृष्टि से अपने समुदाय, जाति, धर्म, जनजाति या भाषा के प्रति प्राथमिक निष्ठाओं को बनाए रखना राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है।[6]

इकबाल नारायण के अनुसार "एक अवधारणा के रूप में राष्ट्रीय एकीकरण एक ही समय पर समग्रवादी और बहु-आयामी है। यह समग्रवादी इसलिए है क्योंकि वह

स्वयं में समाज, संस्कृति, अर्थशास्त्र, राजनीति, प्रशासन और यहाँ तक कि शिक्षा तक को समाविष्ट किए है। यह बहु-आयामी भी है क्योंकि यह सांस्कृतिक, राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक और भावात्मक एकीकरण से भी संबद्ध है''।[7] इस प्रकार राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया का अंतिम उद्देश्य वर्तमान विघटित समुदाय के स्थान पर भावनात्मक रूप से एकीकृत नई सामाजिक व्यवस्था की स्थापना है। जवाहरलाल नेहरू इसी भावात्मक एकता को महत्व देते हुए यह कामना रखते थे कि भारतीय जनता का भावात्मक एकीकरण हो ताकि हम अपनी अद्भुत विविधता को बनाए रखते हुए एक मजबूत राष्ट्रीय इकाई से बंधे हों।[8]

इसी भाव को स्पष्ट करते हुए राष्ट्रीय एकता सम्मेलन (1961) ने राष्ट्रीय एकीकरण के अर्थ को इन शब्दों में व्यक्त किया है– "राष्ट्रीय एकीकरण एक मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा सभी लोगों के दिलों में एकता की भावना, समान नागरिकता का अनुभव और राष्ट्र के प्रति प्रेम की भावना को विकसित किया जाता है''।[9] स्पष्ट है कि राष्ट्रीय एकीकरण का संबंध हृदय से है जिसके साथ अनुभूति और निष्ठा के प्रश्न जुड़े हुए हैं। अतः राष्ट्रीय एकीकरण के लक्ष्य को हासिल करने हेतु हृदय परिवर्तन अनिवार्य है जिससे भावनाओं में भी परिवर्तन लाया जा सके और संकुचित व प्रांतीय निष्ठाओं के स्थान पर बृहद् राष्ट्र के प्रति निष्ठा को सर्वोपरि बनाया जा सके। यह कार्य सभाओं अथवा भाषणों मात्र से ही संभव नहीं है बल्कि इसके लिए राष्ट्रोपयोगी संस्कारों को विकसित करने की अनिवार्यता है।

## सांस्कृतिक विरासतः राष्ट्रीय एकीकरण का वाहक

भारतीय समाज मूलतः एक वैविध्य समाज है जहाँ अनेक भाषा-भाषी, अनेक जाति-उपजाति, अनेक धर्मावलम्बी, अनेक सामाजिक-आर्थिक स्तरों के लोग एक साथ रहते आए हैं। इतनी विषमता, विभिन्नता एवं वैविध्यपूर्णता वाला समाज, जिसमें अनेक सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन इतिहास के शैशवावस्था से ही होते आए हैं, सबों को आत्मसात करते हुए आजतक जीवन्त है। भारत की एक सांस्कृतिक विरासत है जो यह भली-भांति सिखलाती है कि विविधता (diversity) को भी किस प्रकार सजा-सँवार कर एकरस बनाया जाए, किस प्रकार विविध कुसुम से चमन में उन्हें खिलाकर बहार लाई जाए, किस प्रकार रंग-बिरंगे फूलों से बाग की खुबसूरती में चार चाँद लगाया जाए। भारतीय संस्कृति दुनिया की बेमिसाल संस्कृति है जिसमें सहिष्णुता से आगे जाकर सहयोग, सहायता एवं सदाशयता के द्वारा विषमता से उत्पन्न तनाव को समायोजित एवं व्यवस्थित करने की सहज कला विद्यमान है।[10] मोहम्मद इकबाल ने भारतीय संस्कृति के इसी गुण के कारण लिखा था, "यूनान-ओ-मिस्र-ओ-रोमां सब मिट गए जहाँ से, कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी''।

'विभिन्नता में एकता' की विलक्षण नीति के कारण तूफानों में मचलते हुए भी यह अब तक अपना अस्तित्व कायम रखे हुए है। भारतीय इतिहास में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं जब इसे अपनी सदाशयता के कारण अनेक झंझावातों का सामना करना पड़ा है किन्तु इन झंझावातों को झेलते हुए भी इसने अपना गुण खोया नहीं है। यह इसकी राष्ट्रीय लोकाचार में रचा-बसा है जिसके कारण यह आज भी विविधतायुक्त समाज का बेमिसाल उदाहरण है। इसी राष्ट्रीय लोकाचार से इसके एकीकरण की शुरूआत हुई जो राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया को सुदृढ़ करने में तत्पर है।

ऐसा माना जाता है कि भारत राजनीतिक इकाई के रूप में मुगलों और अंग्रेजों के जमाने में विकसित हुआ। किन्तु प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुराण काल के अध्ययन से भारत में भौगोलिक एवं सांस्कृतिक एकीकरण के साथ-साथ राजनीतिक एकीकरण का भी अहसास होता है।[11] यदि मुगल भारत को अपना मुल्क बनाकर यहाँ स्थायी रूप से बस जाने का लक्ष्य रखते थे तो अंग्रेज भारत को ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बना कर रखना चाहते थे जिसका शोषण जितने अधिक दिनों तक संभव हो सके, किया जाए। वे इस विचार के प्रचार में तल्लीन थे कि "भारत न कभी राष्ट्र था और न अभी है। यह तो अनेक राष्ट्रीयताओं का समूह था''।[12] वे यही चाहते थे कि यह कभी एक राष्ट्र न बना रहे।

ब्रिटिश शासक भारतीय राष्ट्र के एकीकरण को हमेशा से नजरअंदाज करते रहे और इसीलिए भारत सरकार अधिनियम, 1935 के द्वारा एक ऐसे भारतीय संघ की तस्वीर लाई गई जिसमें केन्द्रीय सत्ता इतनी कमजोर होती थी कि भारत में 'वाल्कनाइजेशन' की प्रक्रिया प्रारम्भ होने में कोई दृढ़ अवरोध नहीं होता। अक्सर विदेशी पर्यवेक्षक भारत को भारत की भावना से न समझकर अपनी भावना से समझते हैं और इसमें भूल कर बैठते हैं। खासतौर से ब्रिटेन की मानसिकता में भारत एक देश था ही नहीं, वह तो देशों को समूह था। जॉन स्ट्रेची ने इस विचार को आगे बढ़ाते हुए यहाँ तक कह डाला था कि "यह भारत के संबंध में सीखने के लिए प्रथम और अत्यंत आवश्यक चीज है– कि न कोई भारत अथवा भारत नामक देश है, न कभी था जिसके पास यूरोपीय विचारानुसार किसी प्रकार की भौतिक, राजनीतिक, सामाजिक अथवा धार्मिक एकता थी"।[13]

किन्तु राष्ट्रीय आंदोलन की लहरों ने जब इस ब्रिटिश मानसिकता की जड़ को उखाड़ना शुरू किया तो ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने अपने विचार में परिवर्तन करते हुए यह कहा कि "भारत कोई राजनीतिक नाम नहीं, बल्कि यूरोप और अफ्रीका की भांति केवल एक भौगोलिक प्रकटीकरण है। यह किसी राष्ट्र अथवा किसी भाषा के क्षेत्रफल की निशानी नहीं, बल्कि बहुत से राष्ट्र और बहुत सी भाषाओं के क्षेत्रफल की निशानी है"।[14] भारत की सांस्कृतिक एकीकरण, जो भारत के राजनीतिक एवं भावानात्मक एकीकरण की जननी है, की भावनात्मक समझदारी के अभाव में विदेशी

विचार भारत को समझने में भूल करते रहे हैं। यही कारण है कि जेम्स मील से लेकर मार्क्स तक तथा पुनः स्टालिन भी भारत को राष्ट्रीयताओं का समूह मानने तक ही अपने आप को बढ़ा पाते हैं।

भारत को अंतरंगता से समझने वाले यह जानते हैं कि इसकी सांस्कृतिक विरासत के कारण जो एकता अब तक अक्षुण्ण रही है वह सदियों से चली आई है। प्रो. के. आर. श्रीनिवास आयंगर ने भारत के सुदूर दक्षिण से भी भारत की एकता के लिए यहाँ की जनता के हृदय में 'सकारात्मक विश्वास' पाया जो भारतीय इतिहास के महान परम्परा में पल्लिवित-पुष्पित मौलिक एकता की वजह से है। उन्होंने कहाः

> भारत वास्तव में एक विशाल देश हो सकता है, किन्तु भौगोलिक और सांस्कृतिक दृष्टि से वह एक है; भारत अनेक भिन्न बोलियाँ बोल सकता है, किन्तु इसका हृदय मजबूत है और इसकी आत्मा एक है। भारत की एकता की वास्तविकता अधिकांश भारतीयों के लिए एक सकारात्मक विश्वास है तथा इसे किसी राजशास्त्री अथवा अधि प्रचारक की तार्किक तथा भौतिक परिपुष्टि की आवश्यकता नहीं है।[15]

रजनी कोठारी ने भी इसे सांस्कृतिक संलक्षण अथवा सांस्कृतिक सहजीवन से युक्त एकता माना है। इनके अनुसार ''भारत की आवश्यक पहचान सांस्कृतिक है। यही एक सभ्यता है जिसने अनेक उतार-चढ़ावों को बर्दाश्त किया है तथा अभी भी विद्यमान है, मुख्य रूप से अपनी मौलिक पहचान, जो सांस्कृतिक है, के कारण है।[16]

भारत के बारे में समझदारी सही होने पर सेलिंग एस. हैरिसन ने भी अपने विचार, जो उसने अपनी पुस्तक, *इंडियाः द मोस्ट डेंजरस डिकेड* (1960) में प्रतिपादित किए थे, को परिवर्तित करते हुए माना कि अपनी विलक्षण क्षमता के कारण भारत ने महान स्थायित्व एवं समुत्थान-शक्ति को प्रदर्शित किया है।[17]

भारत की सांस्कृतिक विरासत, जो आदिकाल से यहां के लोगों के जेहन में विद्यमान है, अंततः स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राष्ट्रीय एकीकरण के रूप में परिलक्षित हुई और इसका आवेग इतना मजबूत था कि अंग्रेजों की '*फूट डालो और राज करो*' की नीति भी बहुत दिनों तक नहीं चल पाई। ब्रिटिश विश्लेषकों के दुष्प्रचार के बावजूद अनेक भाषाएँ, अनेक संस्कृतियाँ, अनेक जातियाँ-उपजातियाँ अपनी पहचान बनाए रखते हुए एकजुट रहीं। उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि हमारी मजबूत सांस्कृतिक विरासत राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया का वाहक बनी है और आज भी सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक उथल-पुथल के बीच ये समाधान का मार्ग सुझाती है।

## राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या

राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या विश्वजनीन है और प्रत्येक विविधतायुक्त राष्ट्र (अमेरीका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, आदि) इस समस्या का अपने-अपने तरीके से सामना

कर रहे हैं।[18] तृतीय विश्व के भारत जैसे देशों के लिए यह समस्या और भी अधिक गहन है और राष्ट्रवाद के विकास का ही एक अभिन्न भाग है। इन देशों में राष्ट्रवाद का विकास दो भिन्न अवस्थाओं में होता है। *प्रथम,* साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष की अवस्था में जहाँ राष्ट्रवाद का एकमात्र उद्देश्य एक स्वतंत्र संप्रभु राज्य की स्थापना करना होता है और *द्वितीय,* समाज की राष्ट्र के रूप में एकीकरण की अवस्था जहाँ उस नव-स्वतंत्र राज्य के निवासियों को एक राष्ट्र के नागरिक के रूप में परिवर्तित करना होता है। यही राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया है जो राष्ट्रवाद की द्वितीय अवस्था है और नव स्वतंत्र राष्ट्रों के लिए अत्यंत जटिल भी है क्योंकि उन्हें इस राष्ट्र-निर्माण के साथ-साथ एक ही समय पर आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय, राजनीतिक विकास, लोकतंत्रीकरण और आधुनिकीकरण की दिशा में भी प्रयत्न करने पड़ते हैं। बहु-आयामी विकास की यह प्रक्रिया कभी-कभी अत्यंत जटिल अंतः क्रिया को जन्म देती है जो एकीकरण के स्थान पर असंतोष और अलगाव को इतना बढ़ा देती है कि राजनीतिक समुदाय का अस्तित्व ही संकट में पड़ जाता है।

भारत में राष्ट्रीय एकीकरण का प्रश्न और भी जटिल है क्योंकि धर्म, भाषा और संस्कृति के साथ जातियों की विविधता भी भारतीय समाज की पारंपरिक विशिष्टता है[19] और भारतीय समाज के एकीकरण के मार्ग में बाधक है। विदेशी शासन और उनकी फूट डालने वाली नीतियों ने एकीकरण के मार्ग को और भी लंबा और दुर्गम बना दिया।[20] स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत के राष्ट्रीय नेताओं ने इस कार्य को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की जो जवाहरलाल नेहरू के इस कथन से स्पष्ट हैः

> हमें भारत में एकता की भावना के विकास के कार्य को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिए क्योंकि यह कठिन समय है। ऐसा कोई भी निर्णय, जो इस एकता के मार्ग में रूकावट डाले, तब तक के लिए स्थगित कर देना चाहिए जब तक कि राष्ट्रीय एकता की मजबूत नींव न रखी जा चुकी हो।[21]

नेहरू ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि इसका स्वरूप विविधता में एकता होना चाहिए अर्थात् एकता की भावना विविधता के प्रति सहिष्णुता और सम्मान पर ही आधारित होनी चाहिए। यही बात संविधान सभा में भी प्रतिध्वनित हुई।

रजनी कोठारी ने प्रारंभिक भारतीय नेतृत्व के इन लोकतांत्रिक विकल्पों के चुनाव की प्रशंसा की है क्योंकि उनके अनुसार कार्य की विशालता और समस्याओं की जटिलता को देखते हुए यदि तानाशाही का माध्यम भी अपनाया गया होता तो भी न्याय-संगत ही माना जाता।[22] यह निश्चय ही प्रशंसनीय है कि भारतीय नेतृत्व ने भारतीय समाज की विविधता में एकता, सामाजिक न्याय और आर्थिक विकास के अपने प्रयत्न खुले लोकतांत्रिक परिपेक्ष्य में ही आगे बढ़ाये हैं। भारत में राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या के निम्नलिखित आयामों की चर्चा की जा सकती हैः

## प्रांतीय विविधता का समायोजन

स्वतंत्रता प्राप्ति के एकदम बाद देशी रियासतों का भारत के साथ एकीकरण की समस्या सर्वप्रमुख थी। उस समय के राजाओं और नवाबों की सोच को देखते हुए आम भारतीय जनमानस उन्हें राष्ट्रद्रोही, अंग्रेज-परस्त और प्रगति-विरोधी मानता था लेकिन उस समय के राष्ट्रीय नेतृत्व, विशेषकर बल्लभ भाई पटेल के बल एवं अनुग्रह पर जम्मू और कश्मीर सहित सभी रियासतें भारतीय संघ में शामिल हो गए। परन्तु जम्मू और कश्मीर का विशेष दर्जा (अनु. 370) अभी भी भारतीय संघ की एकता व अखण्डता में व्यवधान है और उसे भारत का अभिन्न भाग बनाने के मार्ग में बड़ी बाधा भी। जम्मू और कश्मीर में अलगाववादी एवं आतंकवादी गतिविधियाँ राष्ट्रीय एकीकरण लाने के प्रयत्नों में व्यवधान प्रस्तुत करतीं हैं।

देशी रियासतों के एकीकरण के साथ ही भारतीय राज्यों के पुनर्गठन की बात भी जुड़ी हुई थी। जो प्रांतीय विविधताएँ और निष्ठाएँ स्वतंत्रता के उद्देश्य के साथ गौण हो गई थीं, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् फिर से सक्रिय हो गईं। राष्ट्रीय राजनीति के धरातल पर यह समस्या नए राज्यों की मांग, पुराने राज्यों के पुनर्गठन की मांग, राज्यों को अधिकाधिक स्वायत्तता, नदी-जल संबंधी विवाद, धरती पुत्र के सिद्धांत और अधिकाधिक आर्थिक सहायता इत्यादि के रूप में प्रतिफलित हुई हैं।[23] 1956 में गठित राज्य पुनर्गठन आयोग की अनुशंसा पर भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन बड़ी भूल साबित हुई। भारत के भूतपूर्व गवर्नर जनरल चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने इस कृत्य को उसी समय ''भयानक भूल'' बताया।[24] आज भी यह एक विकराल समस्या के रूप में देश के सामने मौजूद है और राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधक है। उपरोक्त सभी समस्याएँ और विवाद राष्ट्रीय एकीकरण के प्रयत्नों को निरंतर पीछे की दिशा में धकेलते रहे हैं और कुछ मामलों में आतंकवाद और अलगाववाद का आधार भी बन गए हैं।

1967 तक कांग्रेस पार्टी का अखिल भारतीय स्वरूप बना रहा और प्रांतीय विविधता कांग्रेस के केन्द्रीय नेतृत्व के नियंत्रण में अंतर्लुप्त रही। परन्तु धीरे-धीरे प्रांतीय दल मजबूत होते गए और इनकी संख्या एवं प्रभुत्व में निरंतर वृद्धि हुई है। स्थिति यहाँ तक आ पहुँची कि केन्द्रीय सरकार के गठन में प्रांतीय दलों की भूमिका निर्णायक होती हैं। सहकारी संघवाद सौदेबाजी वाले संघवाद में परिणत हो जाता है। इस प्रवृत्ति ने राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया को धीमा कर दिया है।

## धार्मिक विविधता एवं साम्प्रदायिकता

आदिकाल से ही धर्म भारतीय जीवन शैली का एक अभिन्न अंग रहा है और उसका कार्य समाज को एक सूत्र में पिरोने का था लेकिन आधुनिक समय में सांप्रदायिकता की समस्या इससे जुड़ गई है। अंग्रेजी शासकों की नीति भारतीय

जनता को धर्म, जाति, भाषा इत्यादि के आधार पर बांटने और कमजोर बनाए रखने की थी। इनमें से धर्म का प्रयोग इस सीमा तक किया गया कि भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र बनने से पूर्व ही दो भागों में विभक्त हो गया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधीन राष्ट्रवाद की उग्र होती हुई भावना को कमजोर करने के लिए अंग्रेजी शासकों ने मुस्लिम बुद्धिजीवियों में सांप्रदायिकता एवं अलगाव की भावना को बढ़ावा दिया जिसकी परिणति भारत के विभाजन और धर्म के आधार पर पाकिस्तान के निर्माण में हुई।

लेकिन उस अलगाव और संप्रदायवाद की भावना का अंत इस विभाजन में नहीं हो सका बल्कि वह भारतीय राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में शाश्वत समस्या बन गई। हिन्दु-मुस्लिम दंगे आज भी कोई असाधारण घटना नहीं है। हमारी लोकतांत्रिक प्रक्रिया ने सहज ही सांप्रदायिक तत्वों को राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल कर लिया और उसे अनजाने में या जान-बूझ कर मजबूत भी किया है। भारत के अधिकांश राजनीतिज्ञ और राजनीतिक दलों ने बिना किसी झिझक के धार्मिक नेतृत्व का प्रयोग मतदाताओं को आकर्षित करने के लिए किया है और धर्म के स्थान पर धर्मांधता, धर्मनिरपेक्षता के स्थान पर रूढ़िवादिता तथा शिक्षा के नाम पर तुष्टिकरण को बढ़ावा देकर मतदाताओं तक पहुँचने का सरल मार्ग अपनाया है। परिणामस्वरूप चुनावों के समय सांप्रदायिकता की राजनीति और भी सक्रिय हो जाती है।

राजनीतिक प्रक्रिया में धर्म के सांप्रदायिक प्रयोग से राष्ट्रीय एकीकरण को अपूरणीय क्षति पहुँचती है और प्रत्येक राजनीतिक जन-प्रक्रिया और जन-आंदोलन व्यक्ति की राष्ट्रीय अस्मिता और निष्ठा की भावना को कम करके उसकी धार्मिक अस्मिता और निष्ठा को अधिक मजबूत बना देता है। राष्ट्रीय हित राजनीतिक और सांप्रदायिक हितों के सम्मुख गौण बन जाता है जो अंततः राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया को ही अवरूद्ध कर देता है। सांप्रदायिकता की राजनीति तो इस सीमा तक पहुँच चुकी है कि सम्पूर्ण समाज अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक समुदायों में विभाजित ही नहीं है, बल्कि अल्पसंख्यकों के साथ बहुसंख्यक भी स्वयं को असुरक्षित महसूस करने लगे हैं।[25] पंजाब की समस्या, अयोध्या विवाद, हिन्दुत्व का नकारात्मक उभार और 'इस्लाम खतरे में है', सांप्रदायिक राजनीति की ही उपज हैं।

## भाषायी विविधता

भारत एक बहुभाषी देश है जिसके विभिन्न प्रांतों में अलग-अलग भाषाएँ प्रयुक्त होती हैं। यहाँ लगभग 1652 मातृ भाषाएँ या 200 वर्गीकृत भाषाएँ बोली जाती हैं और लगभग 10 लिपियों (script) का प्रयोग होता है। भाषा सामाजिक एकीकरण या बिखराव का एक महत्वपूर्ण सूत्र है।[26] भारतीय राष्ट्र के एकीकरण में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है लेकिन दुर्भाग्य से अभी तक भारत

में एक सम्पर्क भाषा का विकास तक नहीं किया जा सका है। महात्मा गाँधी ने भाषा के महत्व को स्वीकारते हुए इस बात पर बल दिया था कि एक हिन्दुस्तानी भाषा का विकास और प्रसार राष्ट्रीय एकीकरण के लिए अनिवार्य है। भारतीय संविधान निर्माताओं ने भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए हिन्दी को 'राजभाषा' और संक्रमण काल के लिए अंग्रेजी के प्रयोग का प्रावधान किया। लेकिन स्वागत के बजाय भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन, विभिन्न भाषाओं के स्वतंत्र विकास और नए भाषायी प्रदेशों के लिए आंदोलन जोर पकड़ने लगे। भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया गया ताकि प्रांतीय सांस्कृतिक आकांक्षाओं को संतुष्ट किया जा सके। परन्तु उससे भी समस्या सुलझी नहीं और राष्ट्रीय भावना के स्थान पर भाषायी निष्ठाओं को बल मिला।

लोकतांत्रिक प्रक्रिया के अंतर्गत भारत में एक सम्पर्क भाषा के विकास के लिए किए गए प्रयत्न आंशिक भी रहे हैं और असफल भी।[27] स्वतंत्रता के बाद हमने अपनी राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान के लिए अंग्रेजी भाषा को हटाकर एक भारतीय भाषा को प्रतीक चिन्ह बनाना चाहा और इसी मनोवृत्ति से प्रेरित होकर हिन्दी को संघ की राजभाषा का दर्जा दिया गया। किन्तु स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी की प्रभुता का भी अनेक क्षेत्रों में तीव्र विरोध हुआ।[28] परिणामस्वरूप अभी भी हम अंग्रेजी के स्थान पर एक भारतीय भाषा को राजभाषा का दर्जा व्यवहार रूप में नहीं दे सके हैं। 1967 में राजभाषा कानून बनाए जाने के दौरान घटी हिंसक वारदातों ने राजभाषा समिति (1955-56) की रिपोर्ट में हिन्दी का विरोध करने वाले सदस्यों के विचारों को ही प्रतिध्वनित किया। विद्वानों का एक वर्ग, जिसकी अगुवाई खुशवंत सिंह, कुलदीप नैयर, सुनंदा सान्याल इत्यादि ने की थी, अंग्रेजी को न केवल राजभाषा बनाए रखने के पक्ष में हैं बल्कि उसे राष्ट्रीय एकीकरण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन साबित करने के लिए भी प्रयत्नशील हैं। एक तरफ तो हिन्दी को राजभाषा बनाने के विरोध में बंगला, तमिल, तेलुगू आदि समृद्ध क्षेत्रीय भाषाओं की पैरवी की जा रही है और हिन्दी की क्षेत्रीय बोलियों (मैथिली, भोजपुरी, मगधी इत्यादि) को हिन्दी के विरोध में खड़ा किया जा रहा है, वहीं दूसरी तरफ अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का अंग्रेजी के साथ द्वन्द को उभारा जा रहा है। हमारे पास में स्थित मॉरीशस जीता-जागता उदाहरण है जहाँ हिन्दी की क्षेत्रीय बोली भोजपुरी को राष्ट्रभाषा का दर्जा प्राप्त है और भोजपुरी मॉरीशस की सम्पर्क भाषा के रूप में प्रौढ़ बन चुकी है।

## जातीय विविधता

जाति व्यवस्था भारतीय समाज की एक मौलिक विषेशता है। इस व्यवस्था का प्रारम्भ 'कार्य-विशिष्टता' तथा श्रम-विभाजन' के सिद्धांतों के आधार पर हुआ परन्तु कालान्तर में वह एक वर्गीकृत समाज का आधार बन गई। जो वर्ण-व्यवस्था सामाजिक कार्यकुशलता को प्रोत्साहित करने वाली वैदिक सभ्यता का अनिवार्य अंग

थी वही कालान्तर में भारतीय समाज को अनेक वर्गों में विभाजित करने वाली जाति व्यवस्था बन गई जिसके पदसोपान में ब्राह्मण सबसे ऊपर हैं। परंपरागत भारतीय समाज में सामाजिक वर्गीकरण में उच्च वर्ग सदैव प्रभुत्व की स्थिति में रहता था। विदेशी शासकों ने भी जाति-व्यवस्था को अक्षुण्ण रखा यद्यपि समाज-सुधारकों ने समाज-सुधार के कार्यक्रम में जाति-व्यवस्था के सुधार को सर्वोपरि स्थान दिया। गाँधीजी के दलितोद्धार के कार्यक्रम उसी सुधारवाद के परिणाम थे। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान यह महसूस किया गया कि जाति व्यवस्था सामाजिक कल्याण का माध्यम न रहकर सामाजिक व राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में एक बड़ी बाधा है। इसलिए संविधान की प्रस्तावना में ही समानता, बंधुत्व और व्यक्ति की निष्ठा व गौरव को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया और नीति-निर्देशक तत्वों में पिछड़े वर्गों की स्थिति में सुधार के लिए विशेष प्रयत्नों के निर्देश राज्य को दिए गए। इतना ही नहीं, उनकी सामाजिक परिस्थिति में सुधार हेतु आरक्षण की व्यवस्था किया जाना तथा अस्पृश्यता का व्यवहार दंडनीय अपराध (अनु. 17 तथा 35) घोषित किया गया।

उदारवादी लोकतांत्रिक व्यवस्था और सामाजवादी समाज की स्थापना के लक्ष्य के परिणामस्वरूप स्वतंत्र भारत में एक नया राजनीतिक वातावरण अस्तित्व में आया। समाज के विभिन्न क्षेत्रों में राजनीतिकरण का एक नया युग प्रारंभ हुआ और राजनीति और समाज के बीच परम्परागत अंतर धीरे-धीरे समाप्त होने लगे। नई व्यवस्था में राजनीतिक शक्ति पर विशिष्ट जाति अथवा जातियों का एकाधिकार समाप्त हुआ और सत्ता के लिए खुली प्रतियोगिता आरंभ हो गई। इस प्रक्रिया में प्रत्येक जाति पहले तो अपने अधिकारों और संख्या के प्रति जागरूक हुई और फिर सत्ता में सहभागिता का दावा करने लगी[29]। इसके परिणामस्वरूप एक तरफ जातीय संगठन की भावना बढ़ी और दूसरी तरफ उच्चतर जातियों के साथ समानता की मांग भी बढ़ने लगी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् लोकतांत्रिक प्रक्रिया ने जाति व्यवस्था को भी प्रभावित किया और जाति और राजनीति के बीच अंतःक्रिया में वृद्धि हुई। सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार के सिद्धांत के अंगीकरण के फलस्वरूप जाति की सामाजिक स्थिति से कहीं अधिक महत्वपूर्ण उनकी संख्यात्मक स्थिति हो गई। ऐसा महसूस किया जाने लगा कि राजनीति भी जाति प्रथा से प्रभावित हो गई लेकिन कोठारी, रूडोल्फ और रूडोल्फ इत्यादि के अध्ययनों ने यह स्पष्ट किया कि जाति का राजनीतिकरण हो गया है और उसे राष्ट्रीय एकीकरण के लिए हानिकारक नहीं माना जाना चाहिए।[30]

उपरोक्त अध्ययनों एवं निष्कर्षों के विपरीत वर्तमान स्थिति उलट है। राजनीतिक दलों ने राजनीति में जातिवाद के नकारात्मक पहलू को उभार कर वोट बैंक की राजनीति शुरू कर दी। दलित-शोषितों के उत्थान के नाम पर जातिवाद को

राजनीति का अनिवार्य अंग बना दिया। सामाजिक व्यवस्था के दोषों को बढ़ावा देकर उसे परस्पर जाति संघर्ष एवं वैमनस्यता की आग में डाल दिया जिस पर राजनीतिज्ञ अपना हाथ सेंकते रहते हैं। चुनावों के समय इसका विद्रुप रूप दिखाई पड़ता है। जातिवाद ने लोकतंत्र की भावना के विपरीत काम किया है जो आज भारतीय राष्ट्र के एकीकरण की प्रक्रिया में बड़ी बाधा है।

## क्षेत्रवाद की समस्या

पिछले कई दशकों से *'केन्द्रवाद बनाम् क्षेत्रवाद'* के बीच विवाद भी राष्ट्रीय एकीकरण का एक महत्वपूर्ण मुद्दा बन कर उभरा है। जहाँ कांग्रेस ने क्षेत्रवाद को राष्ट्रीय एकीकरण के लिए चुनौती मानकर उसे निरस्त करने पर बल दिया, वहीं अन्य राष्ट्रीय तथा प्रादेशिक दलों ने क्षेत्रवाद से संबंधित नवीन चेतना का स्वागत किया और उसे लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया के रूप में प्रोत्साहित करने पर बल दिया है। स्वतंत्रता के बाद से ही क्षेत्रीयता और प्रादेशिकता की चेतना भारतीय राजनीति में सक्रिय हो गई और इसी चेतना के अंतर्गत क्षेत्रवाद को लेकर अनेक संगठित आंदोलन, प्रचार और उपद्रव भारत के अनेक राज्यों में हुए और राज्यों की जनता में क्षेत्रीय अस्तित्व की प्रबल प्रादेशिक चेतना का उदय हुआ[31] जो राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के मार्ग में निश्चय ही बाधक है क्योंकि जब क्षेत्रवाद उग्र और नकारात्मक स्वरूप ग्रहण करके अलगाववादी स्थिति की ओर अग्रसर हो जाता है तो राष्ट्रीय एकीकरणा की प्रक्रिया शिथिल हो जाती है और समस्या पैदा करती है।

क्षेत्रवाद के अनेक पक्ष हैं– सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक इत्यादि। परन्तु राजनीतिक धरातल पर इसका तात्पर्य पृथकतावाद से लिया जा सकता है जिसके अंतर्गत विभिन्न क्षेत्रों के निवासी अपने पृथक अस्तित्व, आर्थिक और सामाजिक विकास, भाषाई और सांस्कृतिक अस्मिता और स्वशासन की मांग करते हैं। अनौपचारिक रूप में क्षेत्रवाद सौदेबाजी का एक हथियार है जो दबाव की राजनीति के प्रतीक के रूप में कार्य करता है। वस्तुतः जिन क्षेत्रों में आर्थिक विकास की असमानताएँ हैं वहाँ राजनीतिक दलों और दबाव समूह के नेताओं ने क्षेत्रीय विकास का मुद्दा उठाया है। प्रायः इसका उद्देश्य व्यक्ति विशेष की राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति, शासक दल को परेशान करना और सौदेबाजी की अपनी क्षमता में वृद्धि करना है। जैसे महाराष्ट्र में शिवसेना, आंध्र प्रदेश में तेलुगूदेशम, जम्मू और कश्मीर में नेशनल कॉन्फ्रेंस, पंजाब में अकाली दल इत्यादि। रजनी कोठारी का मत है कि सरकारी कार्यक्रमों, राजनीतिक गतिविधियों, शिक्षा, आर्थिक विकास इत्यादि ने विभिन्न जातियों, संस्कृति, भाषा-भाषी प्रदेशीय निवासियों में विशेष अस्तित्व और स्वायत्तता की भावना को जागृत किया है।[32]

जातीय और क्षेत्रीय निष्ठाओं के साथ-साथ भारत में जनजातीय क्षेत्रवाद भी क्षेत्रीय आंदोलन का प्रबल कारण बन रहा है, विशेषरूप से पूर्वोत्तर क्षेत्रों की राजनीति

में यह तत्व उल्लेखनीय कहा जा सकता है। भारत में उत्तर-पूर्व के क्षेत्र में अनेक पहाड़ी जनजातियों के इस प्रकार के आंदोलन के फलस्वरूप नागालैण्ड, मेघालय, मिजोरम, मणिपुर, अरूणाचल प्रदेश आदि का उदय हुआ और एक पूर्वोत्तर परिषद् की स्थापना भी की गई ताकि इस क्षेत्र का समेकित आर्थिक विकास हो। बावजूद गोरखालैण्ड, बोडोलैण्ड इत्यादि के लिए हिंसक आंदोलन उभर कर आए हैं और राष्ट्रीय एकीकरण के लिए समस्या बन गए हैं। यद्यपि इस पृथकतावाद के लिए बहुत हद तक औपनिवेशिक शासक और ईसाई मिशनरियाँ उत्तरदायी रही हैं[33] तथापि वहाँ की गरीबी और पिछड़ेपन ने भी अलगाववाद को प्रश्रय दिया है।[34]

## राष्ट्रीय एकीकरण परिषद्

अलगाववादी ताकतों और संकुचित निष्ठाओं से भारत की एकता व अखण्डता की रक्षा के लिए सरकार प्रयत्नशील है। इसी कड़ी में 1961 में राष्ट्रीय एकीकरण सम्मेलन आहूत की गई ताकि राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या पर विचार-विमर्श किया जा सके। इस सम्मेलन में प्रधानमंत्री, मंत्रीपरिषद् के सदस्य, मुख्यमंत्री, विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं, शिक्षाविद्ों, लेखकों और वैज्ञानिकों ने भाग लिया और इसकी सिफारिशों के आधार पर जून 1962 में 'राष्ट्रीय एकीकरण परिषद्' की स्थापना की गई।[35] इस परिषद् की सिफारिशों में राजनीतिक दलों के लिए एक व्यवहार संहिता भी शामिल थी लेकिन कांग्रेस सहित किसी भी राजनीतिक दल ने ईमानदारी से उसका अनुसरण नहीं किया और 1960-70 के दौरान बड़े पैमाने पर सांप्रदायिक, प्रांतीय और भाषायी दंगे हुए।

1968 में राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् का पुनर्गठन किया गया तथा सदस्य संख्या को बढ़ाकर 39 से 55 कर दिया गया। परिषद् ने अपनी सिफारिश में राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधक प्रवृत्तियों की आलोचना तथा प्रेस और राजनीतिक दलों से रचनात्मकता प्रोत्साहित करने की बात कही। आपात्कालीन स्थिति के दौरान एक बार पुनः राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् को सक्रिय किया गया और आतंकवादी तत्वों की समाप्ति, अल्पसंख्यक समुदायों के विषय में पूर्वाग्रहों की समाप्ति और विभिन्न वर्गों और संप्रदायों के लोगों के बीच परस्पर मेल-मिलाप को प्रोत्साहन, प्रांतीय आर्थिक विषमताओं की समाप्ति आदिपर बल दिया गया।[36] 1981 में राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् का पुनर्गठन किया गया और उसे फिर से सक्रिय बनाने का प्रयास किया गया। इस परिषद् के माध्यम से अयोध्या विवाद का भी समाधान खोजने का प्रयास किया गया लेकिन सफलता नहीं मिल सकी।

अनेक संगठनों और नेताओं ने इसके सरकारी स्वरूप और पूर्वाग्रहों को लेकर इसकी बैठकों का बहिष्कार किया। अंततः स्थिति यह है कि सांप्रदायिक समस्या बनी हुई है, राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् भी सक्रिय है लेकिन सांप्रदायिक वैमनस्य और हिंसा

का कोई संतोषजनक समाधान नहीं खोजा जा सका है। सितम्बर 2013 में प्रधानमंत्री डा. मनमोहन सिंह की अध्यक्षता में 148 सदस्यीय परिषद् की 16वीं बैठक संपन्न हुई लेकिन राष्ट्रीय एकात्मकता की दिशा में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। भाजपानीत वर्तमान एनडीए की सरकार ने राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् की एक भी बैठक आहूत नहीं की।

## वर्तमान परिदृश्य

मई 2014 में भाजपानीत एनडीए की सरकार केन्द्र में सत्तासीन हुई। धीरे-धीरे हिन्दुत्व का नकारात्मक उभार जोर पकड़ने लगा। कुछ हिन्दुवादी संगठनों ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति की दुहाई देकर 'लव जिहाद', गौ मांस के नाम पर हिंसा फैलाने, भीड़ के द्वारा हिंसा जैसे कारनामे को अंजाम दिया। बुद्धिजीवियों के एक वर्ग ने सरकार के काम-काज के तरीके से असंतुष्ट होकर 2016 में 'अवार्ड वापसी' के द्वारा अपनी नाराजगी व्यक्त की और देश में ऐसा प्रचार-प्रसार किया जाने लगा कि सर्वत्र असहिष्णुता का वातावरण बन गया है; सरकार अल्पसंख्यकों के प्रति असहिष्णु हो गई है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय जैसे प्रतिष्ठित शिक्षण संस्थान में विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर राष्ट्र-विरोधी नारे लगाए गए। इस दौरान उत्तर प्रदेश एवं देश के अन्य हिस्सों में साम्प्रदायिक दंगे भी हुए और अल्पसंख्यकों की हिमायत करने वाले कुछ लेखकों की हत्याएँ भी हुई। वर्तमान केंद्र सरकार में शामिल एक केन्द्रीय मंत्री के द्वारा बार-बार मुसलमानों को पाकिस्तान चले जाने की नसीहत दी गई। सिनेमा जगत के लोगों के द्वारा भी सरकार की आलोचना की गई और गैरजिम्मेदाराना बयान भी उनकी ओर से आने लगा। ताजा प्रकरण नसीरूद्दीन शाह का है जो हाल के बुलंदशहर हिंसा को लेकर भारत में अपने-आप को सुरक्षित नहीं पाते हैं। इससे भी आश्चर्यजनक यह है कि पाकिस्तान के प्रधानमंत्री, इमरान खान यह कहते हुए पाए जाते हैं कि ''भारत में अल्पसंख्यकों को बराबरी का हक नहीं है'' जबकि *'स्टेट ऑफ ह्यूमन राइट्स इन 2017'* की पाकिस्तान की रिपोर्ट के अनुसार आजादी के समय यहाँ अल्पसंख्यक 20 प्रतिशत थीं लेकिन 1998 की जनगणना के अनुसार यह घटकर तीन प्रतिशत रह गई है।[37] हालांकि उनके इस बयान की निन्दा भारत में रहने वाले अल्पसंख्यक लोगों के द्वारा की गई जो प्रशंसनीय है। वर्तमान परिपेक्ष्य में सोशल मीडिया के बढ़ते चलन ने भी राष्ट्रीय एकीकरण के समक्ष खतरा उत्पन्न कर दिया है। सच्चाई से इतर अफवाहों और झूठी खबरों को प्रचारित-प्रसारित कर सामाजिक विद्वेष एवं वैमनस्यता का वातावरण बना दिया जाता है। भारत के पूर्वोत्तर भागों में शरणार्थियों (बांग्लादेशी एवं रोहिंग्या) की समस्या भी देश की एकताव अखंडता के समक्ष खतरे उत्पन्न कर रहा है। असम में बोडो जनजाति और बांग्लादेशी शरणार्थियों के बीच अक्सर हिंसा की खबरें सुर्खियों में रहती है।

निश्चित रूप से इस तरह की घटनाएँ देश को एकीकृत करने के बजाय विभाजन पैदा करती है और राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया को कमजोर करती है। भारत, भारत में रहने वाले लोगों का है चाहे उनकी जाति, धर्म व क्षेत्र कुछ भी क्यों न हो। हम भारतीयों को भारत की नजर से समस्याओं का समाधान ढूंढना होगा न कि अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक के नजरिए से। सरकार के नाकामी की आलोचना होनी चाहिए लेकिन यह आलोचना असहिष्णुता का प्रचार-प्रसार करके नहीं बल्कि सकारात्मक सोच के साथ। देश के नीति-निर्माताओं के अंतर्मन में वैचारिक विभिन्नताओं का आदर करने की प्रवृत्ति को आगे बढ़ाना होगा क्योंकि सहिष्णुता हमारी पहचान है। इसी पहचान पर राष्ट्रीय एकीकरण की नींव अवलंबित है। भारत की विशालता और विविधता के अंतर्विरोधों को मद्देनजर रखते हुए संविधान की आत्मा के तले राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया को पूरा किया जाना चाहिए। *'गरीबी हटाओ'* और *'सबका साथ सबका विकास'* सिर्फ नारों से संभव नहीं है। इसको कार्यरूप में परिणत करने के लिए संस्थाओं के सशक्तिकरण की अनिवार्यता है। हिन्दुत्व की अवधारणा को सकारात्मक विकास के संदर्भ में लाया जाना चाहिए ताकि समता, लोकतंत्र में आस्था और नौकरशाही की सक्षमता का उन्नयन हो सके। अल्पसंख्यकों के तुष्टीकरण की बजाय इनके विकास को केन्द्र-बिन्दु बनाया जाना चाहिए। इससे हमारी पंथनिरपेक्षता की छवि का विस्तार होगा। सोशल मीडिया पर तर्कपूर्ण प्रतिबंध लगाए जाने चाहिए तथा भारणार्थियों की समस्या का प्राथमिकता के आधार पर समाधान ढूंढ़ा जाना चाहिए। राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में जितने महत्वपूर्ण हिन्दु हैं उतने ही मुसलमान; जितने महत्वपूर्ण मंदिर हैं उतनी ही मस्जिद; जितने महत्वपूर्ण राम हैं उतने ही अल्लाह। ये सभी भारत की खूबसूरती हैं जिन्हें आगे लाकर राष्ट्रीय एकीकरण के लक्ष्य को प्राप्त किया जाना चाहिए।

## संदर्भ सूची

1. देखें; इक्सटीन, हैरी एण्ड ऐप्टर, डेविड (संपा.), *कॉम्परेटिव पॉलिटिक्स*, न्यूयार्कः द फ्री प्रेस, 1963, पृ. 647; स्कॉट, रोजर (संपा.), *द पॉलिटिक्स ऑफ न्यू स्टेट्सः अ जनरल एनालिसिस विद केस स्टडीज फ्रॉम इस्टर्न इंडिया*, लंदनः अलेन एण्ड उनवीन, 1971, पृ. 28.
2. चौधरी, बासुकी नाथ एवं कुमार, युवराज (संपा.), *भारतीय शासन एवं राजनीति*, नई दिल्लीः ओरियंट ब्लैकस्वॉन, 2011, पृ. 497.
3. महात्मा गाँधी उद्धृत, भट्टाचार्या, विवेक रंजन, *टूवार्ड्स नेशनल यूनिटी एण्ड इंटीग्रेशन*, नई दिल्लीः मेट्रोपॉलिटन बुक कं., 1985, पृ. 98.
4. नारायण, जय प्रकाश, *थ्री बेसिक प्रॉब्लम्स ऑफ फ्री इंडिया*, बाम्बेः एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1964, पृ. 4.
5. घूर्ये, जी.एस., *सोशल टेन्शन्स इन इंडिया*, बॉम्बेः पॉपुलर प्रकाशन, 1968, पृ. 502.

6. वीनर, माइरन, *द पॉलिटिक्स ऑफ स्कारसिटीः पब्लिक प्रेशर एण्ड पॉलिटिकल रेस्पॉन्स इन इंडिया*, बॉम्बेः एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1963, पृ. 39.

7. नारायण, इकबाल, ''कलचरल प्लुरलिज्म, नेशनल इंटीग्रेशन एण्ड डेमोक्रेसी इन इंडिया'', *एशियन सर्वे*, अक्टूबर 1976, पृ. 903.

8. जवाहरलाल नेहरू उद्धृत, ''भावात्मक एकता'', त्रिवेदी, सुशील, *राष्ट्रीय एकता*, भोपालः मध्यप्रदेश पाठ्य पुस्तक निगम, 1989, पृ. 50.

9. स्टेटमेंट, *राष्ट्रीय एकता सम्मेलन*, 1961, पृ. 6.

10. कुमार, शशि भूषण, *भारतीय संघवादः केन्द्र-राज्य संबंध*, नई दिल्लीः जानकी प्रकाशन, 2009, पृ. 1.

11. विस्तृत अध्ययन के लिए देखें; कुमार, शशि भूषण, *उपरोक्त*, पृ. 2.

12. मुखर्जी, राधा कुमुद, *फंडामेंटल यूनिटी ऑफ इंडियाः फ्रॉम हिन्दु सोर्सेस*, लंदनः लॉगमेन्स ग्रीन एण्ड को., 1914.

13. जॉन स्ट्रेची उद्धृत, हांडा, मदन लाल, ''नेशनल यूनिटी, सोशल जस्टिस एण्ड एडुकेशनः द इंडियन एक्सपेरियंस'', इजराइल, मिल्टन (संपा.), *नेशनल यूनिटीः द साउथ एशियन एक्सपेरियंस*, नई दिल्लीः प्रोमिला एण्ड को. पब्लिशर्स, 1983, पृ. 58.

14. *वही*, पृ. 57.

15. आयंगर, के. आर.श्रीनिवास, *लिटरेचर एण्ड ऑथरशीप इन इंडिया*, लंदनः जार्ज अलेन एण्ड उनवीन लि., 1943, पृ. 9.

16. कोठारी, रजनी, ''कलचरल कॉनटेक्स्ट ऑफ कॉम्युनलिज्म इन इंडिया'', *इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली*, जनवरी 14, 1989, पृ. 81.

17. हैरिसन, सेलिग एस., *द वाइडेनिंग गल्फः एशियन नेशनलिज्म एण्ड अमेरिकन पॉलिसी*, न्यूयार्कः द फ्री प्रेस, 1978, पृ. 14-15.

18. विस्तृत विवरण के लिए देखें; हटिंग्टन, सैमुअल पी., ''पॉलिटिकल मॉडर्नाइजेशनः अमेरिका वर्सेज़ यूरोप'', *वर्ल्ड पॉलिटिक्स*, अप्रैल 1966, पृ. 402-04.

19. भट्ट, भरतराम, *एकता के चार अध्याय*, दिल्लीः इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, 1981, पृ. 47-70.

20. विस्तृत विवरण के लिए देखें; तरूण, हरिवंश, *भारत की राष्ट्रीय एकता*, दिल्लीः ज्ञान गंगा, 1991, पृ. 122-63.

21. जवाहरलाल नेहरू उद्धृत, कोठारी, रजनी, *स्टेट एण्ड नेशन -बिल्डिंग इन इंडिया*, नई दिल्लीः अलायड पब्लिशर्स, 1976, पृ. 195.

22. कोठारी, रजनी, *उपरोक्त*, पृ. 205.

23. मजीद, अख्तर, ''रिजनल कॉनफ्लीक्ट एण्ड द डेवेलपमेंट सिंड्रॉम'', कादरी, ए.जमील (संपा.), *इन्ट्रा -सोसायटल टेन्शन एण्ड नेशनल इंटीग्रेशनः सायको -लॉजिकल असेसमेंट*, नई दिल्लीः कॉनसेप्ट पब्लिशिंग हाउस, 1985, पृ. 123-31.

24. कुमार, उमेश, ''राष्ट्रीय एकता में प्रशासन की भूमिका'' हिन्दुस्तान, पटना, 26 जनवरी 1987 (गणतंत्र दिवस परिशिष्ट).

25. शकीर, मोईन, ''राइज ऑफ फंडामेटलिज्म'', लाल, रामजी (संपा.), *नेशनल इंटीग्रेशन सिम्पोसियम,* करनाल, दयाल सिंह कॉलेज, 1987,पृ. 115-22.

26. पाण्डेय, सुधारानी, ''राष्ट्रीय एकता में भाषा और संस्कृति की भूमिका'', *सेमिनार ऑन नेशनल इंटीग्रेशन एण्ड कॉम्यूनल हार्मोनी,* जनवरी 30-फरवरी 1, 1982, गाँधी दर्शन समिति, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, पृ. 225-29.

27. हकी, एस.ए.एच, ''लैंग्वेज ऐज अ फैक्टर इन फ्रैग्मेंटेशन एण्ड सोशल टेन्सन्स इन इंडिया,'' कादरी, ए.जमील. (संपा.),*उपरोक्त,* पृ. 173-84.

28. नम्बूदरीपाद, ई.एम.एस., *प्रॉब्लम्स ऑफ नेशनल इंटीग्रेशन,* कलकत्ताः नेशनल बुक एजेन्सी, 1966, पृ. 109-19.

29 रूडोल्फ, लॉयड आई. एण्ड रूडोल्फ, सुशान एच.,*द मोडर्निटी ऑफ पॉलिटिकल ट्रेडिशनः पॉलिटिकल डेवेलपमेंट इन इंडिया,* शिकागोः यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 1967, पृ. 111.

30. *वही,* पृ. 111; और कोठारी, रजनी (संपा.), *कास्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स,* नई दिल्लीः ओरियंट लॉगमैन, 1973, पृ. 20-23.

31. चन्द्रा, सुधीर, ''रीजनल कॉन्ससनेस इन नाइनटींथ सेन्चुरी इंडिया'', *इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* अगस्त 1982, पृ. 1278-85.

32 कोठारी, रजनी, *पॉलिटिक्स इन इंडिया,* नई दिल्लीः ओरियंट लॉगमैन, 1970, पृ. 200-01.

33. कृष्णन, एस., ''नेशनल इंटीग्रेशनः हिस्टोरिकल पर्सपेक्टिव'', *एडमिनिस्ट्रेटर,* वोल. 36, नं.01, जनवरी-मार्च 1991, पृ. 15-21.

34. आलम, खुर्शीद, ''नेशनल इंटीग्रेशनः ऐज रिलेटेड टू कॉम्यूनल प्रीजुडिस एण्ड सोशल डेपराइवेशन'', *मैन एण्ड डेवेलपमेंट,* वोल. 11, नं. 2, जून 1989, पृ. 67-72.

35. भट्टाचार्या, विवेक रंजन, *उपरोक्त,* पृ. 179-82.

36. चक्रवर्ती, निखिल, ''नेशनल इंटीग्रेशन नीड इज अ मूवमेंट'' *हिन्दुस्तान टाइम्स,* नई दिल्ली, सितम्बर 17, 1982.

37. *दैनिक भास्कर,* पटना, दिसम्बर 26, 2018.

# ग्राम सभा : भारतीय लोकतंत्र का प्रथम सोपान


## गाँधीजी राय एवं शेखर कुमार



*lkjk'k% ग्राम सभा पंचायती राज प्रणाली की प्रथम व्यवस्थापिका सभा है। यह उन समस्त शक्तियों का प्रयोग करेगी और ऐसे कार्य निष्पादित कर सकती है जो राज्य के विधानमंडल द्वारा निर्धारित किए गए हैं। व्यवहार के आधार पर यह ipk;rh jkt का लोक केंद्रित स्वरूप है। इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है कि गाँव की जनता द्वारा निर्वाचित सभी ग्राम पंचायत के प्रतिनिधि ग्राम सभा में उपस्थित होकर उनके प्रश्नों का उत्तर देते हुए लोकतंत्र की बुनियादी अवधारणा को सुदृढ़ करते हैं। यह भारतीय गणतंत्र का सबसे अनूठा और पंचायती राज का सबसे मौलिक स्वरूप है। ''जनता की, जनता के लिए और जनता के द्वारा सरकार''[1] की लोकतंत्र की अवधारणा को भारत में सही अर्थ में ग्राम सभा ही चरितार्थ करती है और इसीलिए यह लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण का जीता-जागता स्वरूप है। इसके कार्यों के निष्ठापूर्वक निष्पादन से देशांतर्गत 'चमकते भारत' (shining India) की अवधारणा को साकार किया जा सकता है। यही कारण है कि विविध सरकारी कार्यक्रमों एवं योजनाओं के माध्यम से सरकार द्वारा ग्राम सभा को शक्ति संपन्न और सक्रिय बनाने का हर संभव प्रयास किया जा रहा है।*


### प्रस्तावना

*ग्राम सभा एक सामूहिक निकाय है*

पंचायती राज व्यवस्था में ग्राम सभा एक सामूहिक निकाय है जिसमें ग्राम पंचायत की निर्वाचन सूची में दर्ज सभी व्यक्ति, जो 18 साल या उससे अधिक उम्र के हैं, सदस्य होते हैं। पागल, दिवालिया, दुराचारी तथा निर्वाचन संबंधी अपराध से दंडित व्यक्तियों को ग्राम सभा की सदस्यता से वंचित रखा गया है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 247 (B) में ग्राम सभा को परिभाषित किया गया है।[2] यह पंचायती राज व्यवस्था का

प्राथमिक अनूठा निकाय है। अनूठा निकाय इसलिए भी है कि जहाँ *पंचायती राज* की अन्य सभी संस्थाओं– ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद का निर्माण निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा होता है, वहाँ ग्राम सभा का निर्माण मतदाताओं से होता है। लोकतंत्र की पहली सीढ़ी के रूप में ग्राम सभा का इसलिए भी महत्त्व है कि इसके द्वारा लिए गए निर्णय किसी अन्य निकाय द्वारा रद्द नहीं किए जा सकते। इसके निर्णयों को निरस्त करने का अधिकार सिर्फ ग्राम सभा में ही निहित होता है।[3]

## ग्राम सभा की निर्धारित बैठकें

1992 के *73 वें सांविधानिक संशोधन अधिनियम*[4] के आलोक में ग्राम सभा की बैठक समय-समय पर होगी, किंतु किन्हीं दो बैठकों के बीच का अंतराल तीन महीनें से अधिक का नहीं होगा। बैठक की सूचना ग्राम पंचायत कार्यालय में चिपका दी जाएगी और इसे जनता के बीच डुगडुगी पिटवाकर भी प्रसाारित कर दी जाएगी। निर्धारित अंतराल पर नियमित रूप से ग्राम सभा की बैठक के संयोजन का दायित्व *मुखिया* का होगा। यदि मुखिया निर्दिष्ट रीति से बैठक का संयोजन नहीं कर पाता है तो पंचायत समिति का *कार्यपालक पदाधिकारी* ऐसी बैठक का संयोजन करेगा। स्पष्ट है कि *राज्य पंचायती राज अधिनियम* के अनुसार ग्राम सभा की साल में (जनवरी से 31 दिसंबर) कम-से-कम चार बैठकें अवश्य होनी हैं। ग्रामीणजनों के हित में ग्राम पंचायतें सुविधानुसार अन्य राष्ट्रीय/अंतरराष्ट्रीय दिवसों[5] पर भी ग्राम सभा की बैठकें आयोजित कर सकती हैं। ग्राम सभा की प्रत्येक बैठक की अध्यक्षता उस ग्राम पंचायत का मुखिया और उसकी अनुपस्थिति में उपमुखिया करता है। ग्राम सभा की बैठक का *कोरम* कुल सदस्यों की संख्या के *बीसवें* भाग अर्थात पाँच प्रतिशत की उपस्थिति से पूरा होने का प्रावधान है। यदि कोरम की कमी के चलते बैठक स्थागित हो जाती है तो उसके बाद की बैठक बुलाने पर कुल सदस्यों की संख्या के *40वें भाग* यानी 2. 5 प्रतिशत उपस्थिति से *कोरम* पूरा होने का प्रावधान है।[6] उल्लेखनीय कि *कोरम* पूरा नहीं होने पर ग्राम सभा की बैठक का निर्णय मान्य नहीं होगा। अर्थात ग्राम सभा की बैठक में *कोरम* का पूरा होना हर हाल में अनिवार्य है।[7]

जहाँ बिहार, असम, मध्य प्रदेश में चार बार ग्राम सभा की बैठकें आयोजित करने का प्रावधान है वहाँ गुजरात एवं महाराष्ट्र में वर्ष में ग्राम सभा की सिर्फ दो ही बैठकें करने का प्रावधान है। गुजरात में ग्राम सभा लेखा-जोखा पर विचार करती है और सुझाव देती है, लेकिन ग्राम सभा के सुझाव को मानना ग्राम पंचायत के लिए बाध्यकारी नहीं है। इस दृष्टि से गुजरात सहित हरियाणा, पंजाब और हिमाचल प्रदेश के *पंचायत राज अधिनियम* प्रगतिशील नहीं माने जा सकते। मध्य प्रदेश में ग्राम सभा की बैठक सचिव द्वारा बुलायी जाती है, जबकि बिहार में ग्राम सभा की बैठक की सूचना पंद्रह दिन पूर्व सूचना चिपका कर, डुगडुगी बजवाकर, व्यक्तिगत संपर्क के आधार पर दिए

जाने का प्रावधान है। स्कूलों में पढ़ रहे बच्चों को भी सूचना दी जाती है ताकि वे अपने अभिभावकों को ग्राम सभा की बैठकों में भागीदारी के लिए उत्प्रेरित कर सकें। ग्राम सभा की बैठक में सदस्यों की सक्रिय भागीदारी पंचायत राज व्यवस्था को सुदृढ़ एवं ग्रामीण विकास को गति प्रदान कर सकती है। इस उद्देश्य से ग्राम सभा के सदस्यों का ग्राम सभा की बैठकों में भाग लेना न सिर्फ उनका अधिकार है, बल्कि उनका कर्तव्य भी है। ग्राम सभा में अपनी सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रत्येक ग्राम सभा के सदस्य को अपने अधिकार और कर्तव्य के प्रति जागरूक रहना ग्राम पंचायत के चतुर्दिक विकास एवं सतत प्रगति के लिए नितांत आवश्यक है। ग्राम सभा के सदस्यों की सक्रिय भागीदारी से ही ग्राम पंचायतों का सर्वांगीण विकास संभव है और तब गाँधी का सपना *'ग्राम स्वराज हो अपना'* सफल होगा। यही कारण है कि ग्राम सभा को *पंचायती राज* की *आत्मा* कहा जाता है और आत्मा की रक्षा करना प्रत्येक नागरिक का धर्म एवं कर्म होता है।[8]

## ग्राम सभा की प्रासंगिकता और महत्त्व

*पंचायती राज व्यवस्था* में ग्राम सभा ही वह आधारशिला है जिस पर *पंचायती राज* की सफलता का पूरा विकसित ढाँचा अवस्थित है। इसका सरल, शांत, सामाजिक आर्थिक जीवन प्राचीन काल से ही सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक वैज्ञानिकों को आकर्षित करता रहा है। *आंद्रे बेते* के अनुसार, ''गाँव सिर्फ वह स्थान नहीं है, जहाँ लोग रहते हैं, यह वह अभिकल्पना है जिसमें भारतीय सभ्यता के आधारभूत मूल्य दिखाई देते हैं''।[9] राष्ट्रपिता *महात्मा गाँधी* की मान्यता थी कि सत्य और अहिंसा का बोध सिर्फ गाँव के सरल जीवन में ही संभव है। भारत की आत्मा गाँवों में निवास करती है। भारत विश्व का ऐसा पहला देश है जहाँ पर स्थानीय स्वशासन के प्राचीनकालीन प्रमाण मिलते हैं। भारत में प्राचीन समय से ही स्थानीय स्वशासन की सबसे छोटी इकाई के रूप में 'ग्राम' का वर्णन है जहाँ का प्रमुख 'ग्रामीण' होता था। *वैदिक काल* के विभिन्न ग्रंथों में ग्रामीण जीवन और ग्राम सभा का वर्णन मिलता है। *गाँधीजी* ने देश के विकास में ग्रामीणजनों की सहभागिता की आवश्यकता को रेखांकित करते हुए कहा था, ''सच्ची लोकशाही केंद्र में बैठे 20 लोग नहीं चला सकते। वे दिल्ली जैसे बड़े शहर में हैं, उसे भारत के सात लाख गाँवों में बाँटना चाहूँगा''।[10] जैसा कि अमेरिकी राष्ट्रपति *अब्राहम लिंकन* की लोकतंत्र की परिभाषा को ऊपर उद्धृत करते बताया गया है कि लोकतंत्र का सच्चा अर्थ लोगों का, लोगों के लिए तथा लोगों द्वारा किया जाने वाला शासन है। लोकतंत्र की यह अवधारणा सही अर्थ में तब मूर्तरूप धारण करती है जब ग्राम सभा में बैठा व्यक्ति अपने एवं क्षेत्र के विकास की बात को सर्वसम्मति से लागू करता है। निःसंदेह *पंचायती राज व्यवस्था* में ग्राम सभा ही वह सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा ग्रामीणजनों की सक्रिय सहभागिता सुनिश्चित करके देश की वास्तविक

तस्वीर बदली जा सकती है। इस तथ्य को भारतीय संविधान के निर्माताओं ने भी बखूबी समझा जिसका परिणाम था कि उन्होंने संविधान के *नीति निदेशक सिद्धांतो* में *अनुच्छेद 40*[11] के अंतर्गत राज्यों को 'ग्राम पंचायत' के गठन का निर्देश दिया। संविधान निर्माताओं ने ऐसी परिकल्पना की कि ग्राम सभा के जरिए *ग्राम स्वराज* का सपना साकार करके गाँवों को विकास की दौड़ में समावेशित करना संभव होगा। उल्लेखनीय है कि 2 अक्टूबर 1959 को 'ग्राम स्वराज' के स्वप्न को साकार करने के लिए तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने राजस्थान के नागौर जिलें में पंचायती राज का श्रीगणेश करते हुए कहा था, ''हम अपने देश में लोकतंत्र की आधारशिला रख रहे हैं। यदि महात्मा गाँधी आज जीवित होते तो बहुत प्रसन्न होते''। ग्राम सभा का भारतीय लोकतंत्र में बढ़ते महत्त्व के आलोक में ही देश में 73वें सांविधानिक संशोधन अधिनियम (1992) के तहत ग्राम सभा को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया तथा अनुच्छेद 243 (क) के तहत ग्राम सभा को शक्तियाँ प्रदान करने का कार्यभार राज्य सरकार को सौंपा गया। यह ग्राम सभा के सशक्तिकरण का ही प्रभाव है कि संविधान की *11वीं अनुसूची* में निर्दिष्ट *29* विषयों[12] के संबंध में योजना बनाने, क्रियान्वित करने तथा उनके मूल्यांकन की जिम्मेवारी ग्राम सभाओं को सौंपी गई है।

## ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्रारंभ से ही ग्राम पंचायत का विकास एक ऐसी संस्था के रूप में हुआ जिसमें ग्राम के सभी वर्गों के गणमान्य व्यक्ति स्थानीय मुद्दों पर विचार-विमर्श द्वारा निर्णय करते थे। प्राचीन समय से ही स्थानीय स्वशासन की सबसे छोटी इकाई के रूप में 'ग्राम' का विकास हुआ था। ग्राम सभा नामक संस्था का अस्तित्व भारत के लिए नया नहीं था। *ऋग्वेद* में 'ग्रामीण' शब्द का उल्लेख है, जो पंच का प्रयाय है। *रामायण* या *महाभारत* काल में भी 'ग्राम' शासन की सबसे छोटी इकाई थी। गाँवों के पंच लोगों द्वारा स्थानीय जन से कर वसूलकर राजा का सहयोग किया जाता था। जहाँ *मनुस्मृति* में भी ग्राम के प्रशासन में स्वशासन का उल्लेख किया गया है वहाँ कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में राजा को कम-से-कम 100 परिवार तथा अधिक-से-अधिक 500 परिवार के एक गाँव की रचना का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार, मौर्यकाल, गुप्तकाल, सल्तनतकाल, मध्यकाल तथा ब्रिटिशकाल तक गाँव के शासन में केंद्र का हस्तक्षेप नही के बराबर था। ग्रामीण संस्थाओं में प्रशासनिक एवं न्यायिक दोनों शक्तियाँ समाविष्ट थीं। इसके चलते आम स्थानीय जन की आवश्यकता एवं समस्या का समाधान गाँव के पंचायत से ही हो जाता था। भारतीय स्वतंत्रता के सैकड़ों वर्षों के ब्रिटिश शासन में ग्रामीण स्वशासन का यह तानाबाना काफी प्रभावित हुआ।

भारतीय स्वतंत्रता के बाद भारतीय गणराज्य में राज व्यवस्था का स्वरूप निर्धारित करते समय *पंच परमेश्वर* की परंपरा को कायम रखते हुए भारतीय संविधान में राज्य

सरकारों को ग्राम पंचायतों को सशक्त बनाने के निर्देश दिए गए। परिणामस्वरूप, प्रथम पंचवर्षीय योजना में भी जनकल्याण की भावना से सामुदायिक विकास कार्यक्रम बड़े पैमाने पर प्रारंभ किए गए।

## बलवंत राय मेहता समिति

लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के सिद्धांत का प्रयोग भारतीय स्थानीय स्वशासन के संगठन के संबंध में किया गया है। 1957 में भारत सरकार ने *बलवंत राय मेहता* की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया था। उस समिति ने लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के आधार पर *पंचायती राज* की स्थापना की थी। उसने स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को नए ढंग से संगठित करने का सुझाव दिया था। समिति ने स्पष्ट रूप से कहा था कि प्रत्येक राज्य में जिला स्तर पर *जिला परिषद*, प्रखंड स्तर पर *पंचायत समिति* तथा ग्राम स्तर पर *ग्राम पंचायत* की स्थापना होनी चाहिए। उसने यह भी कहा था कि इन स्वायत्त संस्थाओं को स्थानीय मामलों के अलावा योजना तथा विकास संबंधी कार्य भी सौंपने चाहिए। पंचायतों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा हो। इसके बाद प्रखंड स्तर पर पंचायत्त समिति का गठन पंचायतों के मुखिया तथा उस क्षेत्र की कुछ अन्य संस्थाओं के प्रतिनिधियों द्वारा हो। इस प्रकार समिति का सुझाव स्थानीय स्तर पर *त्रिस्तरीय ढाँचे* का निर्माण करना था। समिति ने कहा, ''लोकतंत्र की परिकल्पना यह है कि सिर्फ ऊपर से शासन नहीं चलाया जाए, बल्कि स्थानीय प्रतिभाओं का विकास भी किया जाए। यह तभी संभव है जबकि लोग सक्रियता से सरकार के कार्यों में भाग ले सकें। यही सत्ता का विकेंद्रीकरण या पंचायती राज है।

## विभिन्न समितियाँ

*बलवंत राय मेहता समिति* की अनुशंसा के आलोक में गठित *पंचायती राज संस्थाएँ* बिहार सहित प्रायः सभी राज्यों में वर्षों तक काम करती रहीं। देशांतर्गत पंचायतों को सुदृढ़ एवं विकसित करने के उपाय सुझाने के लिए समय-समय पर विभिन्न समितियों का गठन किया जाता रहा है। 1977 में *जनता पार्टी* के शासन के दौरान *अशोक मेहता समिति* ने ग्राम, प्रखंड तथा जिला स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं का अप्रासंगिक होने तथा प्रभावशाली नहीं बनने के अन्य कारणों सहित वित्तीय संशोधन का पूर्ण अभाव माना और इसमें सुधार के लिए कानूनी व्यवस्था करने का सुझाव दिया था, लेकिन उसकी अनुशंसाएँ कार्यरूप नहीं ले सकीं। दिनोंदिन अप्रासंगिक एवं बेमेल होती *पंचायती राज व्यवस्था* को सामयिक बनाने के उद्देश्य से 1985-86 के दौरान भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री *राजीव गाँधी* ने इन संस्थाओं के संबंध में गंभीरतापूर्वक विचार करने के लिए राज्य सरकारों से विशेष रूप से आग्रह किया। पुनः 1986 में *लक्ष्मीमल सिंधवी समिति* का गठन किया गया जिसे पंचायती राज संस्थाओं को पुनः जीवित करने संबंधी सिफारिशें देने की

जिम्मेवारी सौंपी गई। *सरकारिया आयोग* तथा *थुंगन कमिटी* ने भी जिला स्तर पर तथा उससे नीचे पंचायती राज प्रणाली को सुदृढ़ करने की सिफारिशें की थीं। पंचायती राज संस्थाओं की सत्ता और प्राधिकार में गिरावट का मुख्य कारण राज्य स्तर के नेताओं द्वारा जिला स्तर के नेताओं के साथ सहभागिता का अभाव रहा। पंचायती राज व्यवस्था के लिए अपनी प्रतिबद्धता के चलते ही *राजीव गाँधी* ने 5 मई 1989 को नई दिल्ली में पंचायती राज पर मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन को संबोधित करते हुए पिछले तीस सालों के अनुभव के आलोक में *नई पहल* शुरू करने की बात कही। उनका यह कहना सही था कि हमारे समाज के कमजोर वर्गों, विशेषकर अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं का पंचायती राज संस्थाओं में प्रतिनिधित्व बहुत ही कम रहा है। उनकी समस्याओं की ओर कम ध्यान दिया गया और इस तरह उन्हें पंचायती राज संस्थाओं के लाभ समान रूप से नहीं मिल रहे थे। चूँकि भारत में योजनाएँ ज्यादा-से-ज्यादा केंद्रीकृत हो गई थीं, इसलिए उन्होंने योजनाओं को पंचायती राज संस्थाओं के अनुभवों और प्रस्तावों पर आधारित होने पर बल दिया। गाँवों के लोगों को विकास प्रक्रिया का अंग तभी बनाया जा सकेगा जबकि प्रतिनिधिक पंचायती राज संस्थाएँ योजनाएँ तैयार करने और विकास प्रक्रिया को लागू करने में प्रमुख तंत्र बनें। ग्राम पंचायतों के प्रति यह सरकार की गंभीरता का ही परिणाम था कि 27 मई 2004 को अलग *पंचायती राज मंत्रालय* का गठन कर दिया गया। इसका उद्देश्य 73वें संविधान संशोधन द्वारा जोड़े गए संविधान के *खंड-9* के प्रावधानों के क्रियान्वयन की बेहतर निगरानी था।

## ग्राम सभा लोकतंत्र का हृदय स्थल

पंचायती राज व्यवस्था में ग्राम सभा भारतीय लोकतंत्र का प्रथम सोपान है। ग्राम सभा की भागीदारी के बिना किसी भी योजना का सफल क्रियान्वयन असफल है। यदि ग्राम सभाओं को सशक्त एवं क्षमताशील बना दिया जाए तो निश्चित रूप से भारत का भविष्य स्वस्थ, विकसित एवं खुशहाल होगा। गाँवों के हित में योजना बनाना, लाभार्थियों का चयन करना, सार्वजनिक संपत्तियों की रक्षा करना, जनसहभागिता निभाना तथा जनसुनवाई के द्वारा पारदर्शिता एवं जबावदेही लाने की महतम जिम्मेवारी ग्राम सभा की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। भारतीय संविधान के *73वें संविधान संशोधन अधिनियम* में ग्राम सभा के गठन के संबंध में जो प्रावधान किए गए हैं, उससे स्पष्ट होता है कि ग्राम सभा सचमुच में भारतीय लोकतंत्र का हृदय स्थल है। संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार इसके गठन को टाला नहीं जा सकता।

## ग्रामीण स्वशासन का आधार स्तंभ

ग्राम सभा ग्रामीण स्वशासन का आधार स्तंभ इसलिए है कि ग्राम सभा में ग्रामीणों द्वारा लिए गए विभिन्न निर्णयों में ग्रामीण स्वशासन का प्रतिबिंब दिखाई

पड़ता है। चूँकि ग्राम सभा का सदस्य 18 वर्ष और इससे अधिक उम्र के सभी ग्रामीण लोग होते हैं इसलिए ग्राम सभा के द्वारा महिलाओं, अनुसूचित जाति एवं जनजाति तथा पिछड़े वर्ग के लोगों को ग्रामीण विकास में सक्रिय भागीदारी का अवसर उपलब्ध होता है। ग्राम सभा के माध्यम से ग्रामीणजनों को ग्रामीण प्रशासन में प्रत्यक्ष भागीदारी मिलने से उनमें आत्म विश्वास बढ़ता है। इससे विकास के प्रति उनकी जबावदेही सुनिश्चित होती है और उनमें सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना जागृत होती है। इसके साथ ही ग्राम सभा की एक महत्त्पूर्ण उपलब्धि यह भी है कि यह ग्रामीणजनों को रंग, धर्म, जाति, संप्रदाय आदि भेदभाव की लकीरों को समाप्त करके एक *सामूहिक मंच* प्रदान करती है। इस सामूहिक मंच के माध्यम से ग्रामीणजन न सिर्फ अपनी बात प्रस्तुत कर सकते हैं, वरन् अपनी आवश्यकताओं, समस्याओं एवं चिंताओं का निराकरण भी कर सकते हैं। निःसंदेह ग्रामीण विकास प्रक्रिया में ग्रामीणजनों की भागीदारी सुनिश्चित करने तथा सत्ता के विकेंद्रीकरण की दृष्टि से ग्राम सभा आज एक महत्त्वपूर्ण आयाम के रूप में उभरकर ग्रामीण विकास को गति प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। महिलाओं के विकास और रोजगार के लिए संचालित स्वसहायता समूह योजना को ग्राम सभा अधिक कारगर ढंग से क्रियान्वित करके ग्रामीण महिलाओं को सशक्त एवं सबल बनाने में योगदान कर रही है। उल्लेखनीय है कि गाँवों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी के परिणामस्वरूप पूर्वोत्तर राज्यों तथा तमिलनाडु में सकारात्मक एवं आशाजनक परिवर्तन हुए हैं। इसके साथ ही समाज में प्रचलित धार्मिक अंध ाविश्वासों, रूढ़ियों, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा बाल विवाह जैसी कुरीतियों के निवारण में भी महिलाएँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

## सशक्त होती ग्राम सभा

मार्च 2004 में गठित *पंचायती राज मंत्रालय* ने पंचायतों के सशक्तिकरण के लिए विविध उपाय किए हैं। इसी के तहत त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थाओं में सांविधानिक संशोधन द्वारा महिलाओं के लिए *33* प्रतिशत सीटें आरक्षित की गई हैं। ग्राम सभा को सशक्त, सक्रिय एवं सामूहिक उत्तरदायित्व की कारगर संस्था के रूप में तब्दील करके ही लोकतंत्र की सच्ची अवधारणा को साकार किया जा सकता है। समाज, सरकार तथा कानून के जानकारों के साथ गहन विचार-विमर्श के पश्चात् पंचायती राज कानून में आवश्यक संशोधन हेतु *स्वराज अभियान* संबंधी दस्तावेज तैयार किया गया है जिससे ग्राम सभाओं की सुदृढ़ीकरण हेतु यथासंभव, सुदृढ़ अधिनियम की अवधारणा निम्नलिखित रूप में व्यक्त की गई है–

1. वे सभी कार्य जो गाँव में संपन्न होते हैं और जिनका अंतर्संबंध किसी अन्य गाँव से नहीं है, गाँव के स्तर पर ही संपन्न किए जाएँ। ऐसे कार्य जो गाँव के स्तर पर संपन्न नहीं किए जा सकते और ऐसे कार्य जो इस स्तर पर संपन्न

नहीं हो सकते, उन्हें प्रखंड स्तर, जिला स्तर या राज्य स्तर पर स्थिति अनुसार हस्तांतरित कर दिया जाना चाहिए और शासन के प्रत्येक स्तर के लिए ऐसे कार्यों की सूची बना ली जानी चाहिए।

2. वैसी सभी संस्थाएँ जैसे स्कूल, अस्पताल, दवाखाना इत्यादि जो किसी एक गाँव के लोगों के लिए हैं, उसे सिर्फ गाँव द्वारा चलाया जाए अन्यथा जिला या राज्य स्तर पर चलाया जाए।
3. ग्राम सभा ही भू-उपयोग संबंधी बदलाव के संबंध में निर्णय लेगी।
4. अपने प्राकृतिक संसाधनों पर ग्राम सभा पूरा सामुदायिक नियंत्रण रखेगी।
5. भूमि हस्तांतरण संबंधी रिकॉर्ड की देखभाल ग्राम सभा ही करेगी।
6. सड़क, गलिया, जन शौचालय इत्यादि जो पूरी तरह किसी एक गाँव की सीमा के अंदर हों, उनकी देखभाल और निगरानी की जिम्मेवारी ग्राम स्तर पर हो अन्यथा प्रखंड, जिला या राज्य को सौंप देना चाहिए।
7. राज्य के राजस्व का कम-से-कम 50 प्रतिशत हिस्सा एकमुश्त राशि के रूप में तथा किसी योजना विशेष से संबद्ध किए बगैर ही सीधे ग्राम सभाओं को सौंपा जाए और ग्राम, प्रखंड तथा जिला स्तर की व्यवस्था से संबंधित राज्य सरकार की योजनाएँ समाप्त कर दी जाएँ।
8. ग्राम स्तर पर सभी निर्णय ग्राम सभा द्वारा ही लिया जाना चाहिए। ग्राम सभा द्वारा लिए गए निर्णयों के क्रियान्वयन की जिम्मेवारी ग्राम सचिव की होगी। ग्राम सभा ग्राम सचिव की नियुक्ति करेगी। यदि ग्राम सभा के किसी निर्णय को लेकर कोई कानूनी विवाद उत्पन्न होता है तो इसका निपटारा लोकपाल द्वारा किया जाएगा।
9. ग्राम सभा की बैठक महीने में कम-से-कम एक बार अवश्य होगी। सचिव बैठक का कार्यक्रम तय करेगा और बैठक से एक सप्ताह पूर्व ग्राम सभा के सभी लोगों के बीच इसे वितरित करेगा। *आपसी सहमति* के आधार पर ही ग्राम सभा में कोई निर्णय लिया जाएगा।
10. यदि ग्राम सभा के पास किसी प्रकार की अनियमिता की जानकारी होती है या अन्य कारण से ग्राम सभा चाहे तो किसी मामले में जाँच करा सकती है, जो एक निश्चित समय-सीमा में जाँच प्रतिवेदन ग्राम सभा को सौंपेगी। ग्राम सभा इस प्रतिवेदन को पूर्णतः या आंशिक रूप से स्वीकार या खारिज कर सकती है अथवा उस पर यथोचित कदम उठा सकती है।
11. ग्राम सभा की 90 प्रतिशत महिला सदस्यों की सहमति के बगैर शराब की दुकान का परमिट नहीं दिया जाएगा।

12. रिकार्ड में पारदर्शिता के लिए ग्राम, प्रखंड तथा जिला पंचायत के सभी आंकड़े सार्वजनिक हों। प्रत्येक सप्ताह दो निर्धारित दिवसों पर निश्चित समय पर कोई भी व्यक्ति ऐसे कागजातों को देख सकता है। यदि कोई इनकी प्रति चाहता है तो वह निर्धारित शुल्क जमा कर प्राप्त कर सकता है।

## ग्राम स्वराज अभियान (14 अप्रैल 2018-5 मई 2018)

11 अप्रैल 2018 से 5 मई 2018 तक 'ग्राम स्वराज अभियान– *सबका साथ, सबका गाँव, सबका विकास कार्यक्रम*' आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य सामाजिक सौहार्द को बढ़ावा देना, गरीब परिवारों तक पहुँच कायम करना और केंद्र सरकार की विभिन्न जनकल्याणकारी योजनाओं तथा कार्यक्रमों से वंचित रह गए सभी लोगों को इनके दायरे में लाकर लाभान्वित करना है। *ग्राम स्वराज अभियान* के दौरान 21,058 गाँवों के लिए विशेष पहल शुरू की गई। इस अभियान के अंतर्गत गरीब समर्थक पहलों में उज्जवला योजना, मिशन इंद्रधनुष, प्रधानमंत्री सौभाग्य योजना, उजाला योजना, प्रधानमंत्री जनधन योजना, प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना और प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना का शत प्रतिशत अच्छादन किए जाने का उद्देश्य है।[13] इस अभियान के तहत 14 अप्रैल 2018 को *अंबेडकर जयंती* मनाई गई। 18 अप्रैल 2018 को *स्वच्छ भारत पर्व* के तहत ग्राम स्वच्छता अभियान कार्यक्रम आयोजित किया गया। 20 अप्रैल 2018 को *उज्जवला पंचायत* के रूप में मनाया गया और उस दिन 15000 स्थानों पर एलपीजी कनेक्शन वितरित किया गया। 24 अप्रैल 2018 को राष्ट्रीय एवं ग्राम सभा स्तर पर *पंचायती राज दिवस* आयोजित किया गया। प्रधानमंत्री *नरेंद्र मोदी* ने इस अवसर पर मंडला मध्यप्रदेश में संबोधन किया जिसका सीधा प्रसारण *ग्राम सभाओं* में किया गया। इस दिन प्रत्येक गाँव में 'स्थानीय सरकार निर्देशिका' (एलजीडी) का ई-लांच किया गया जिसके अंतर्गत प्रत्येक ग्राम पंचायत में ग्राम सभा का आयोजन होगा और सार्वजनिक सूचना अभियान आयोजित किए जाएँगे।[14] 28 अप्रैल 2018 को 'ग्रामशक्ति अभियान' के रूप में मनाया गया।[15] 30 अप्रैल 2018 को *आयुष्मान भारत* के अवसर पर ग्राम पंचायत स्तर पर लाभार्थियों की सूची का प्रमाणीकरण किया गया। अतः स्पष्ट है कि *ग्राम स्वराज अभियान* का उद्देश्य पंचायत स्तर पर ग्राम सभा को सशक्त करना है।

## ग्रामीण बजट में पंचायतों की भूमिका

ग्रामीण विकास के लिए निर्मित ग्रामीण बजट में पंचायतों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। पंचायती निकायों के गठन के बाद राज्य सरकार के *पंचायती राज विभाग* द्वारा बनाए गए बजट का सीधा सरोकार ग्रामीणों से संबंधित है जिसमें *ग्राम सभा* की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। ग्रामीण विकास से जुड़े कार्यक्रमों का संचालन *ग्राम सभा* में ही होता है। ग्रामीण बजट में पंचायतों को कर वसूली की भी छूट देने से सही

अर्थ में महात्मा गाँधी के स्वराज की अवधारणा साकार रूप ले सकेगी। यदि पंचायतों का बजट ग्राम सभा में बनता है तो इससे ग्राम सभा की गाँव की विकास की जिम्मेवारी संबंधी दायित्व का बोध होता है। ग्रामीण बजट में कुटीर एवं लघु उद्योगों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। ऐसे उद्योग जो सामुदायिक व सहभागिता के तौर पर संचालित हो सकें, उन उद्योगों को प्रमुखता से ग्रामीण बजट में सम्मिलित करना होगा। उल्लेखनीय है कि ग्रामीण बजट के तहत देश के सभी पंचायतों के विकास के लिए निश्चित राशि केंद्रीय बजट में आवंटित की जाती है। केंद्र सरकार जो अनुदान पंचायतों को सीधे तौर पर भेजती है, उस पर ग्राम सभा का अधिकार होना चाहिए कि संबंधित राशि किन-किन कार्यों में खर्च होगी। पंचायतों में ग्राम सभा के सशक्तिकरण के लिए नवगठित *पंचायती राज मंत्रालय* ने निम्नलिखित विविध उपाय किए हैं–

1- **fiNMk {k= vuqnku dk"k&** इस योजना के तहत उन जिलों को अनुदान दिए जाने का प्रावधान है, जो विकेंद्रीकृत, सहभागी तथा समग्र नियोजन प्रक्रिया को बढ़ावा देने की शर्तों को पूरा करते हैं। इस योजना के तहत मई 2016 तक 272 जिले शामिल किए गए थे।

2- **xkeh.k 0;kikj dsUnz&** ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी, बेरोजगार, असमानता के साथ कृषि क्षेत्र में पिछड़ापन लगातार एक चुनौती बनती जा रही है। तीव्र आर्थिक विकास का लाभ ग्रामीण क्षेत्र तक पहुँचाने का सशक्त माध्यम पंचायती राज संस्था है। इसे ध्यान में रखते हुए 2007 में *ग्रामीण व्यापार केंद्र* योजना का शुभारंभ किया गया। यह योजना *चार पी* (4P- Public, Private, Panchayat and Partnership) से निर्मित एक आदर्श योजना है जिसका उद्देश्य रोजगार के साधन में वृद्धि के साथ गैर-कृषिगत कार्यों से आय के स्त्रोत निर्मित करना तथा ग्रामीण रोजगार को बढ़ावा देकर ग्रामीण विकास को गति देना है। प्रारंभ में इस योजना में 35 जिलों का चयन किया गया। इस योजना से न सिर्फ ग्रामीण विकास को बढ़ावा मिलेगा बल्कि ग्राम पंचायतों का सशक्तिकरण भी होगा।[16]

3- **b-xoukal ifj;kstuk&** इस योजना के तहत विकेंद्रीकृत डाटा बेस एवं नियोजन, पंचायती बजट निर्माण व लेखाकर्म, केंद्र तथा राज्यों की योजनाओं का क्रियान्वयन और निगरानी, आम जन केंद्रित विशिष्ट सेवाएँ तथा सूचना प्रौद्योगिकीय सेवाओं को प्रदान करने आदि का उद्देश्य सम्मिलित है। इस योजना के अंतर्गत सभी पंचायतों को प्रारंभिक तीन वर्षों के लिए 4500 करोड़ की लागत से कंप्यूटर सुविधाएँ प्रदान करने का उद्देश्य है। इस योजना से ग्राम सभा को अधिक पारदर्शी, जबावदेहयुक्त और आधुनिक बनाया जा सकता है।[17]

**4- efgyk vkj{k.k&** पंचायत के अंतर्गत ग्राम सभा गाँव के संपूर्ण नागरिकों की सहभागिता को प्रोत्साहित करती है। उल्लेखनीय है कि *73वें संविधान संशोधन अधिनियम* द्वारा प्रत्येक स्तर की पंचायतों के एक-तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित कर दिए गए है।[18] इसके साथ ही सरकार के विभिन्न कार्यक्रमों/योजनाओं आदि में भी नारी सशक्तिकरण के अनुकूल प्रयासों से भी इसमें काफी प्रगति देखी जा रही है।

## अन्य विविध उपाय

उपर्युक्त अन्य उपायों के अलावा *पंचायती राज मंत्रालय* पंचायतों के अंतर्गत ग्राम सभाओं के सशक्तिकरण और विकास के लिए अन्य तरीकों और योजनाओं के लिए भी प्रयास कर रहा है। इन प्रयासों के अंतर्गत ग्राम सभाओं के सशक्तिकरण के लिए आवश्यक नीतिगत वैद्यानिक कार्यक्रम परिवर्तन, पंचायतों में अधिक कार्यकुशलता, पारदर्शिता तथा जबावदेही सुनिश्चित एवं सुव्यवस्थित करने के लिए बेहतर प्रणाली तथा प्रक्रिया को बढ़ावा देना तथा जागरूकता फैलाने जैसे विशिष्ट उपाय आदि सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त विभिन्न सरकारी योजनाओं, कार्यक्रमों के क्रियान्वयन और निगरानी सीधे पंचायतों के अंतर्गत ग्राम सभा को सौंप दी गई है। इनमें *मनरेगा* और *इंदिरा आवास योजना* प्रमुख हैं।

उपर्युक्त तथ्य स्पष्ट करते हैं कि पंचायतों के अंतर्गत ग्राम सभा दिनोंदिन सशक्त होती जा रही है। ग्राम सभा की जिम्मेवारियों और महता के आलोक में हम यह कह सकते हैं कि ग्राम सभा को मजबूत बनाए बिना देश में स्वराज नहीं आ सकता। 73वें संविधान संशोधन की भावना के अनुरूप गाँव के मामले में ग्राम सभा की सार्वभौमिकता को अक्षुण्ण रखते हुए बीपीएल निर्धारण, सामाजिक सुरक्षा पेंशन, इंदिरा आवास, कर निर्धारण, राजस्व वसूली सहित सभी विकास और कल्याण योजनाओं का निर्धारण सिर्फ ग्राम सभा में होने से महात्मा गाँधी के स्वराज की अवधारणा को मूर्त रूप दिया जा सकता है।

## ग्राम सभा की बढ़ती भूमिका और कार्य

*पंचायती राज व्यवस्था* में ग्राम सभा का बढ़ता महत्त्व सच्चे लोकतंत्र की परिकल्पना को साकार करता है। सरकार द्वारा शिक्षा, रोजगार एवं आपदा प्रबंधन के लिए पारित विविध अधिनियमों का क्रियान्वयन पारदर्शी व प्रभावी ढंग से करने का दायित्व ग्राम सभा को सौंपा गया है। इस संदर्भ में *महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2005* को रोजगारोन्मुखी एवं लाभदायक बनाने के लिए ग्राम पंचायत के अंतर्गत संपादित कार्यों एवं योजनाओं के क्रियान्वयन की निगरानी और नियमित सामाजिक अंकेक्षण की जिम्मेवारी ग्राम सभा को सौंपी गई। इसका उद्देश्य योजनाओं के क्रियान्वयन में पारदर्शिता एवं जबावदेही सुनिश्चित करके

अपेक्षित सफलता प्राप्त करना था।[19] इसी तरह, बच्चों के निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिनियम, [20] आपदा प्रबंधन अधिनियम तथा खाद्य सुरक्षा अधिनियम के क्रियान्वयन की निगरानी की जिम्मेवारी भी ग्राम सभा को सौंप कर न सिर्फ ग्राम सभा को सशक्त बनाया गया है, वरन् विभिन्न योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन की व्यवस्था करके गाँवों की तसवीर को और अधिक चमकाया गया है। ग्राम सभा को सशक्त बनाकर विभिन्न सरकारी परियोजनाओं तथा कार्यक्रमों को सफल, पारदर्शी, विकासोन्मुखी तथा प्रभावी बनाया जा सकता है।

*पंचायती राज व्यवस्था* के अंतर्गत ग्राम सभा से संबंधित विविध कार्यों और उस पर सौंपी गई जिम्मेवारियों के विश्लेषण से अब यह एहसास होने लगा है कि आनेवाले दिनों में ग्राम सभा का उभार एक महत्त्वपूर्ण ग्रामीण निकाय के रूप में होगा जिस पर ग्रामीण विकास की एकमात्र जिम्मेवारी होगी। पंचायती राज व्यवस्था में ग्राम सभा को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। यह वैसे अधिकारों का प्रयोग अथवा वैसे कार्यों को संपन्न करेगी जो राज्य सरकार कानून बनाकर निश्चित करेगी। सामान्यतः गाँव से संबंधित विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में सहायता प्रदान करना, गाँव के भीतर वयस्क शिक्षा और परिवार कार्यक्रम, गाँव में समाज के सभी वर्गों के बीच एकता और सौहार्द बढ़ाना, स्वैच्छिक श्रमिकों का सहयोग प्राप्त करना ग्राम सभा के प्रमुख कार्य हैं। ग्राम सभा की बैठक में निम्नलिखित विषयों पर विचार किया जाता है–

1. ग्राम पंचायत का वार्षिक लेखा विवरण, पिछले वित्तीय वर्ष का प्रशासनिक प्रतिवेदन और अंकेक्षण टिप्पणी तथा उनके उत्तर।
2. अगले वित्तीय वर्ष के लिए ग्राम पंचायत का बजट।
3. ग्राम पंचायत के विकास कार्यक्रमों के संबंध में पिछले वर्ष का प्रतिवेदन।

**fuxjkuh lfefr&** ग्राम सभा ग्राम पंचायत के कार्यों, योजनाओं तथा कार्यकलापों का पर्यवेक्षण करने तथा उनसे संबंधित प्रतिवेदन बैठक में प्रस्तुत करने के लिए एक या अधिक निगरानी समितियाँ गठित कर सकती हैं। निगरानी समिति में ऐसे लोगों को चयन किया जाता है जो ग्राम पंचायत के सदस्य नहीं होते।

उल्लेखनीय है कि राज्य सरकार के बजट में प्रत्येक ग्राम, प्रखंड तथा जिला स्तर पंचायत को *राज्य वित्त आयोग* द्वारा फार्मूला के अनुसार धन उपलब्ध करायी जाती है। ग्राम स्तर पर सरकार द्वारा प्राप्त धन ग्राम सभा की सहमति से ही खर्च किए जाते हैं। पंचायत के अंतर्गत ग्राम सभा अपने गाँव के लिए अपने वार्षिक योजना का निर्माण करती है और ग्राम पंचायत में संपन्न होनेवाले किसी कार्य के लिए भुगतान ग्राम सभा की संतुष्टि के बिना नहीं किया जा सकता। ग्राम सभा की बढ़ती शक्ति का ही यह परिणाम है कि ग्राम पंचायत द्वारा संपन्न कोई कार्य यदि

संतोषप्रद नहीं है तो ग्राम सभा खराब कार्य किए जाने का कारण जानने के लिए जाँच करा सकती है। इससे पंचायत स्तर पर बढ़ते भ्रष्टाचार को नियंत्रित किया जा सकता है।

## ग्राम सभा के सशक्तिकरण के मार्ग की बाधाएँ

*पंचायती राज व्यवस्था* में ग्रामसभा की उतरोत्तर बढ़ती भूमिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि निसंदेह ग्राम सभा ग्रामीण स्तर पर ग्राम पंचायत की व्यवस्थापिका है। इसके अधिकार और शक्तियाँ सही अर्थ में सच्चे लोकतंत्र की कामयाबी बयाँ करते हैं। इसके बावजूद देश के गाँवों की स्थिति आज भी संतोषप्रद नहीं है। *नई पंचायती राज व्यवस्था* लागू होते ही पंचायतों में माफियाओं का पदार्पण होने लगा है और वे हर संभव तरीकों से पंचायत चुनाव जीतकर मुखिया बनना चाहते हैं। यदि पंचायतों के चुनाव और कार्य प्रणाली का सूक्ष्म विश्लेषण किया जाए तो पंचायतों में बढ़ती माफियागीरी का पर्दाफाश होता है। अधिकांश ग्राम पंचायतों में चुनाव के दौरान मुखिया/सरपंच पद के लिए उठा-पटकी इस जनतांत्रिक प्रणाली की सबसे बड़ी चुनौती है। ग्राम पंचायतों में आज भ्रष्टाचार विभिन्न रूपों में में इस संस्था को कमजोर कर रहा है। पंचायत चुनाव के दौरान पैसे और अनुचित साधनों से चुनाव जीतने की कोशिश आज बड़ी बाधा है। भ्रष्टाचार के अन्य विविध मामले मनरेगा, इंदिरा आवास योजना तथा अन्य कल्याणकारी योजनाओं में भी आज आने लगे हैं। ऐसी स्थिति में हमें हर हालत में इस संस्था की पवित्रता बनाए रखने का प्रयास करना है। *73वें* एवं *74वें* सांविधानिक संशोधन अधिनियम के लागू हो जाने के बाद से शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों की स्वशासन संस्थाओं को सांविधानिक दर्जा प्राप्त हो गया है। निश्चित रूप से ग्राम सभा के अधिकारों, शक्तियों और कार्यों में भारी वृद्धि हुई है। इसकी वित्तीय स्थिति में भी काफी सुधार हुआ है। इसके बावजूद ग्रामीण क्षेत्र की समस्याएँ आज काफी अधिक हैं। बिजली, पानी, सफाई, चिकित्सा से संबंधित बुनियादी सुविधाएँ आज भी आम लोगों को उपलब्ध नहीं है। स्थानीय स्वशासन की निकायों में अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों के आरक्षण के चलते भी सार्वजनिक जीवन में रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार में वृद्धि हुई है। अशिक्षित महिलाओं का स्थानीय शासन की निकायों में निर्वाचित हो जाने से उनके पुरूष मर्दों और यदि महिला माताएँ हैं तो उनके पुत्रों का प्रभाव काफी स्थापित हुआ है। अधिकांश पुरुषों ने अपनी महिला-पत्नियों को नेपथ्य में रखते हुए अपने प्रभाव और दबदबे में वृद्धि कर ली है। ऐसी परेशानियों और समस्याओं की स्थिति में ग्राम सभा को ग्रामीण विकास के दायित्व को पूरा करना है। ग्राम सभा के सशक्त व अधिकार संपन्न होने के बावजूद हकीकत यह है कि ग्राम सभा तभी सशक्त व अधिकार युक्त हो पाएगी जब ग्रामीण लोग शिक्षित, जागरूक और गाँव के विकास के प्रति समर्पित होंगे। जहाँ नब्बे प्रतिशत जनता अशिक्षित हो वहाँ ग्राम सभा की कार्य प्रणाली कैसी होगी ? एक

बड़ी चुनौती है। ग्राम सभा के मार्ग की एक अन्य बड़ी बाधा यह भी है कि इसकी नियमित बैठकें नहीं हो पातीं जिसके चलते इसमें होनेवाले विचार-विमर्श, नीति निर्माण, कार्य योजनाएँ आदि बनाने के लाभों से हम वंचित रह जाते हैं। यह सही है कि *73वें संविधान संशोधन* के द्वारा ग्राम सभा को संवैधानिक मान्यता दी गई है और *अनुच्छेद 243 (क)* के द्वारा ग्राम सभा को शक्ति और कार्य की जिम्मेवारी सौंपने के लिए राज्य सरकारों को उतरदायित्व सौंपा गया है। साथ ही, संविधान की *11वीं अनुसूची* में *29* विषयों की सूची ग्राम पंचायतों को दी गई है जिनपर योजना बनाने, क्रियान्वयन करने तथा मूल्यांकन करने की शक्ति ग्राम सभा के हाथ में आ गई है। इसके बावजूद यदि ग्राम सभा की नियमित बैठकें ही नहीं होंगी तो न तो सर्वस्वीकृत योजना ही बन पायेंगी और न ही उस पर सामूहिक रूप से विचार-विमर्श हो पाएगा। ग्राम सभा की बैठक न होने के पीछे अधिकतर ग्रामीणों का इसके प्रति उदासीन होना, सभी लोगों तक इसकी बैठक की सूचना नहीं पहुँच पाना तथा अधिकांश पंचायतों में ग्रामीणों को दूर तक जाने में पूरा दिन लगना प्रमुख कारण है। गाँवों के लोगों द्वारा अपनी खेती बारी और मजदूरी छोड़कर ग्राम सभा की बैठकों में जाना संभव नहीं होता। इस समस्या के समाधान के लिए हमें ग्रामीणों में जागरूकता लाने की आवश्यकता है। ग्राम सभा के पदाधिकारियों पर इसकी बाध्यता सौंप कर तथा उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था कर सकारात्मक पहल की जा सकती है। ग्राम सभा की प्रत्येक बैठक से ऐसे निष्कर्ष निकालने होंगे ताकि खेती-बारी और मजदूरी छोड़कर ग्राम सभा की बैठकों में आए ग्रामीणजनों को संतुष्टि मिल सके।

## निष्कर्ष

ग्राम सभा के मार्ग को अवरूद्ध कर रहीं विभिन्न समस्याओं के बावजूद ग्रामीण विकास प्रक्रिया में ग्रामीणजनों की भागीदारी सुनिश्चित करने तथा सत्ता के विकेंद्रीकरण की दृष्टि से ग्राम सभा एक महत्त्वपूर्ण संस्था के रूप में उभर रही है। ग्रामीण विकास को गति प्रदान करने में यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। ग्रामीण जनों को गाँव से जोड़ने तथा गाँवों के विकास के प्रति उनमें समर्पण भाव उत्पन्न करने के दृष्टिकोण से ग्राम सभा का आज महत्त्वपूर्ण स्थान है और इसी आधार पर ग्राम सभा आज गाँवों को विकास की रोशनी से आलोकित कर रही है। इस दृष्टि से ग्राम सभा ही राज्य स्तर पर विधानसभा की तरह पंचायत स्तर पर ग्राम सरकार के रूप में प्रस्थापित है। ग्राम सभा में ग्रामीणों द्वारा लिए गए विभिन्न निर्णय ग्रामीण स्वशासन के प्रतिबिंब के रूप में ग्रामीण स्वराज का स्वप्न साकार कर रहे हैं। यदि ग्राम सभा के सशक्तिकरण के माध्यम से गाँव की विकास योजनाओं के निर्माण और क्रियान्वयन, गरीबी-उन्मूलन व रोजगार सृजन कार्यक्रमों के सफल संचालन, हितग्राहियों के सही चयन, कृषि विकास योजनाओं का क्रियान्वयन, आधारभूत संरचनाओं के विस्तार तथा दहेज, नशा, बाल-विवाह व निरक्षरता आदि के समाधान आदि में ग्राम सभा की

भूमिका स्वतः प्रस्थापित हो जाए, तो शीघ्र ही संपूर्ण देश में 'चमकते भारत' (Shining India) की अवधारणा साकार हो जाएगी। ग्रामीण विकास में ग्राम सभा की सशक्त भूमिका को रेखांकित करते हुए *विनोबा भावे* ने कहा था कि 'गाँव का सारा इंतजाम गाँव को अपने हाथ में लेना होगा। अपना भला-बुरा दूसरा कोई नहीं कर सकता, हम खुद ही अपना उद्धार कर सकते हैं, ऐसा आत्मविश्वास गाँव वालों में पैदा करना होगा। गाँव का कारोबार संभालने के लिए ग्राम सभा मजबूत बनानी होगी।'

भारत की अर्थव्यवस्था ग्रामीण है, क्योंकि देश की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। इस दृष्टि से गाँवों के विकास के बिना देश का विकास संभव नहीं है। इस प्रकार, ग्राम विकास एवं रोजगार से जुड़े विभिन्न कार्यक्रमों में ग्राम सभा के द्वारा जनसहभागिता के विभिन्न प्रकारों के माध्यम से सार्वजनिक निगरानी की एक सतत चलायमान प्रक्रिया की संकल्पना फलीभूत हो सकती है। ग्रामीणजनों में शिक्षा, जानकारी एवं जागरूकता बढ़ाकर उन्हें 'शासित' वर्ग की मनोवृत्ति से उबारना आवश्यक है ताकि वे अपने हक एवं अधिकारों को पहचानकर प्रभावी जन सहभागिता हेतु सक्षम हों। ऐसी प्रभावी जनसहभागिता ही लोकतंत्र को सच्चे अर्थ में प्रत्यक्ष स्वरूप के साथ धरातल पर स्थापित कर सकेगी। चूँकि ग्राम सभा ग्रामीण विकास के तमाम लक्ष्यों को पूरा करने की क्षमता रखती है, इसलिए हम पंचायतों में रोजगार केंद्र, सूचना केंद्र, ज्ञान केंद्र की स्थापना कर कौशल विकास के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों के साथ पंचायतों में ग्रामीणों के बीच आजीविका के नए साधन बना सकते हैं। इस दिशा में ईमानदार और बेहतर पहल से ग्रामीण औद्योगीकरण के रूप में दूरगामी परिणाम सामने आ सकता है। यह ग्रामीण उग्रवाद तथा नक्सलवाद जैसी समस्या से भी कारगर ढंग से निपटने में बेहतर हथियार साबित हो सकता है। ऐसे प्रयास से विचलित युवा वर्ग भी सामाजिक सहभागिता में भागीदार हो सकता है।

## संदर्भ

1. 'Democracy in a government of the people, for the people and by the people''- *Abraham Lincoln*
2. (1) ''There shall be constituted in every state Panchayats at the village, intermediate and district levels in accordance with the provisions of this part,'' (2) Not withstanding any thing in clause (1), Panchayats at the intermediate level may not be constituted in state having a population not, exceeding twenty lakhs.''- Article 243 (B) of *Constitution of India*.
3. राष्ट्रीय ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज संस्थान, https://m.dailyhunt.in>india >hindi>ra...
4. यह संशोधन अधिनियम *पंचायती राज व्यवस्था* को संवैधानिक मान्यता प्रदान करता है और उनमें महिलाओं तथा अन्य कमजोर व पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण आदि की व्यवस्था करता है। सभी राज्य इसी संशोधन के आलोक में पंचायती राज संस्थाओं का

गठन तथा कार्यकरण के लिए कानून का निर्माण करते हैं।

5. राष्ट्रीय दिवसों में *गणतंत्र दिवस* (26 जनवरी ), अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस (8 मार्च), *मजदूर दिवस* (1 मई), *स्वतंत्रता दिवस* (15 अगस्त), *गाँधी जयंती* (2 अक्टूबर) तथा *बाल दिवस* (14 नवंबर) सम्मिलित हैं। देखिए ग्राम सभा क्या हैः hi. vikas pedia.in >social-welfare
6. ग्राम सभाः hi.vikaspedia.in>social-welfare
7. उपरोक्त
8. उपरोक्त
9. समग्र ग्रामीण विकास के लिए ग्राम सभा सशक्तिकरण, hindi.indiawaterporal. org>node
10. उपरोक्त
11. "Organisation of village Panchayats the state shall take steps to organize village panchayats and endow them with such powers and authority as may be necessary to enable them to function as units of self government.; *Article 40 of The Constitution Of India 1949- Indian kanoon* ; https:// Indiankanoon.org>doc.
12. 11वीं अनुसूची में सम्मिलित विषय हैं– 1. कृषि विकास एवं विकास 2. भूमि विकास, भूमि सुधार लागू करना, भूमि संगठन एवं भूमि संरक्षण 3. पशुपालन, दुग्ध व्यवसाय तथा मत्स्यपालन 4. मत्स्य अद्योग 5. लघु सिंचाई, जल प्रबंधन एवं नदियों के मध्य भूमि विकास 6. वन विकास 7. लघु उद्योग जिसमें खाद्य उद्योग शामिल है 8. ग्रामीण विकास 9. पीने का शुद्ध पानी 10. खादी, ग्राम एवं कुटीर उद्योग 11. ईंधन तथा पशुचारा 12. सड़क, पुल, तट जलमार्ग तथा संचार के अन्य साधन 13. वन जीवन तथा कृषि खेती 14. ग्रामीण बिजली व्यवस्था 15. गैर परंपरागत ऊर्जा स्रोत 16. यांत्रिक प्रशिक्षण एवं यांत्रिक शिक्षा 17. प्राथमिकता और माध्यमिक शिक्षा संबंधी विद्यालय 18. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम 19. वयस्क एवं बुजुर्ग शिक्षा 20. पुस्तकालय 21. बाजार एवं मेले 22. सांस्कृतिक कार्यक्रम 23. अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र जिनमें दवाखाने शामिल हैं 24. पारिवारिक समृद्धि 25. सामाजिक समृद्धि जिसमें विकलांग एवं मानसिक समृद्धि शामिल है 26. महिला एवं बाल विकास 27. समाज के कमजोर वर्ग की समृद्धि जिसमें अनुसूचित जाति और जनजाति दोनो शामिल हैं 28. लोक विभाजन पद्धति तथा 29. सार्वजनिक संपत्ति की देखरेख.
13. Ministry of Rural Development of India, ग्राम स्वराज अभियान : (14 अप्रैल 2018 से 5 मई 2018) य https://rural.nic.in
14. उपरोक्त
15. उपरोक्त
16. समग्र ग्रामीण विकास के लिए ग्राम सभा सशक्तिकरण, hindi.indiawaterporal.org>node
17. उपरोक्त

18. पंचायती राज संस्थाओं के कुल स्थानों में एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित हैं और अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात के आधार पर स्थान आरक्षित होंगे। यदि प्रदेश सरकार जरूरी समझे, तो वह अन्य पिछड़ा वर्ग को भी सीट में आरक्षण दे सकती हैं। तीनों ही स्तर पर अध्यक्ष पद तक आरक्षण दिया गया हैः 73 वाँ संविधान संशोधन अधिनियम का महत्त्व और, https://www.sansarlochan.in>73rd- amendment…

19. Mahatma Gandhi National Rural… : www.vivacepanorama.com...

20. The Contitution 86th Amendment Act, 2002 enshrined right to education as a fundamental right in part- iii of the constitution. A New article 21 A was inserted below the Article 21 which made Right to Education a fundamental Right for Children in the range of 6-14 years. https:// www.gktoday.in>constitution...

# भारत में लोक नीतियों का क्रियान्वयन

## सुरेन्द्र कुमार

***Lkkjk'k %*** *किसी भी नीति की सफलता या विफलता इसके क्रियान्वयन पर ही निर्भर करती है। कोई भी नीति कितनी भी आकर्षक क्यों न हो, यदि उसका क्रियान्वयन प्रभावशाली नहीं है तो ऐसी नीति का कोई महत्त्व नहीं। अगर नीति विफल होती है तो सरकार विफल होती है। विकसित देशों की तुलना में भारत जैसे विकासशील देशों में नीतियों का क्रियान्वयन एक बड़ी समस्या है। इन देशों में कागज पर आकर्षक नीतियाँ तो बनाई जाती हैं, किन्तु इनका क्रियान्वयन प्रभावी नहीं हो पाता। अतः, विकासशील देशों के पिछड़ेपन का एक प्रमुख कारण नीतियों एवं कार्यक्रमों का प्रभावी क्रियान्वयन न होना है।*

### भूमिका

नीति किसी भी प्रकार के संगठन के लिए आवश्यक है। निजी संगठन हो या सरकारी, लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए नीतियाँ आवश्यक हैं। अगर नीतियाँ अच्छी न हों तो संगठन सफलतापूर्वक अपना उद्देश्य प्राप्त नहीं कर सकता। उदाहरणस्वरूप, गरीबी-उन्मूलन भारत सरकार का एक लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सरकार विभिन्न प्रकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों का निर्माण करती है। जब नीति सरकार बनाती है तो उसे लोक नीति कहते हैं। सरकार सामाजिक-आर्थिक विकास हेतु विभिन्न प्रकार की नीतियों का निर्माण करती है। इनके बिना सरकार का लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता। अतः, लोक नीतियों का निर्माण सरकार का प्राथमिक दायित्व है। लोक नीतियाँ कानूनी रूप से बाध्यकारी प्रकृति की होती हैं। ये सब पर लागू होती हैं। निजी संगठनों की नीतियाँ सब पर लागू नहीं होतीं। किन्तु सरकार की नीतियाँ प्रत्येक सम्बन्धित व्यक्ति या संस्था पर लागू होती हैं। इस प्रकार, नीतियाँ सार्वभौमिक प्रकृति की होती हैं।

लोक नीतियों के निर्माण के पश्चात् इनके क्रियान्वयन का चरण आता है। यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण चरण है। किसी भी नीति की सफलता या विफलता इसके क्रियान्वयन पर ही निर्भर करती है। कोई भी नीति कितनी भी आकर्षक क्यों न हो, यदि उसका क्रियान्वयन प्रभावी नहीं है तो ऐसी नीति का कोई महत्त्व नहीं। अतः,

नीतियों की प्रभावशीलता उनके क्रियान्वयन पर निर्भर करती है।

विकसित देशों की तुलना में भारत जैसे विकासशील देशों में नीतियों का क्रियान्वयन एक बड़ी समस्या है। इन देशों में कागज पर आकर्षक नीतियाँ तो बनाई जाती हैं, किन्तु इनका क्रियान्वयन प्रभावी नहीं हो पाता। अतः, विकासशील देशों के पिछड़ेपन का एक प्रमुख कारण नीतियों एवं कार्यक्रमों का प्रभावी क्रियान्वयन न होना है।

## क्रियान्वयनकर्त्ता

भारत सहित विभिन्न देशों में लोक नीतियों का क्रियान्वयन अनेक एजेन्सियों के द्वारा किया जाता है। इनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं :

### *प्रशासन*

नीतियों का क्रियान्वयन प्रशासकों की सबसे बड़ी जिम्मेदारी है। सरकार जन-कल्याण हेतु विभिन्न प्रकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों का निर्माण करती है। इन्हें जनता तक पहुँचाना प्रशासकों का प्राथमिक दायित्व है। इस कारण नीतियों की सफलता या विफलता बहुत हद तक प्रशासकों पर निर्भर करती हैं। यदि वे इन्हें प्रभावी ढंग से लागू करते हैं तो सफलता मिलती है, अन्यथा नीतियाँ विफल हो जाती हैं। इस प्रकार, जनता का विकास तभी होगा जब नीतियों का क्रियान्वयन प्रभावी हो। यह क्रियान्वयन मुख्यतः प्रशासकों पर निर्भर करता है। अतः, प्रशासक नीतियों के क्रियान्वयन के सबसे महत्त्वपूर्ण अस्त्र हैं।

### *विधान-मण्डल*

यह भी नीतियों के क्रियान्वयन को प्रभावित करता है। यह प्रशासकीय कार्यों का परीक्षण करता है, उनकी आलोचना करता है। यह प्रशासकीय स्वविवेक को सीमित कर सकता है। यह ऐसी नीतियाँ बना सकता है, जहाँ प्रशासकों के स्वविवेक का कम-से-कम उपयोग हो। यदि यह विस्तार से नीतियों का निर्माण करता है तो प्रशासकों के स्वविवेक में कमी आएगी। यह आवश्यक परामर्श जारी कर सकता है, जिनके आधार पर नीतियों का क्रियान्वयन किया जाना चाहिए। इस प्रकार, विधानमण्डल भी नीतियों के क्रियान्वयन में अप्रत्यक्ष भूमिका निभाता है।

### *राजनीतिज्ञ*

सैद्धान्तिक रूप से लोक नीतियों का निर्माण राजनैतिक कार्यपालिका तथा क्रियान्वयन प्रशासकीय कार्यपालिका का कार्य है। किन्तु, राजनीतिज्ञ भी नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में भाग लेते हैं। वे प्रशासकों को आवश्यक निर्देश देते हैं जिनके अनुसार नीतियों का क्रियान्वयन जन-कल्याण हेतु संपन्न किया जाता है।

राजनीतिज्ञों को यह सुनिश्चित करना पड़ता है कि नीतियाँ न्याय पूर्वक लागू की जा रही हैं ताकि समाज के सभी वर्गों का समुचित विकास हो। वे जनता के प्रतिनिधि होते हैं। इस कारण, उनका दायित्व है कि जन-कल्याण हेतु नीतियों एवं कार्यक्रमों का क्रियान्वयन प्रभावी हो। विकास के फल सभी व्यक्ति तक पहुँचे। इस प्रकार, राजनैतिक कार्यपालिका भी क्रियान्वयन को अप्रत्यक्षतः प्रभावित करती है।

### *न्यायपालिका*

यह भी लोक नीतियों के क्रियान्वयन में भाग लेती है। एक प्रजातांत्रिक देश में प्रशासन पर न्यायालय का नियंत्रण आवश्यक है। नीतियों के क्रियान्वयन के लिए प्रशासकों के पास असीमित शक्तियाँ होती हैं। अपनी शक्तियों के प्रयोग के दौरान वे जनहित की उपेक्षा भी कई बार करते है। अतः, उन पर नियंत्रण आवश्यक है। यदि प्रशासक कोई ऐसा कार्य करते हैं जो जनहित में नहीं हैं या असंवैधानिक हैं तो न्यायालय उनके ऐसे कार्यों का अवैध ठहरा देती है तथा उन्हें आवश्यक दिशा-निर्दश देती है। इस प्रकार, लोकनीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन को न्यायालय प्रभावित करती है।

### *गैर-सरकारी संगठन*

दबाव एवं हित समूह भी सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन को प्रभावित करते हैं। ये नीतियों एवं कार्यक्रमों की आलोचना करते हुए सरकार एवं प्रशासन पर दबाब बनाते हैं ताकि नीतियों को और भी अधिक प्रभावी ढंग से लागू किया जा सके जिससे जनता को अधिकतम लाभ हो। ये समूह गरीबों के हितों की रक्षा करते हैं। सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों की जानकारी उन्हें देते हैं तथा इन्हें प्राप्त करने के लिए जागरूक एवं प्रेरित करते हैं। ये समूह आपूर्त्ति प्रणाली को भी दुरूस्त करवाते हैं ताकि आम आदमी को कार्यक्रमों का फल मिल सके तथा सर्वांगीण विकास सुनिश्चित किया जा सके। इस प्रकार, धरना, प्रदर्शन सहित विभिन्न दबाव तकनीक के माध्यम से ये समूह सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन को प्रभावित करते हैं।

### *राजनैतिक दल*

सत्ता पक्ष एवं विपक्ष दोनों ही सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों को प्रभावित करते हैं। सत्ताधारी दल सरकार को निर्देश देता है तथा विपक्षी दल आलोचनाओं के द्वारा सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों को प्रभावित करता है। राजनैतिक दल सरकार एवं प्रशासन पर नियंत्रण रखते हुए नीतियों के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करते हैं।

संक्षेप मे, लोक नीतियों के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी प्रत्यक्ष रूप से प्रशासन की है किन्तु उपरोक्त भी अप्रत्यक्ष रूप से क्रियान्वयन में अहम् भूमिका निभाते हैं। किन्तु

विभिन्न कारणों से क्रियान्वयन प्रभावी नहीं हो पाता तथा जनता को सरकारी नीतियों का यथोचित लाभ नहीं मिल पाता है।

## प्रभावी क्रियान्वयन के मार्ग में आने वाली समस्याएँ

लोक नीतियों का निर्माण सरकार के द्वारा किया जाता है। किन्तु यदि इनका क्रियान्वयन प्रभावी नहीं होता है तो ये अपना महत्त्व खो देती हैं। नीतियों के सफल क्रियान्वयन में अनेक चुनौतियों एवं समस्याओं का सामना क्रियान्वयनकर्त्ताओं को करना पड़ता है जिनका वर्णन करना यहाँ आवश्यक है।

### *धन का अभाव*

पर्याप्त धन के अभाव में नीतियों का क्रियान्वयन प्रभावित होता है। किसी भी नीति को लागू करने के लिए धन की आवश्यकता पड़ती है। भारत जैसे विकासशील देशों में यह एक बहुत बड़ी समस्या है। ये देश गरीब हैं, इस कारण क्रियान्वयन में पर्याप्त धन नहीं लगा पाते। स्वीकृत धनराशि पर्याप्त भी नहीं होती तथा यह समय पर भी कई बार नहीं पहुँचती। अतः, धन का अभाव नीतियों के क्रियान्वयन के मार्ग में आने वाली एक बड़ी समस्या है।

### *प्रशासनिक संसाधन का अभाव*

विकासशील देशों में प्रशासनिक संसाधन का अभाव है। कर्मचारियों की कमी है। जो हैं, वे भी दक्ष एवं कुशल नहीं हैं। विशेषज्ञता का अभाव है। अत्याधुनिक तकनीक एवं प्रौद्योगिकी का अभाव है। धन का अभाव होने के कारण कर्मचारियों के प्रशिक्षण आदि पर अधिक खर्च नहीं किया जा सकता। पुरानी तकनीक एवं प्रौद्योगिकी से ही काम चलता है। फलतः, क्रियान्वयन अपेक्षित नहीं हो पाता।

### *प्राधिकारों की बहुलता*

क्रियान्वयन के लिए विभिन्न प्रकार के प्राधिकार एवं कार्यालय होते हैं। किन्तु इनके बीच सहयोग एवं समन्वय का अभाव पाया जाता है। एक-दूसरे के ऊपर अपना उत्तरदायित्त्व सौंपते हैं। क्रियान्वयन में चूक का ठीकरा एक-दूसरे के ऊपर फोड़ते हैं। स्वाभाविक है कि ऐसी स्थिति में क्रियान्वयन का कार्य उपेक्षित होगा।

### *अस्पष्ट लक्ष्य निर्धारण*

नीतियों का लक्ष्य स्पष्टतः निर्धारित नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में इनका क्रियान्वयन प्रभावित होता है। क्षेत्र में क्रियान्वयकर्त्ताओं को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। या तो वे अपने स्वविवेक का प्रयोग करते हैं या मुख्यालय से संपर्क करते हैं ताकि स्थिति स्पष्ट हो सके। दोनों ही परिस्थितियों में क्रियान्वयन बुरी तरह प्रभावित होता है।

### *मुख्यालय का असहयोगात्मक रवैया*

नीतियों का क्रियान्वयन क्षेत्रीय स्तर पर किया जाता है। क्षेत्रीय कार्यालय निर्देश एवं सहयोग के लिए मुख्यालय की ओर देखते हैं। वे स्वतंत्र रूप से निर्णय नहीं ले पाते। किन्तु मुख्यालय भी इन्हें समय पर त्वरित सहयोग या परामर्श उपलब्ध नहीं करा पाता। यह बार-बार ऐसी सूचनाओं की मांग करता है जो पहले ही दी जा चुकी होती हैं। इस प्रकार, क्रियान्वयन के कार्य में अनावश्यक विलम्ब होता है।

### *समय का अभाव*

कई बार नीतियों के क्रियान्वयन के लिए पर्याप्त समय नहीं दिया जाता। लक्ष्य हासिल करने का दबाव होता है। नीति निर्माता एक समय निर्धारित कर देते हैं जिसके अन्दर क्रियान्वयन का कार्य पूर्ण करना होता है। किन्तु यह समय व्यावहारिक नहीं होता। क्षेत्रीय स्तर पर क्रियान्वयनकर्त्ताओं की समस्याओं को ध्यान में रखे बगैर लक्ष्य निर्धारित कर दिया जाता है। ऐसी स्थिति में क्रियान्वयन का कार्य प्रभावी नहीं हो पाता है।

### *अव्यावहारिक लक्ष्य निर्धारण*

प्रायः नीति निर्माता बड़े एवं अव्यवहारिक लक्ष्यों का निर्धारण कर देते हैं। जन प्रतिनिधि जनता को संदेश देना चाहते हैं कि वे उनके लिए बहुत करना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में ऐसे आदर्शवादी लक्ष्य निर्धारित कर दिए जाते हैं जिन्हें पूरा करना कठिन होता है। लक्ष्य तो बड़े निर्धारित कर दिए जाते हैं किन्तु उन्हें पूरा करने में पर्याप्त आर्थिक एवं प्रशासनिक संसाधन उपलब्ध नहीं कराए जाते। फलतः, क्रियान्वयन का कार्य प्रभावी नहीं हो पाता तथा लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं हो पाती।

### *राजनैतिक दबाव*

नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के दौरान प्रशासकों पर अनुचित राजनैतिक दबाव भी होता है। सत्तापक्ष हो या विपक्ष – दोनों ही दलों के राजनीतिज्ञ अनुचित कार्यों के लिए प्रशासकों पर दबाव बनाते हैं। उचित कार्यों के लिए दबाव जनहित में होता है। किन्तु अनुचित कार्यो के लिए दबाव कुछ लोगों को फायदा पहुँचाने के लिए होता है। यदि प्रशासक अनुचित कार्य करते हैं तो उनका नाम खराब होता है और यदि वे नहीं करते हैं तो राजनीतिज्ञों की नाराजगी का सामना करना पड़ता है। दोनों ही स्थितियों में क्रियान्वयन का कार्य प्रभावित होता है तथा अंततः जनहित की ही उपेक्षा होती है।

### *प्रशासनिक बीमारियाँ*

भारत जैसे विकाशील देशों में नीतियों के क्रियान्वयन के दौरान भ्रष्टाचार,

लालफीताशाही, पक्षपातवाद, भाई-भतीजावाद आदि का बोलबाला है। ऐसा नहीं है कि विकसित देशों में यह सब नहीं है। वहाँ भी है, किन्तु इसकी मात्रा कम है। इस कारण वहाँ कार्यों की गुणवत्ता दिखती है। विकासशील देशों में इन सबके कारण गुणवत्ता प्रभावित होती है। इन प्रशासनिक बीमारियों के कारण क्रियान्वयन का कार्य जैसा होना चाहिए वैसा नहीं होता तथा जनता को जो लाभ मिलना चाहिए, वह नहीं मिल पाता।

इस प्रकार, लोक नीतियों एवं कार्यक्रमों के प्रभावी क्रियान्वयन में उपरोक्त समस्याएँ बाधक हैं। इनके कारण ही नीतियों का वह लाभ नहीं मिल पाता जो मिलना चाहिए। अतः, वास्तव में यदि नीतियों के क्रियान्वयन को प्रभावी बनाना है तो उपरोक्त समस्याओं को दूर करना होगा, तभी विकास के फल समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुँच पाएँगें।

## प्रभावी क्रियान्वयन की शर्तें

1. नीतियों के निर्माण के समय ही क्रियान्वयन में आने वाली समस्याओं के विषय में विचार कर लिया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, नीतियों के निर्माण एवं क्रियान्वयन को एक साथ देखना चाहिए, अलग-अलग नहीं।
2. क्रियान्वयन के दौरान प्रशासकों की स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाने के लिए जन-जागरूकता आवश्यक है।
3. व्यावहारिक नीतियों का ही निर्माण किया जाना चाहिए जिन्हें लागू किया जा सके। अति उत्साह में कई बार ऐसी नीतियाँ बनाई जाती हैं, जिन्हें धरातल पर उतारना कठिन होता है।
4. क्रियान्वयन के दौरान सतत् नेतृत्व आवश्यक है ताकि क्रियान्वयन की प्रक्रिया को एक समुचित दिशा प्रदान किया जा सके।
5. पर्याप्त आर्थिक एवं प्रशासनिक संसाधनों की उपलब्धता आवश्यक है।
6. क्रियान्वयनकर्त्ताओं के ऊपर उचित नियंत्रण स्थापित किया जाना चाहिए ताकि उन्हें उत्तरदायी एवं जनोन्मुख बनाया जा सके।
7. क्रियान्वयन से जुड़े विभिन्न एजेन्सियों के बीच सहयोग एवं समन्वय स्थापित होना चाहिए। अपनी जिम्मेदारी किसी एजेन्सी के द्वारा दूसरे के ऊपर नहीं थोपनी चाहिए।
8. क्रियान्वयनकर्त्ताओं के द्वारा अनुचित एवं गैर-कानूनी कार्यों के लिए राजनीतिक एवं अन्य दबावों का विरोध किया जाना चाहिए।
9. मुख्यालय एवं क्षेत्रीय कार्यालयों के बीच सहयोग एवं समन्वय होना चाहिए। दोनों एक-दूसरे की समस्याओं को समझें।

10. क्रियान्वयनकर्त्ताओं को जनता का सहयोग हासिल करना चाहिए। इसके लिए उन्हें जनता के लिए किए जा रहे कार्यक्रमों के बारे में बताना चाहिए। ऐसा करने से अन्ततः क्रियान्वयन प्रभावी होता है।
11. क्रियान्वयनकर्त्ताओं के कार्यों का सतत् मूल्यांकन होते रहना चाहिए।

## निष्कर्ष

लोक नीतियों का क्रियान्वयन लोक कल्याण एवं विकास के लिए आवश्यक है। सरकार की सफलता या विफलता नीतियों के सफल एवं प्रभावी क्रियान्वयन पर ही निर्भर करती है। यदि नीतियाँ जनता तक प्रभावी ढंग से पहुँच पाती हैं तो विकास दिखता है। सरकार अपने उद्देश्य में सफल होती है। कोई भी राजनीतिक व्यवस्था कितनी भी अच्छी क्यों न हो, यदि लोक नीतियों का क्रियान्वयन प्रभावी नहीं होता है तो यह विफल मानी जाती है। इस कारण ही कहा जाता है कि लोक प्रशासन का सार-तत्व नीतियों का निर्माण एवं उनका प्रभावी क्रियान्वयन है। अगर नीति विफल होती है तो सरकार विफल होती है।

## संदर्भ

1. Anderson, James E., *Public Policy Making*, Thomas Nelson and Sons Ltd, New York, 1975.
2. Bhattacharya, Mohit, *New Horizons of Public Administration*, Jawahar Publishers and Distributors, New Delhi, 2008.
3. Chakrabarty, Bidyut, *Public Administration in a Globalizing World : Theories and Practices*, Sage, New Delhi, 2013.
4. Dey, Prabir Kumar, *Public Policy and System*, Pearson, New Delhi, 1989.
5. Dror, Yehezkel, *Public Policy Making Re-examined*, Leonard Hill Books, San Francisko, 1974.
6. Dye, Thomas R., *Understanding Public Policy* (3rd edition), Pearson Education, New Delhi, 2004
7. Frohock, Fred M., *Public Policy : Scope and Logic*, Prentice-Hall, New Delhi, 1979.
8. Gerston, Larry N., *Public Policy Making : Process and Principles*, (2nd edition), M.E.Sharpe, Armonk, New York, 1974.
9. Henry, Nicholas, *Public Administration and Public Affairs* (10th edition), Prentice-Hall of India, New Delhi, 2007.
10. Sapru, R.K., *Public Policy : Art and Craft of Policy Analysis*, Prentice-Hall of India, New Delhi, 2010.

# आधुनिक भारत में शहरी सुशासनः 74वाँ संविधान संशोधन के परिपेक्ष्य में


## उमेश कुमार



*Ikjk'k% शहरी शासन का शाब्दिक अर्थ शहरी क्षेत्र के लिए सरकारी तंत्र की व्यवस्था है। शासन किसी निकाय, संगठन अथवा संस्था को संचालित करने की प्रक्रिया अथवा शक्ति है। शहरी शासन की अवधारणा इस तथ्य में निहित है कि शहरी क्षेत्र को किस प्रकार की शासकीय इकाई द्वारा शामिल किया जा रहा है जिसका गठन शहरी क्षेत्र के विकास हेतु किया गया है। शहरी शासन की अवधारणा अत्यंत जटिल है। यह किसी एक व्यक्ति का काम नहीं है बल्कि विभिन्न प्रक्रियाओं, संस्थाओं एवं व्यक्तियों की एक सामूहिक संस्था है, जहाँ लोग एक श्रृंखला में एक -दूसरे के समन्वय के साथ कार्य करते हैं और अपने पर्यवेक्षकों के प्रति समान रूप से जवाबदेह होते हैं। इस विधि के अंतर्गत प्रत्येक उस व्यक्ति व स्थान को ध्यान में रखा जाता है जहाँ विधिक अधिकारों को लागू किया जा सकता है, दायित्वों का निर्वहन किया जा सकता है और मतभेदों को दूर किया जा सकता है।*


### प्रस्तावना

जनसंख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में चीन के बाद दूसरा स्थान है, जिसकी शहरी आबादी तीव्र गति से बढ़ रही है। यह वर्ष 1901 की जनगणना में मात्रा 11. 40 प्रतिशत[1] थी जो वर्ष 2011 की जनगणना में बढ़कर 31.16 प्रतिशत हो गई है।[2] यह भी संभावना व्यक्त की जा रही है कि वर्ष 2030 तक भारत की आबादी का 575 करोड़ शहरी आबादी में शामिल हो जाएगा, जो कि कुल आबादी का लगभग 40 प्रतिशत होगा। अतः एक विशाल जनसंख्या पर नियंत्रण रखना कठिन कार्य है, जिसके लिए एक श्रेष्ठ शहरी सुशासन की आवश्यकता है। शासन का तात्पर्य निर्णयन की ऐसी प्रक्रिया से है जिसके द्वारा इन्हें लागू किया जा सके। सुशासन से तात्पर्य ऐसी विधि से है जिसमें विकास हेतु एक देश के आर्थिक एवं सामाजिक संसाधनों का प्रबंधन में प्रयोग शक्तिपूर्वक किया जाता है।[3] शहर के लिए सुशासन

से आशय उसके आर्थिक और सामाजिक विकास हेतु शक्ति के प्रयोग से है।

## शहरी सुशासन के गुण

शहरी शासन प्रक्रिया को सुशासन बनाने हेतु इसमें विभिन्न गुण होने चाहिए जैसे–

(1) भागीदारी
(2) आम सहमति की ओर उन्मुख होना
(3) जवाबदेही
(4) पारदर्शिता
(5) उत्तरदायित्व
(6) प्रभावशीलता एवं
(7) न्यायोचित्तता
(8) समावेशी शासन
(9) कानून का नियमन आदि।

सुशासन यह सुनिश्चित करता है कि भ्रष्टाचार न्यूनतम हो, अल्पसंख्यकों के विकास को ध्यान में रखा जाए और समाज में अत्यंत कमजोर तबके के लोगों के विचारों को भी निर्णयन प्रक्रिया में शामिल किया जाए। यह समाज की वर्तमान और भावी आवश्यकताओं के लिए उत्तरदायी होता है।

आज शहर, विकास और धनार्जन के केंद्र के रूप में आकर्षण का स्थान बनते जा रहे हैं। एक शक्तिशाली आर्थिक भूमिका के रूप में शहरों का उत्पाद उपभोग में लगभग 60 प्रतिशत योगदान हैं[4]। ये संवृद्धि (नव-प्रवर्तन, रचनात्मकता, शिक्षा, रोजगार इत्यादि के संदर्भ में आकर्षण का केंद्र बन गए हैं। इस प्रकार न्यायोचित सतत् विकास के लिए शहरी सुशासन का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। सुशासन हेतु न केवल मूल स्तर पर समुचित नियोजन की आवश्यकता होती है बल्कि निष्पादन के प्रत्येक स्तर पर इसमें स्थानीय निवासियों के साथ निकट संबंध होने के कारण लोग स्थानीय सरकार के समक्ष अपनी समस्याओं को प्रत्यक्ष रूप से आसानी से व्यक्त कर सकते हैं, एवं स्थानीय सरकार के साथ मिलकर एक मंच पर समस्याओं के निदान में सहभागिता भी करते हैं। स्थानीय सरकार वास्तव में स्थानीय समुदायों द्वारा स्थानीय समुदायों के लिए एवं स्थानीय समुदायों की होती है। स्थानीय सरकारों के कई महत्त्वपूर्ण गुणों के कारण अनेक राजनीतिक विचारकों जैसे सुकरात, अरस्तू, प्लेटो, जे.एस. मिल, मोन्टेस्क्यू व लास्की आदि ने कहा है कि सरकार का सर्वश्रेष्ठ ढांचा स्थानीय सरकार ही है। ये स्थानीय सरकारें शहरों को इस प्रकार पोषित करती हैं जैसे– मां अपने बच्चों को जीवनपर्यंत पोषित करती है।[5]

शहर या नगर का अभिप्राय एक ऐसे स्थान से है जहाँ अनेक व्यक्ति एक-दूसरे के निकट पक्के मकानों में रहते हों, जहाँ अनेक सड़कें हों और यातायात की समुचित व्यवस्था हो। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से नगर की व्याख्या सभ्यता के विकास के संदर्भ में की जाती है। प्रशासन का आशय ऐसी व्यवस्था से है जहाँ सभी जन सुखीं हों, सभी को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हो और सभी को विकास करने के अवसर प्राप्त हों। नगरीय शासन की शक्ति राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री तथा उसके मंत्रिमंडल में निहित होती है। किसी भी देश की संपूर्ण व्यवस्था का संचालन कोई एक व्यक्ति अथवा कुछ व्यक्ति नहीं कर सकते हैं भले ही उन्हें कितनी ही शक्ति दे दी जाए। इसलिए शक्ति का विकेंद्रीकरण होता है। इसके अंतर्गत प्रत्येक नगर, महानगर, कस्बे और गाँव आदि के पृथक प्रशासक होते हैं। इन्हें समुचित अधिकार शासन की तरफ से प्राप्त होते हैं। ये प्रशासक अपनी स्थानीय समस्याओं का समाधान स्वयं करते हैं क्योंकि केंद्रीय अथवा राज्य सरकार के लिए यह संभव नहीं है कि वह प्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक स्थान की समस्याओं का निराकरण करें। उसके पास अनेक बड़े-बड़े कार्य होते हैं। इसलिए प्रत्येक स्थान की स्थानीय संस्थाएं वहां संबंधित कार्य करती हैं। उदाहरण के लिए, ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राम-पंचायत, क्षेत्र विकास समिति और जिला परिषद नगरीय क्षेत्र में नगर-निगम, नगरपालिका और टाउन एरिया, नोटिफाइड एरिया आदि। ये सभी संस्थाएं शासन का अंग है। नगरीय शासन में वे सभी संस्थाएं सम्मिलित हो जाती हैं जो किसी-न-किसी रूप में नगरीय प्रशासन का अंग और उसके उत्तरदायित्व को पूर्ण करती है।[6] इस तरह नगरीय शासन शक्तियों के विकेंद्रीकरण पर आधरित है।

शहरों एवं उनके निवासियों के उपयुक्त विकास हेतु शहरी स्थानीय सरकार को प्रशासनिक इकाई में निर्णयन हेतु सहभागिता के साथ-साथ अधिक प्रशासनिक शक्तियां प्रदान करने की आवश्यकता है। अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास में इनकी विशेष भूमिका होती है और शहरी क्षेत्र के विकास हेतु इनकी क्षमताओं को बढ़ाने की आवश्यकता है। वैश्वीकरण एवं संरचनात्मक समायोजन को देखते हुए शहरों का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। वैश्वीकरण ने अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रवाह में अभूतपूर्व वृद्धि की है जो कि राष्ट्रीय सीमाओं से अनावरोधक है। इसने विचारों एवं ज्ञान के अंतर्राष्ट्रीय प्रवाह और वस्तुओं, सेवाओं, पूंजी व श्रम की बढ़ती हुई गतिशीलता द्वारा देशों के आर्थिक एकीकरण में भी योगदान दिया है। ऐसी आशा की जाती है कि वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप पूरी दुनिया में लोगों के जीवन स्तर में सुधार होगा, गरीब देशों की विदेशी बाजारों में पहुंच एवं विदेशी विनिवेश को विस्तृत स्वीकृति भी मिलेगी। अतः ऐसा विश्वास है कि भारतीय अर्थव्यवस्था का भविष्य शहरी क्षेत्रों की निष्पादन क्षमता एवं उनकी योग्यता पर आधारित है। यह निवासियों के बढ़ते हुए जीवन स्तर एवं गुणवत्ता हेतु समुचित अवसंरचना प्रदान करने पर निर्भर करता है।[7]

शहरीकरण सामाजिक परिवर्तन का एक अंग एवं प्रक्रिया है, जहां एक परंपरागत समाज से आधुनिक एवं विशिष्ट समाज में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। इसकी विभिन्न विशेषताएं हैं। जैसे– रोजगार के पर्याप्त अवसर, बेहतर शिक्षा सुविधाएं, बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएं, श्रेष्ठ आवासीय सुविधाएं, पेयजल एवं चहुँमुखी संवृद्धि। यद्यपि इन विशेषताओं का श्रेष्ठ क्रियान्वयन तभी संभव है जब प्रशासन प्रणाली प्रभावी हो। इसलिए सुशासन की विशेष आवश्यकता है। इसमें पारदर्शिता, विधि का नियमन, सर्वसम्मति अभिविन्यास, समानता एवं समाग्रता, प्रभावशीलता एवं दक्षता, जवाबदेही एवं सामाजिक दृष्टि सम्मिलित हैं।[8]

स्वतंत्रता के बाद से स्थानीय नागरीय स्वशासन की मांग की जा रही थी। इसी परिपेक्ष्य में 74 वां संविधान संशोधन विधेयक 1992 में पारित किया गया और उसे विधिपूर्वक जून 1993 से प्रभावी कर दिया गया। इस संविधान संशोधन के अनुसार, शहरी शासन एवं सेवा प्रबंधन में सुधार एवं सुदृढ़ता की आवश्यकता है।[9] शहरी जनसंख्या के वर्ष 2030 तक लगभग 40 प्रतिशत बढ़ने की आशा है।[10] भारत के आर्थिक विकास के उद्देश्यों को पूरा करने हेतु शहरी क्षेत्रों में विस्तृत सुधार करने होंगे। इसके लिए शहरों का योजनाबद्ध तरीके से विस्तारीकरण करने की रूपरेखा तैयार करनी चाहिए। इतनी बड़ी आबादी की जल संबंधी आवश्यकता हेतु सतही जल एवं भूमिगत जल के स्तर में वृद्धि करनी होगी तथा नवीन तकनीक का प्रयोग करना वांछनीय होगा। किंतु इन सेवाओं की पूर्ति हेतु पर्याप्त कोष उपलब्ध नहीं है। अतः शहरी स्थानीय निकायों को शहरी सेवाओं के वित्तीयन एवं प्रबंधन हेतु विभिन्न प्रकार के फलदायी प्रस्तावों पर पहल करनी चाहिए। इन नवप्रवर्तन एवं आशातीत योजनाओं के प्रस्तावों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक मजबूत नगरीय को आधार और श्रेष्ठ शहरी शासन है।

भारत में नगरीय व्यवस्था प्राचीन काल से ही प्रचलन में रहा है। किन्तु मूल संविधान में नगरीय शासन व्यवस्था के संबंध में कोई भी प्रावधान नहीं किया गया था, लेकिन इसे सातवीं अनुसूची की राज्य सूची में शामिल करके यह स्पष्ट कर दिया गया था कि इस संबंध में कानून केवल राज्य द्वारा ही बनाया जा सकता है। इसका अनुसरण करके विभिन्न राज्यों में नगरीय शासन व्यवस्था के संबंध में कानून बनाया गया था।

नगरपालिका नगरों में स्थापित स्थानीय स्वशासन की संस्था है। ये संस्थाएं राज्यों के विधान मंडलों के अधिनियमों के अधीन संगठित होती है। भारतीय संसद ने 74वां संविधान संशोधन 1992 में पारित करके इन्हें सर्वप्रथम संवैधानिक मान्यता प्रदान की। इसके द्वारा संविधान में भाग 9 'क' जोड़ा गया है जिसमें अनुच्छेद 243 'त' से अनुच्छेद 243 'य' तक के 18 अनुच्छेद हैं। नगरपालिका के कार्यक्षेत्र संबंधी विषय या मद संविधान में जोड़ी गयी जो नयी अनुसूची 12वीं अनुसूची में उल्लेखित

है। यह संविधान संशोधन 1 जून 1993 से लागू हो गया जिसे देश के सभी राज्यों ने एक वर्ष में अधिनियम बनाकर लागू कर दिया। भाग 9 'क' के अनुसार दो प्रकार की नगरीय संस्थाएं होंगी–

1. स्वायत्त शासन की संस्थाएं; स्थानीय लोगों की सेवा के लिए संस्थाएं, तथा
2. योजना संस्थाएं; विकास की योजना के लिए संस्थाएं,

स्वायत्त शासन की नगरीय संस्थाओं का सामान्य नाम 'नगरपालिका' दिया गया है।

प्रत्येक नगरपालिका को प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है। जिन्हें 'वार्ड' कहते हैं। नगरपालिका के सदस्य ऐसे प्रादेशिक क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने जाते हैं। यदि नगरपालिका की जनसंख्या तीन लाख या उससे अधिक है, तो एक या अधिक वार्डों के लिए समितियाँ गठित की जा सकती है। राज्य विधान मंडल वार्ड समितियों के अतिरिक्त भी समितियाँ गठित कर सकता है। ऐसी समितियों के अध्यक्षों को नगरपालिका का सदस्य बनाया जा सकता है।

प्रत्येक नगरपालिका का कार्यकाल उसकी प्रथम बैठक से लेकर पांच वर्ष तक है। यह अपने कार्यकाल के मध्य में भी विघटित किया जा सकता है और विघटन की स्थिति में छः माह के अन्दर चुनाव कराना आवश्यक होगा। यह चुनाव राज्य निर्वाचन आयोग के नियंत्रण में करवाया जाता है। इसके सदस्य प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने जाते हैं। इसके सदस्यों की योग्यता विधानसभा के सदस्यों की योग्यता के बराबर होते हैं, किन्तु अपवाद स्वरूप इसकी आयु 21 वर्ष है जबकि विधानसभा सदस्य की आयु 25 वर्ष है।

नगरपालिकाओं में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण उनकी जनसंख्याओं के अनुपात में होगा। महिलाओं के लिए एक तिहाई (1/3) आरक्षण का प्रावधान है, किन्तु बिहार में महिलाओं को स्थानीय निकायों में 50 प्रतिशत (1/2) आरक्षण दिया गया है। राज्य विधान मंडल अपने यहां पिछड़े वर्गों तथा नगरपालिका अध्यक्ष के पदों के लिए आरक्षण की व्यवस्था भी कर सकता है। नगरीय संस्थाओं की शक्तियाँ और उत्तरदायित्व का निर्धारण राज्य विभाग मंडल कानून बनाकर कर सकती है। इस आधार पर नगरीय संस्थाओं को विधानमंडल द्वारा निम्नलिखित उत्तरदायित्व एवं शक्तियाँ सौंपी गयी हैं–

- नगर में निवास करनेवाले व्यक्तियों के सामाजिक न्याय तथा आर्थिक विकास के लिए योजना तैयार करने के लिए।
- ऐसे कार्यों को करने तथा ऐसी योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए जो उन्हें सौंपीं जायें।

इसके अतिरिक्त अन्य विषयों, जो संविधान की 12वीं अनुसूची में शामिल किये

गये हैं, के संबंध में राज्य विधानमंडल कानून बनाकर नगरीय संस्थानों को अधिकार एवं दायित्व सौंप सकते हैं।

## नगर निकाय के राजस्व के निम्न स्त्रोत हैं

- राज्य विधान मंडल, विधि बनाकर नगरपालिका को कर, पथ कर आदि लगाने तथा संग्रहित करने का अधिकार प्रदान करता है।
- राज्य की संचित निधि से भी नगरपालिका को सहायता अनुदान दी जाती है।

साथ ही नगरीय संस्थाओं की वित्तीय स्थिति का पुनराविलोकन करने के लिए राज्य वित्त आयोग का गठन किया जाएगा, जो करों, शुल्कों, पथकरों, फीसों की शुद्ध आय और संस्थाओं तथा राज्य के बीच वितरण के लिए राज्यपाल से सिफारिश करेगा।

भाग 9 'क' के उपबंध अनुसूचित क्षेत्र; अनुसूची 5 में वर्णित; और जनजाति क्षेत्रों; अनुसूची 6 में वर्णित; में लागू नहीं है, किन्तु संसद को ऐसे क्षेत्रों पर इन उपबंधों का विस्तार करने की शक्ति है।

नगरपालिका अधिनियम के अनुसार जिला स्तर पर जिला योजना समिति तथा महानगर क्षेत्र में महानगर योजना समिति का गठन किया जाना चाहिए, इन योजना समितियों के गठन की विस्तृत योजना राज्य विधान मंडल द्वारा बनायी जानी चाहिए। अधिनियम के अनुसार जिला योजना समिति में कम से कम 4/5 सदस्य जिला स्तर की पंचायत तथा नगरपालिकाओं के निर्वाचित सदस्यों में से अपने द्वारा चुने जाएंगे। इनका अनुपात जिले में नगरीय तथा ग्रामीण जनसंख्या के अनुपात के अनुसार होगा। महानगर योजना समिति में कम से कम 2/3 सदस्य नगरपालिकाओं के सदस्य और पंचायत के अध्यक्षों में से चुने जाएंगे। स्थानों का आवंटन उस क्षेत्र की नगरपालिकाओं और पंचायतों की जनसंख्या के अनुपात में किया जाएगा।

## भारत में नगरीय प्रशासन के निम्नलिखित निकाय स्थापित हैं

(i) ***uxj -fuxe*** % भारत के महानगरों में नगर-निगमों की स्थापना की गई है। इन निगमों में जनता द्वारा चुने हुए प्रत्यक्ष प्रतिनिधि होते हैं, जिन्हें सभासद कहा जाता है। प्रत्येक नगर-निगम में एक नगर प्रमुख एवं एक उप-नगर प्रमुख होता है। इसके अतिरिक्त अन्य अधिकारी जैसे उप-नगर अधिकारी, सहायक नगर अधिकारी, नगर अभियंता, स्वास्थ्य अधिकारी, सुरक्षा अधिकारी आदि होते हैं। नगर-निगम का कार्य नगर में स्वास्थ्य केंद्रों और सार्वजनिक शिक्षा के केंद्र स्थापित करना, सफाई, रोशनी एवं पानी की समुचित व्यवस्था करना है। प्रत्येक नगर-निगम पर राज्य सरकार का नियंत्रण होता है। यदि यह ठीक प्रकार से कार्य नहीं करती है या जनता

के धन का दुरुपयोग करती है तो इनके विरूद्ध राज्य सरकार में शिकायत की जा सकती है।

(ii) ***uxj ikfydk*** % नगरों में स्थानीय प्रशासन के लिए नगरपालिका का गठन किया जाता है। जिन नगरों की जनसंख्या 20,000 से अधिक है, वहां नगरपालिका की स्थापना की जाती है। नगरपालिका की स्थापना का निर्णय राज्य सरकार के अधीन होता है। इसमें एक अध्यक्ष और तीन प्रकार के सदस्य होते हैं–

*(क) निर्वाचित सदस्यः* जिनकी संख्या नगर की जनसंख्या के आधार पर 25 से कम और 55 से अधिक नहीं होती है। *(ख) पदेन सदस्यः* इसमें लोकसभा और राज्यसभा के ऐसे सदस्य शामिल होते हैं जो उन निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं। *(ग) राज्य सरकार द्वारा मनोनीत सदस्य।* नगरपालिका में इसके अतिरिक्त अन्य अधिकारी भी होते हैं, जैसे–प्रशासकीय अधिकारी, चिकित्सा अधिकारी, अभियंता आदि। इन्हें अपने क्षेत्र में स्वास्थ्य एवं सफाई, जलापूर्ति व्यवस्था, रोशनी का प्रबंध, सड़कों का निर्माण, कुएं व तालाब की देख-रेख, प्रारंभिक शिक्षा जैसे कार्यों को करना पड़ता है। इनका उद्देश्य क्षेत्रीय जनता को सुविधा प्रदान करना है। आय के साधन कम होने पर राज्य सरकार इन्हें आर्थिक सहायता भी प्रदान करती है।

(iii) ***uxj {k= vkj vf/k lfpr {k= lfefr;k*** % भारत के छोटे नगरों तथा कस्बों में नगर पंचायत की स्थापना की गई है। प्रत्येक नगर पंचायत में एक अध्यक्ष एवं 10 से 24 तक निर्वाचित सदस्य होते हैं। इसके अतिरिक्त लोक सभा, राज्य सभा, विधान परिषद् के ऐसे सदस्य; जो उन निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हो जो उस क्षेत्र में आते हो; पदेन सदस्य हेाते हैं। प्रत्येक नगर पंचायत के निर्वाचित सभासदों में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े वर्गों एवं महिलाओं के लिए आरक्षित स्थानों की व्यवस्था की गई है।

(iv) ***Nkouh ckM%*** वे क्षेत्र जो छावनी के अंतर्गत आते है, वहाँ छावनी बोर्ड की स्थापना की जाती है। छावनी बोर्ड छावनी क्षेत्र में वही कार्य करता है जो प्रायः नगरपालिकाएं नगर में करती हैं। अंतर केवल यह है कि इस इस बोर्ड में अधिकारियों की संख्या कम होती है। इस बोर्ड पर फौजी अधिकारियों का पूर्ण नियंत्रण होता है क्योंकि छावनी फौजी व्यक्तियों के रहने का केन्द्र होती है। यहां प्रत्येक दृष्टि से चौकसी रखने की आवश्यकता होती है। इसलिए इसका अध्यक्ष कोई सैन्य अधिकारी होता है। इसके अतिरिक्त बोर्ड के आधे सदस्य सेना द्वारा ही मनोनीत किए जाते हैं। शेष सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति के द्वारा ही किया जाता है।

## 74वें संविधान संशोधन पर आधारित नगरीय प्रशासन की विशेषताएं

1. स्थानीय नगर निकायों के प्रशासन को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। त्रि-स्तरीय व्यवस्था के अंतर्गत बड़े क्षेत्रों के लिए नगर-निगम, छोटे क्षेत्रों के लिए नगर पालिका तथा गाँवों से शहरों में परिवर्तित हो रहे कस्बाई क्षेत्रों के लिए नगर पंचायत की व्यवस्था की गई है।
2. लोकसभा व विधानसभा के समान नगरीय निकायों के प्रत्यक्ष चुनाव की व्यवस्था की गई और इसकी जिम्मेदारी निर्वाचन आयोग को सौंपी गई।
3. अनुसूचित जाति/जनजाति की महिलाओं सहित महिलाओं के लिए एक-तिहाई आरक्षण की व्यवस्था का प्रावधान किया गया।
4. राज्य द्वारा नगर-निकायों की आर्थिक स्थिति मजबूत करने के लिए कराधनों तथा अनुदानों में वृद्धि की गई है।
5. नगरीय संस्थाओं को 18 विषयों पर आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय के लिए विविध योजनाओं व कार्यक्रमों को बनाने व लागू करने का अधिकार व समुचित शक्तियाँ दी गई हैं।
6. नागरिकों के साथ अधिक निकटता के लिए वार्ड समितियों का गठन किया गया है।

शहरी शासन को व्यक्तियों एवं संस्थाओं, सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों द्वारा शहर के सामूहिक मामलों के नियोजन एवं प्रबंधन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह एक सतत् प्रक्रिया है, जिसके द्वारा परस्पर विरोधी एवं भिन्न-भिन्न हितों को समायोजित किया जा सकता है और सहकारी कार्यवाही की जा सकती है। इनमें औपचारिक, अनौपचारिक संस्थाएं, व्यवस्थाएं एवं नागरिकों की सामाजिक पूँजी शामिल है[11]।

उक्त परिभाषा के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शहरी शासन किसी एक व्यक्ति का कार्य नहीं है, बल्कि यह व्यक्तियों एवं संस्थाओं का एक संयोजन है। यह सार्वजनिक क्षेत्र की क्रिया न होकर निजी क्षेत्र द्वारा भी संचालित होती है। यह एक सतत् प्रक्रिया है जो शहरों के विधिक एवं परस्पर विरोधी हितों में लगातार सामंजस्य स्थापित करती है। इस प्रकार शहरी सुशासन को निम्न बिंदुओं द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है–

(i) शहरी जीवन की गुणवत्ता में सुधार हेतु कार्य

(ii) नगरीय समस्याओं हेतु उचित समाधान

(iii) शहरों का कुशलतापूर्वक एवं प्रभावपूर्ण ढंग से संचालन

(iv) शहरी प्रबंधन में नगरपालिकाओं के अतिरिक्त अन्य समितियों एवं संस्थाओं की भागीदारी में वृद्धि

(v) गरीबों, बेसहारों, व विकलांगों के उत्थान हेतु विशेष कार्य।

शहरी सुशासन शहर की सभी समस्याओं, कठिनाइयों व जटिलताओं का उपचार नहीं है, किंतु यह निश्चित रूप से नागरिकों के कल्याण से संबंधित है एवं समाज व समुदाय को शहरी नागरिकता के अनेक लाभों को प्राप्त करने में सहायता करता है, जैसे–पर्याप्त एवं समुचित आवास, शिक्षा एवं पोषण, स्वच्छ जल, स्वच्छ वातावरण, स्वास्थ्य एवं सफाई सुविधाएं, जीवन सुरक्षा, रोजगार और सार्वजनिक सुरक्षा एवं गतिशीलता इत्यादि।

एक श्रेष्ठ शासन प्रणाली के द्वारा शहरवासियों को अपनी सामाजिक एवं आर्थिक दशाओं में सुधार लाने हेतु अपने गुण कौशल को प्रयोग करने के लिए एक सुदृढ़ वातावरण एवं माध्यम प्राप्त होता है।

आज हमारे देश में सुशासन व्यवस्था एक अनिवार्य कार्य बन गई है। अधिकांश लोगों का मत है कि सुशासन के अभाव में सरकारों का कोई महत्व नहीं है। सुशासन की राह में प्रमुख कठिनाइयाँ परिवारवाद, भ्रष्टाचार, लचर कानून व्यवस्था, लालफीताशाही, अल्प संसाधन व संसाधनों का दुरूपयोग इत्यादि हैं। सुशासन की अनुपस्थिति में कोई भी विकास कार्यक्रम नागरिकों के जीवन स्तर में गुणवत्तापूर्ण परिवर्तन नहीं ला सकता। सुशासन के चार प्रमुख तत्व हैं– पारदर्शिता, जवाबदेही, अनुमान्यता तथा भागीदारी। इनके आधार पर ही सुशासन की स्थापना की जा सकती है।

योजनाओं को कार्यवाही में परिवर्तित करने हेतु व उन्हें लागू करने हेतु एक श्रेष्ठ शहरी शासन अपरिहार्य है। अतः इस संदर्भ में निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अर्थव्यवस्था में समानता के साथ वृद्धि एवं विकास संवर्द्धन हेतु एवं शहरी शासन की क्रियाओं को श्रेष्ठ शहरी शासन बनाने हेतु सरकारों को सकारात्मक रूप से प्रयास करने चाहिए।

स्थानीय प्रशासन की सफलता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है कि इनका संबंध राज्य सरकार से किस प्रकार का है। इनकी सफलता राज्य सरकार के अच्छे संबंधों और दृष्टि पर निर्भर करती है। राज्य सरकार का यह दायित्व है कि वह अपने स्थानीय प्रशासन में विश्वास रखे और उसे निरंतर रचनात्मक कार्यों को करने की प्रेरणा देती रहे और उसे उसकी क्षमता के अनुरूप कार्य सौंपे। स्थानीय प्रशासन और राज्य सरकार के मध्य सौहार्दपूर्ण संबंध होने चाहिए तभी स्थानीय प्रशासन सुचारू रूप से कार्य कर सकेगा और स्थानीय जनता की समस्याओं का निराकरण भी शीघ्र हो सकेगा।

## निष्कर्ष

इसमें कोई दो मत नहीं हैं कि स्थानीय प्रशासन कस्बे, नगर और महानगर की प्रगति के लिए एक महत्त्वपूर्ण संस्था है। इसके रचनात्मक कार्यों से ही स्थानीय जनता लाभांवित होती है। परंतु दुख की बात यह है कि स्थानीय प्रशासनिक ढांचे और नौकरशाही में इतना अधिक भ्रष्टाचार व्याप्त हो गया है कि जनता का धन हड़पने में इन्हें नाममात्र का भी संकोच नहीं होता। अधिकारी और ठेकदारों पर लाखों रुपये हड़पने का आरोप होता है और वह प्रमाणित भी हो जाता है। फिर भी उनके विरूद्ध कानूनी कार्यवाही करना संभव नहीं हो पाता। इसलिए आवश्यक है इस देश की युवा पीढ़ी भ्रष्टाचार के विरूद्ध संघर्षरत् हो जाए। इससे स्वप्रशासन अथवा देश का प्रशासन सही ढंग से और जनता के हित में कार्य कर सकेगा।

## संदर्भ सूची

1. *भारत की जनगणना*, 1901.
2. *भारत की जनगणना*, 2011.
3. *यू.एन.डी.पी.*, 1997.
4. योगेन्द्र बंधु, रूचि भल्ला तथा प्रखर शर्मा, 2014, *नगरीय नियोजन एवं विकास*, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्रा.लि., हैदराबाद.
5. वही.
6. उत्तरा यादव 2014, *नगरीय शासन एवं नगरीय नवीनीकरण*, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्रा.लि, हैदराबाद.
7. *इकोनॉमिक सर्वे*, 2012-13.
8. *संडे टाइम्स*, 25 मार्च, 2012.
9. *74वां संविधान संशोधन विधेयक*, 1992.
10. *टाइम्स ऑफ इंडिया*, 21 मार्च, 2012.
11. *74वां संविधान संशोधन विधेयक*, 1992.

# लोकनीति और उनके प्रतिमान


## सुमन कुमार शर्मा



***lkjk'k%*** *प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य 'लोकनीति और उसके प्रतिमान' का सारगर्भित विश्लेषण प्रस्तुत करना है। लोकनीति एक अनुसंधान के रूप में बीसवीं शताब्दी के मध्य दशक के प्रारम्भ में तब उद्भवित हुई, जब इसके प्रतिमान में एक नूतन कलेवर का संचार हो रहा था। वर्तमान परिदृश्य में यह एक नूतन विद्या की परिस्थिति प्राप्त करने का प्रबल प्रयास कर रहा है। लोकनीति के निरन्तर प्रगति से इसमें जटिलता एवं कलिष्टता का पुट परिलक्षित हो रहा है, जो अनुसंधानकर्त्ताओं, शिक्षकों एवं प्रशासकों के अन्वेषण का रोचक एवं विचारोत्तेजक विषय बनता जा रहा है। वर्तमान दैनिक जीवन और शैक्षणिक परिवेश में 'लोकनीति' ऐसी प्रचलित धारणा बन गयी है जिसको हम सामान्यतः राष्ट्रीय स्वास्थ्यनीति, नई शिक्षा नीति, कृषि नीति या विदेश नीति के सदृश उल्लिखित करते हैं। यह ऐसे अन्तर्निहित क्षेत्रों से अन्तर्सम्बन्धित है जिसके जीवन का प्रभाव क्षेत्र निजी या विशुद्ध रूप से वैयक्तिक नहीं है, वरन् उभयनिष्ठ होता है।*


### प्रस्तावना

सामान्यतः वर्तमान परिवेश के अन्तर्गत विशिष्ट लक्ष्य या उद्देश्य की प्राप्ति हेतु किसी व्यक्ति द्वारा, किसी समूह द्वारा, किसी संस्था द्वारा या सरकार की प्रस्तावित कार्यवाही के सदृश ही नीतियों को अभिव्यक्त किया जाता है। प्रत्येक सरकारी या गैर-सरकारी संगठनों में अपनी प्रत्येक क्रिया से पूर्व ही नीतियों के निर्धारण की आवश्यकता होती है। प्रत्येक प्रबन्धन हेतु ये पूर्व प्रायोजित वे अपेक्षाएँ होती है, जो एक ऐसे ढाँचे का निर्धारण करती है, जिसके अन्तर्गत संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। प्रायः संगठनात्मक उद्देश्य अस्पष्ट एवं सामान्य होते है। जिन्हें नीतियों के लक्ष्य स्वरूप में सुनिश्चित किया जाता हैं। जो प्रशासन को तीव्रता प्रदान करते हैं। सरकार का एक महत्वपूर्ण कार्य नीति निर्धारण है। इस सम्बन्ध में पाल एप्पलबी का कहना है कि, ''जन प्रशासन का निहितार्थ ही नीति निर्माण हैं''।[1]

यद्यपि लोक नीतियाँ सरकारी निकायों एवं अधिकारियों द्वारा निर्मित व विकसित की जाती हैं। नीति-निर्माण प्रक्रिया पर गैर सरकारी जन तथा एजेन्सियों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित कर सकती हैं। लोकनीतियों के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख निहितार्थ परिलक्षित होते हैं। यथा –

- यादृच्छक व्यवहार की अपेक्षा उद्देश्यपरक या परिणामोन्मुखी कार्यवाही लोकनीति का प्रमाण प्रतीक है।
- लोकनीतियों का सम्बन्ध लोक प्रशासकों द्वारा किसी प्रश्न पर तदर्थ किये गये अलग निर्णयों से न होकर किसी विशिष्ट प्रश्न पर नियत समय के लिए की गई कार्यवाही या निर्णयात्मक प्रतिमानों से होता है।
- ऐसी नीति जो सरकारें वास्तविक रूप में करती हैं और जो कुछ भी बाद में घटित होता है, बजाय इसके कि सरकारें क्या करती हैं और क्या करना चाहती हैं।
- लोकनीति स्वरूप में सकारात्मक या नकारात्मक हो सकती है।

अतः लोकनीति कम-से-कम अपने सकारात्मक रूप में नियमावलम्बी होती है तथा जिन्हें कानूनी स्वीकारोक्ति होती है।[2]

वस्तुतः लोकनीति का प्रयोग प्रायः शिथिलतापूर्वक किया जाता है। त्रुटिवश इसे नियम, रीति-रिवाज या निर्णय का समिश्रण समझा जाता है। जबकि सत्य यह है कि ये शासन के पथ प्रदर्शक होते हैं, जो करने और न करने वाले कार्यों के मध्य अन्तर स्पष्ट करते हैं।

रिचर्ड रोज़ के अनुसार, ''लोकनीति एक निर्णय नहीं है, बल्कि क्रिया की एक प्रतिक्रिया है''।

डिमॉक के अनुसार, ''सजगतापूर्वक निर्धारित आचरण के वे नियम, नीतियाँ कहलाती है, जो प्रशासकीय निर्णयों की पथ प्रदर्शक होती हैं''।[3]

पीटर सेल्फ (Peter Self) नीतियों को ''बदलते हुए ऐसे निर्देशों के रूप में बताता है, जिनसे कार्यों को कैसे प्रस्तुत एवं निष्पादित किया जाता है''।[4] सर ज्यूफ्री वाइकर्स (Sir Geoffrey Vickers) के अनुसार, ''नीतियाँ उन प्रक्रियाओं को निर्देश, सम्बद्धता और निरन्तरता देने वाली निर्णय है जिनके लिए निर्णय-निकाय उत्तरदायी है''।[5]

कार्ल जे. फ्रेडरिक (Carl J. Friedrich) नीति को ''बाँधाएं और अवसर उत्पन्न करने वाले निश्चित परिवेश में व्यक्ति, समूह या सरकार की प्रस्तावित कार्यविधि मानता है जो लक्ष्य तक पहुँचने या उद्देश्य का प्रयोजन प्राप्त करने के प्रयास में प्रयोग करने और हटने के लिए प्रस्तावित किया गया था''।[6]

थॉमस आर.डे. (Thomas R. Dey) के अनुसार, ''लोकनीति वह है, जो सरकार को निर्णय करने या न करने का निश्चित करती है''।[7]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि लोक नीतियाँ सरकार द्वारा किये गये निर्णयों की फलश्रुति होती हैं। किसी भी संगठन के लक्ष्यों को नीतिगत मुद्दों द्वारा सुस्पष्ट कर प्रशासनिक पहियों से निरंतरता एवं गतिजता प्रदान किया जाता है।

लोकनीति में सामान्यतया प्रमुख विशिष्टताएँ भी परिलक्षित होती हैं, जो निम्नवत् हैं–

1. लोकनीति एक जटिल प्रक्रिया का परिणाम होती है।
2. लोकनीति एक गतिशील प्रक्रिया है।
3. लोकनीति लोकहित पर अवलम्बित होती है।
4. लोकनीति विभिन्न सरकारी व गैर-सरकारी संगठनों द्वारा निर्मित होती है।
5. लोकनीति लक्ष्योन्मुख एवं परिणामोन्मुख होती है।
6. लोकनीति दिशा-निर्देश को रेखांकित करती है।
7. लोकनीति भविष्योन्मुख होती है।

वस्तुतः प्रतिमान वास्तविक जगत् का ही प्रतिरूप होती है। लोकनीति के अध्ययन के प्रतिमान विविध उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक सिद्ध होते हैं, जिनमें निम्न प्रमुख ये हैं –

1. प्रतिमान राजनीतिगत विषयों से सम्बन्धित लोकनीति बनाने वाले विचारों को सरल एवं स्पष्ट बनाने में सहयोग प्रदान करते हैं।
2. नीतिगत समस्याओं के निराकरण में सहायता प्रदान करते हैं।
3. प्रतिमान सत्य एवं असत्य की पहचान कर सत्यनिष्ठ लोकनीतियों के निर्माण में सहयोग प्रदान करते हैं।
4. प्रतिमान राजनीतिक जीवन के अतिआवश्यक तत्वों को दृष्टिगत करते हुए स्पष्टीकरणों का परामर्श प्रदान करते हैं।

इस प्रकार लोक नीतियों से सम्बन्धित विविध प्रतिमान प्रचलित हैं, जिनमें प्रमुख प्रतिमान निम्नवत् हैं –

**1- lHkkr ;k vfHktkR;ox ifreku %** सभ्यता एवं संस्कृति के उद्भव काल से ही समाज में प्रमुखतः दो वर्ग प्रचलित रहें हैं – *प्रथमतः*, संभ्रात वर्ग – जो शासन करता है, *द्वितीयतः* जो शासित होता है। इस सिद्धांत का यह मन्तव्य है कि समाज में अधिकांश जनता उदासीन होती है, उनमें नीति निर्माण सम्बन्धी आवश्यक ज्ञान का अभाव पाया जाता है। इसलिए अभिजात्य वर्ग ही लोक नीतियों के सम्बन्ध में जनमत को अपनी इच्छानुसार ढाल लेता है। अर्थात् संभ्रांत या अभिजात्य वर्ग शासकों के मूल्यों को प्रतिबिम्बित करने वाली नीतियाँ बनाता है। वर्तमान समय में अधिकांश

विकासशील देशों में पाश्चात्य ढंग से शिक्षित एवं उच्च सामाजिक-आर्थिक वर्गों के नेताओं का ही वर्चस्व कायम है। अतः लोक नीतियों के निर्माण में संभ्रांत या अभिजात्य वर्ग के लोगों का ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभाव कायम रहता है।

**2- lLFkkijd ifreku ¼** ए.एफ बैंटले को इस प्रतिमान का प्रतिपादक माना जाता है जिसके अन्तर्गत नीतियों के निर्माण, कार्यान्वयन एवं उन्हें प्रभावशील बनाने में संसद, मंत्रिपरिषद् एवं न्यायालयों जैसी विभिन्न सरकारी संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। संयोगवश विकासशील देशों में लोकनीतियों के निर्धारण में इन संस्थाओं का योगदान कमतर रहा है। इस सिद्धान्त के अनुसार समाज में अनेक संगठित समूहों तथा लॉबियों का वर्चस्व कायम रहता है। अतः इन नीतियों का निर्माण इन छोटे समूहों के हाथों में होता है। इस प्रकार लोक नीतियाँ वास्तव में उन्हीं समूहों को लाभान्वित करती है, जो लोग लोकनीतियों से सीधे प्रभावित होते हैं। सशक्त प्रतिकारी संगठित समूहों के अभाव के कारण इस प्रकार की स्थितियाँ दृष्टिगत होती है। Carl J. Friedrich की पुस्तक Constitutional Government and Democracy संस्थापरक प्रतिमान का अद्वितीय उदाहरण है।

**3- lof)kuh ifreku ¼** इस नीति का मुख्य उद्देश्य किसी नूतन नीति के सम्भावित संकट को कमतर करना है। इसलिए उनमें नूतन नीतियों के निर्धारण का क्षेत्र पूर्व लागू की गयी नीतियों द्वारा निर्धारित किया जाता है। इस प्रकार इस प्रतिमान के अन्तर्गत नीतियों के निर्माण में केवल क्रमिक परिवर्तन ही सम्भव होता है। अतः यह प्रतिमान तीव्रगति से विकास की ओर उन्मुख विकासशील देशों हेतु अधिक उपयोगी नहीं है। संवृद्धिवादी या अल्पवृद्धिक प्रतिमान का मन्तव्य है कि, ''नीति निर्माताओं को केवल सीमित नीति विकल्प प्रदान किये जाते है और इनमें केवल छोटे परिवर्तन की गुंजाइश होती है। इस प्रकार यह प्रतिमान रूढ़िवादी एवं संकुचित है''।

**4- oxZ; ifreku ¼** वर्गीय प्रतिमान का प्रतिपादन आर्थर एफ. बेन्टले (Arther F. Bentley) ने 'The process of Government' में किया। वर्गीय प्रतिमान की यह मान्यता है कि वर्गों के अन्तर्निहित राजनीति का केन्द्रबिन्दु है। राजनीति विभिन्न वर्गों के साथ सार्वजनिक नीति को प्रभावित करने हेतु संघर्ष का नाम है। राजनीतिक व्यवस्था का यह कार्य है कि यह वर्ग-संघर्ष का हल निकालने के लिये आवश्यक नियमों का निर्धारण करें, हितों को संतुलित करे, लोक नीति के रूप में हितों में समझौता प्राप्त करे और इन्हें क्रियान्वित करे।

वास्तव में लोकनीति वर्ग-संघर्ष में प्राप्त संतुलन का ही नाम है, जो एक वर्ग की सापेक्षिक क्षमता द्वारा निर्धारित होता है। किसी एक वर्ग के प्रभाव में उत्पन्न सापेक्षिक अन्तर लोकनीति में भी परिवर्तन उत्पन्न करता है तथा जिस वर्ग का प्रभाव बढ़ता है लोकनीति का झुकाव स्वतः ही उसकी ओर हो जाता है।

**5- i)fr fo'y"k.k ifreku %** इस प्रतिमान के अन्तर्गत देश में प्रचलित राजनीतिक व्यवस्था के सम्बन्ध में लोकनीति की व्याख्या की जाती है। व्यवस्थापिका कार्यपालिका, न्यायपालिका, राजनीतिक दल, चुनाव इत्यादि विभिन्न संस्थाओं के सम्मिलित रूप को ही लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था कहते हैं। इन संस्थाओं का कार्यालय, कुलीन वर्ग, साधारण जनता के विभिन्न वर्गों की रूचियों, रीति-रिवाजों एवं विचारधाराओं इत्यादि से प्रभावित होते हैं। साथ ही राष्ट्रीय वातावरण, शहरीकरण, औद्योगीकरण, विकास का स्तर, वर्ग व्यवस्था, व्यावसायिक संरचना इत्यादि भी लोकनीतियों के निर्माण में योगदान देते हैं।

**6- fu.k; dk rkfdZd ifreku %** तार्किक प्रतिमान का सम्बन्ध ऐसी लोक नीतियों के निर्माण से है, जो तुलनात्मक रूप से अच्छी लोक नीतियाँ को आश्वस्त कर सके। हरबर्ट साइमन के द्वारा इस सिद्धान्त में निर्णय लेने की प्रक्रिया में तीन तरह की क्रियाएँ पायी जाती हैं –

(i) *बौद्धिक क्रिया :* इसके अन्तर्गत निर्णय निर्माण के लिये विद्यमान सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक संदर्भ में स्थितियों की खोज करना।

(ii) *परियोजना क्रिया :* समस्त सम्भावित उपायों को खोजना, विकसित करना एवं उनका विश्लेषण करना।

(iii) *चयन क्रिया :* किसी विशिष्ट उपाय के उपलब्ध समस्त सम्भव उपायों में से चुनना।

तार्किक प्रतिमान को निम्नलिखित चित्र के आधार पर समझा जा सकता है –

यद्यपि यह तार्किक प्रक्रिया जितनी प्रभावपूर्ण लगती है, व्यवहार में प्रयोग में लाना उतना ही कठिन है। क्योंकि न तो समाज के महत्वपूर्ण मूल्यों पर मतैक्यता पायी जाती है, न ही निर्णय निर्माता सदैव निष्पक्ष भाव से तथ्यों के प्रभाव में ही कार्य करते हैं।

यह तार्किक दृष्टिकोण बौद्धिक क्रियाओं की तरफ ध्यान आकर्षित करते हैं, जिन्हें विभिन्न सिद्धान्तों के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता हैः –

**1- ykd p;u dk fl)kUr %** इसके अनुसार लोक नीतियाँ जनता के चयन द्वारा बनायी और संशोधित की जाती हैं। जैसे– नागरिकों के आवागमन के विभिन्न साधन सार्वजनिक और निजी उपलब्ध होने चाहिए। नागरिक यदि सार्वजनिक साधनों, को छोड़कर निजी साधनों का प्रयोग करना चाहता है, तो उसे प्रयोग से रोका नहीं जा सकता। परन्तु सीमित स्थान और सड़कों के कारण उसे निजी वाहन प्रयोग करने के लिये विशेष शुल्क देने के लिये आदेश दिया जा सकता है और इस तरह शुल्क से प्राप्त अतिरिक्त राशि को विभिन्न समस्याओं को सुलझाने के लिये अग्रिम शोध में लगाया जाता है।

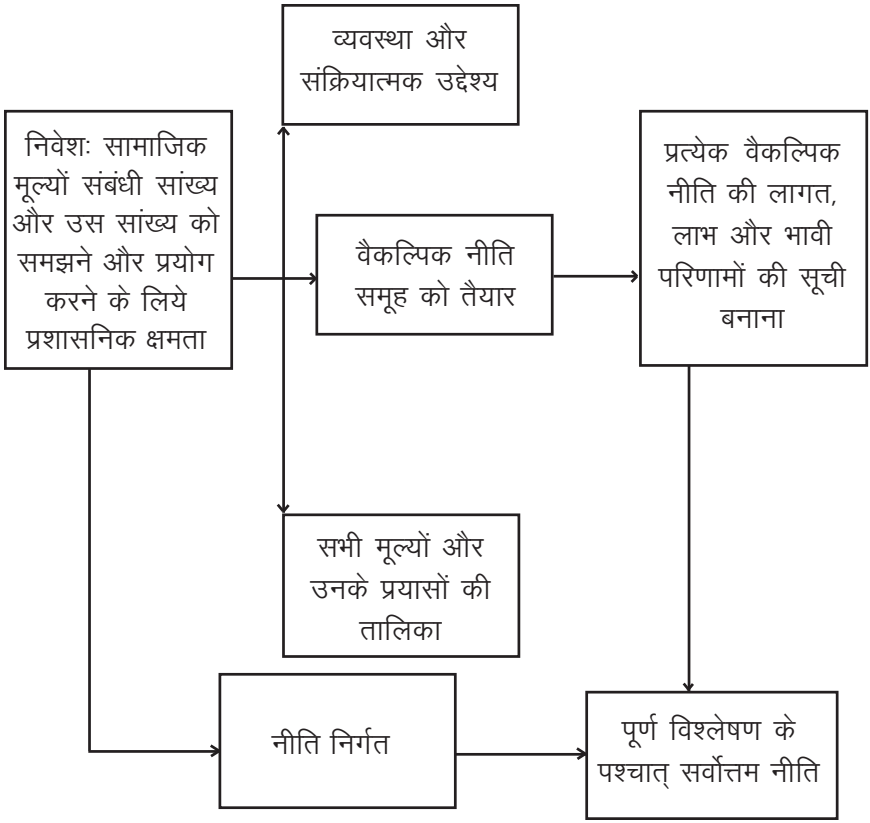


**2- cfg"dkj ;k miHkksx fl)kUr %** इसके द्वारा यह निर्धारित किया जाता है कि किस प्रकार की सेवाएँ सरकार द्वारा प्रदान किया जाना चाहिए और कौन सी निजी समूह द्वारा। वर्तमान नव उदारवादी प्रवाह के युग में यह सिद्धान्त विशेष महत्वपूर्ण है। इसका मुख्य बिन्दु नियन्त्रण की दर से सम्बन्धित है, जो कि विक्रेता और उपभोक्ता एक वस्तु के सम्बन्ध में रखते हैं। अर्थात् किसी वस्तु के खरीदने से खरीददार को रोका जा सकता है अथवा उस वस्तु के उपभोग करने से रोका जा सकता है। विक्रेता और क्रेता के आपसी सहमति के आधार पर निर्धारित कीमत द्वारा क्रेता का व्यवहार निर्धारित होता है, परन्तु अधिकांश परिस्थितियों में बहिष्कार करने का नियन्त्रण विक्रेता में पाया जाता है। परन्तु कुछ सेवाओं को आसानी से नियंत्रित नहीं किया जा सकता है, जैसे कि सड़क पर लगे पथ प्रकाश से प्राप्त रोशनी से सड़क पर चलने वाले को नहीं रोका जा सकता है।

**3- eY;kdu dk ik|kfxdh fl)kUr %** इसका तात्पर्य है कि एक व्यवस्थित योजना और पूर्वानुमान लगाना तथा योजना के द्वारा उपलब्ध विकल्प और उनकी लागत को पृथक करना। साथ ही विभिन्न विकल्पों पर पड़ने वाले तथा उनके प्रभाव से उत्पन्न होने वाले आर्थिक पर्यावरण एवं सामाजिक प्रभावों का आंकलन करना।

अंततः प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित सकारात्मक व नकारात्मक प्रभावों पर ध्यान केन्द्रित करना।

**4- uhfr fuek.k vkj fØ;kUo;u d fy; lkefjd -;ktuk dk ifreku %** सामरिक योजना प्रतिमान का निर्माण या उदय विशेषकर व्यवसाय जगत् में हुआ है। जिसे अपनाकर विभिन्न व्यवसायिक निगम अधिक प्रतियोगी हो गये हैं। साथ ही अपने कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक भावनात्मक आवश्यकताओं के प्रति अधिक जागरुक हुए है। इस योजना में यह कहा गया है कि संगठन की जहाँ स्थानीय, अल्पकालिक और निम्न स्तरीय माँगे होती हैं, वहीं दूसरी ओर दीर्घकालिक और भविष्य के लिये निवेशोन्मुखी माँगे भी होती है। अतः इसमें वर्तमान आवश्यकताओं और भावी उज्ज्वल जीवन सम्बन्धी आवश्यकताओं को संतुलित किया जाता है। इसमें संवृद्धि और तार्किक प्रतिमानों के गुणों का मिश्रण पाया जाता है। तार्किक सिद्धान्तों से भिन्न इसमें सिर्फ निर्णयों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है।

## निष्कर्ष

इस प्रकार इन तथ्यों के विश्लेषण से यह नितांत स्पष्ट है कि लोकनीति को लोकप्रबन्धन में स्पर्धा करने वाले पृथक प्रतिमान के सदृश समझा जा सकता है। एक पृथक प्रतिमान के रूप में सरकार जिन नीतियों का सृजन करती है। उसके लोग जिनके लिए नीतियाँ अभिप्रेत है, उनके मध्य अन्योन्यक्रिया के अध्ययन हेतु यह उपयोगी है। नीति अनुसंधान का कार्य ठीक एवं उपयोगी निर्णय सम्बन्धी सूचना प्रदान कर लोकनीति की प्रक्रिया को सफल बनाना है। सूचना उत्पन्न करने हेतु अपेक्षित कुशलता जो तकनीकी आधार पर सुदृढ़ व उपयोगी है, यह नीति अन्वेषण प्रक्रिया के केन्द्र में विद्यमान है, इस हेतु चाहे क्यों न विशिष्ट कार्यविधियों का अनुसरण किया गया हो। समाज में विद्यमान समस्याओं के निराकरण हेतु आधुनिक प्रौद्योगिकी की अपेक्षित प्रयास विशिष्ट तरीके व तकनीकी नीति विश्लेषण का अन्वेषण तरीके व तकनीकी नीति विश्लेषण का अन्वेषण करती है, जो नीति-निर्माताओं की सर्वप्रथम लाभप्रद आवश्यकता के चुनाव में सहयोग प्रदान करती है, लोक नीति और उसके प्रतिमान सरकार क्या करती है? प्रशासन में कैसे कार्य करते हैं? और उन्हें कैसे लोक प्रशासन से मिलाता है। इस पर ध्यान आकृष्ट करने हेतु उपयोगी भूमिका का निर्वहन कर सकेगा।

## सन्दर्भ

1. रूमकी वसु, लोक प्रशासन-संकल्पनाएँ एवं सिद्धान्त, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्टीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 1999, पृ.-461
2. वही, पृ.-462

3. अवस्थी एवं माहेश्वरी, लोक प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2011, पृ.-768
4. Peter Self, Administrative Theories and Politics : An Inquiry in to the Structure and Processes of Modern Government, George Allen & Unwin, London, 1972.
5. Sir Geoffrey Vickers, The Art of Judgement, chapman & Hall, London, 1965.
6. Carl J. Friedrich, Man and His Government, McGraw-Hill, New Yark, 1963.
7. Thomas R. Dye, Understanding Public Policy, Prentics Hall, Englewood clieffs, 1978.
8. इन्द्रजीत कौर, लोक प्रशाासनः नए क्षितिज, एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाऊस, आगरा, 2017, पृ.-273

# मध्यप्रदेश में आदिवासी महिलाओं का अध्ययन और उदारीकरण का प्रभाव


## दुर्गेश तेली



***lkjk'k*** *आदिवासी समुदाय या जनजातीय मुख्यतः जंगलों, पहाड़ों में रहना पसंद करते हैं। इनका व्यवसाय व आजीविका यहीं से संसाधनों के द्वारा चलती है और यहीं से अपनी आर्थिक हितों की पूर्ति करते हैं और अपना जीवनयापन करते हैं तथा जल, जंगल और जमीन के लिए संघर्ष करते हैं लेकिन देखा यह गया है कि इनकी यह स्थिति काफी दयनीय है हम उदारीकरण के संदर्भ में आदिवासी समुदाय की महिलाओं की स्थिति के बारे में जानने का प्रयत्न करेंगे। मुख्यतः यह देखा जाता है कि इस समुदाय को शोषित ही माना जाता रहा है। हम सबसे पहले आदिवासी समुदाय की ऐतिहासिक स्थिति को संक्षिप्त में बताने का प्रयत्न करेंगे तत्पश्चात् उदारीकरण के दौर में इनकी स्थिति को समझने के लिए उदारीकरण से पूर्व सामाजिक और आर्थिक स्थिति को समझने का प्रयास करेंगे। जिसमें कि सांस्कृतिक रीति -रिवाज, प्राकृतिक जुड़ाव, महिला संघर्ष तथा इनके व्यावसायिक संबंधी कार्य और स्थानांतरण जैसी समस्याओं पर विचार किया जाएगा। उदारीकरण से पूर्व की अवस्था को समझने के पश्चात् उदारीकरण के दौर में इस समुदाय पर होने वाले बदलावों का सामाजिक और आर्थिक स्थिति की चर्चा करेंगे तत्पश्चात् इसके आर्थिक और सामाजिक बिन्दुओं के आधार पर मध्य प्रदेश के संदर्भ में वहाँ की आर्थिक और सामाजिक स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाएगा। इन सभी के आधार पर यह बताने का प्रयत्न किया जाएगा कि किस तरीके से आदिवासी समुदाय और महिलाओं का भावनात्मक मूल्यों को ठेस पहुँचाया जा रहा है और इनके सोच और समझ पर नियंत्रण करने का प्रयास किया जा रहा है।*


### ऐतिहासिक परिपेक्ष्य

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो आदिवासी समुदाय कई सामाजिक हिस्सों में बँटा हुआ है। सभी जातियों तथा जनजातियों का परिवेश अलग-अलग होने के कारण जीवन-शैली तथा व्यवसाय अलग-अलग है। बहुत सारे आदिवासियों

(जनजातियों) की पहचान उनके परम्परागत व्यवसायों व उनके सामाजिक जीवनशैली से निर्धारित होती है। परन्तु जनजातियों का व्यवसाय तथा परिवेश उनके द्वारा ही निश्चित किया जाता है।

वनों में रहने वाले जनजातियों का जीवनयापन, वहाँ की भूमि में खेती के साधन स्वयं विकसित हुए हैं ताकि वे अपना जीवनयापन कर सके यही नहीं आदिवासी अपने स्वास्थ्य संबंधी दवाओं की उपलब्धता यहीं से प्राप्त करते हैं क्योंकि इनको जड़ी-बूटियों का अत्यधिक ज्ञान होता है। ये तरह-तरह की हस्तकला से सामग्री बनाने की कला, जोकि उनका आर्थिक स्रोत बन सके। उनका अपने भूमि से गहरा संबंध होता है वे अपनी भूमि में किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप नहीं चाहते।

ब्रिटिश समय में देखा जाए तो अंग्रेजों ने इनके क्षेत्र में हस्तक्षेप किया ताकि वनों से प्राप्त संसाधनों का वे अपने लाभ के लिए प्रयोग कर सकें। इसके लिए उन्होंने 1864 में वन्य विभाग का निर्माण किया। यही नहीं उन्होंने इसके पश्चात् वनों को परिभाषित करने की कोशिश की है।

1878 का वन अधिनियम जिसके माध्यम से (Idea of Eminent Domain) का विचार लेकर आए जिससे कि किसी भी भूमि को वन क्षेत्र घोषित किया जा सकता है।[1] इस अधिनियम के तहत आदिवासियों को उनके प्राकृतिक संसाधनों से वंचित किया तथा उनसे उस स्थान पर रहने के लिए कानूनी दस्तावेज माँगे अन्यथा उन्हें अतिक्रमण (Encroacher) माना गया। जिसके पास दस्तावेज नहीं थे उन्हें भूमि से बेदखल किया गया।

यही नहीं 1927 भारतीय वन अधिनियम के तहत सरकार किसी भी भूमि को सरकारी होने का दावा कर सकती थी और सार्वजनिक विकास के लिए उस भूमि का उपयोग कर सकती थी। इस अधिनियम को स्वतंत्रता के पश्चात् भी संवैधानिक तौर पर मान्यता प्राप्त रही।[2]

राष्ट्रीय विकास के विचार की शुरूआत 1952 में हुई जिसके तहत सरकार किसी भी भूमि को राष्ट्रीय विकास के नाम पर उसका उपयोग कर सकती थी। इस विचार से अत्यधिक मात्रा में वन्य संसाधनों का दोहन किया गया जिसके कारण कई जनजातियों को विस्थापित होना पड़ा। वन जीवों पर भी इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 (1) और (2) के अन्तर्गत जनजातियों को दो श्रेणियों में दर्शाया गया है।

*प्रथम,* जिनकी पहचान सरकारी सर्वेक्षण द्वारा की गई है। *द्वितीय* जिनकी पहचान अभी तक नहीं हो पाई है जिसके कारण वे कानूनी अधिकारों से वंचित हैं।

वन्य जीवों की घटती संख्या और जनजातियों के अधिकारों के हनन की समस्या को देखते हुए 1972 में वन्य जीव संरक्षण अधिनियम लाया गया। जिसमें दो प्रकार

के विचारों का समावेश पाया गया – *प्रथम* संरक्षणवादी, *द्वितीय* पर्यावरणवादी।

संरक्षणवादियों के अनुसार वन्य जीवों के संरक्षण की बात करते हैं। पर्यावरणवादी के अनुसार मानव व वन्य जीव दोनों एक-दूसरे के पूरक है।

### 1980 का वन-संरक्षण अधिनियम

जिसके तहत मानव हस्तक्षेप के बिना वन्य जीवों का संरक्षण होना चाहिए क्योंकि मानव हस्तक्षेप से वन्य जीवों को खतरा है।

### 1988 की राष्ट्रीय वन नीति

इस अधिनियम के तहत आदिवासियों की पारंपरिक सभ्यता, संस्कृति तथा भूमि को लेकर बदलाव की बात करते हैं और उनके संरक्षण भी महत्वपूर्ण हैं। पर्यावरण और पारिस्थितिकीय तंत्र में संतुलन की बात करते हैं।

### 1990 Joint Forest Management

इस अधिनियम के तहत क्षेत्रीय स्तर के लोगों के साथ मिलकर वनों के संसाधनों की सुरक्षा करना। जिसके तहत प्राकृतिक संसाधनों को दोहन से बचाना है।

## अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पारम्परिक वनवासी अधिनियम 2006

इस अधिनियम के तहत जिन लोगों की पहचान आदिवासी के रूप में नहीं थी तथा वे वन में रहते थे उनकी पहचान की गई। इसके इतिहास के गहराई पर न जाते हुए और इसके ऐतिहासिक संक्षेप विवरण के पश्चात् अब हमें आदिवासी समुदाय की महिलाओं की स्थिति को उदारीकरण से हुए परिवर्तन के रूप में समझना होगा। हमारा केन्द्रीय प्रश्न यह है कि उदारीकरण के दौरान हुए परिवर्तन का जनजातीय समुदाय के महिला और प्रभाव।

## उदारीकरण से पूर्व सामाजिक और आर्थिक स्थिति

*सामाजिक स्थिति* – आदिवासी समुदाय का एक अलग ही समाज होता है और उसमें आदिवासियों को अपनी रीति-रिवाज, नियम और उनकी अपनी संस्कृति होती है। जिसके आधर पर उनका सारा समाज चलता है। इस समुदाय में महिलाओं की स्थिति को समझना आवश्यक होगा। उदारीकरण से पूर्व की महिलाओं की सामाजिक स्थिति को हम तीन बिंदुओं के आधार पर समझने की कोशिश करेंगे।

(क) सांस्कृतिक रीति-रिवाज

(ख) महिलाओं का प्रकृति से जुड़ाव

(ग) महिलाओं का आंदोलन

## सांस्कृतिक रीति-रिवाज

यह देखा जा सकता है कि आदिवासी महिलाएँ व समुदाय की अपनी एक अलग ही पहचान होती है और ये अपने रीति-रिवाज और सामाजिक नियमों से बंधे होते हैं, यहाँ तक की उनकी अपनी धर्मिक गतिविधियाँ होती हैं जिसमें देखा यह जाता है कि इन सभी सामाजिक गतिविधियों में महिलाओं की अधिक भूमिका होती है।[3] इनके रीति-रिवाजों को हम एक उदाहरण के द्वारा समझने की कोशिश करेंगे क्योंकि कई आदिवासी समुदायों की अलग-अलग रीति-रिवाज उनके परिवेश पर निर्भर करती है। कोरबा में अगर लड़कियों की बात की जाए तो वहाँ लड़कियों की परवरिश उनकी माँ के द्वारा की जाती है और लड़के के घर में उसकी सासू माँ करती है लेकिन वहाँ का एक रिवाज यह था कि अगर लड़की और लड़का एक-दूसरे को पसंद करते हैं तो सगाई के बाद लड़की को लड़के के घर पर घुलने-मिलने के लिए भेज दिया जाता है और अगर दोनों में से कोई भी एक-दूसरे के प्रति वफादार नहीं हो तो दोनों एक-दूसरे को छोड़ने के लिए स्वतंत्र होते थे और वे एक-दूसरे को छोड़ने के पश्चात् लड़की या लड़का अपने इच्छा अनुसार कहीं और शादी कर सकते थे और इस रिवाज को समाज में गलत नहीं माना जाता था। इस आधार पर यह भी कह सकते हैं कि आदिवासी या जनजातीय महिलाएँ उदारीकरण से पूर्व और समुदाय की महिलाओं की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र थीं।

आदिवासी महिलाएँ कई सामाजिक व सांस्कृतिक कार्यों को करने में अपनी अह्म भूमिका निभाती हैं और यहाँ तक की पुरुषों के साथ समान रूप से अपनी सहभागिता दिखाती हैं। घरेलू कामकाज के साथ-साथ बाहर के कार्यों में वे अपना हाथ बँटाती हैं।

## आदिवासी महिलाओं का प्रकृति से जुड़ाव

आदिवासी समुदाय के जंगलों में रहने के कारण उनकी जंगलों पर निर्भरता भी होती है यहाँ तक कि स्वास्थ्य संबंधी महत्वपूर्ण जड़ी-बूटियों से वे भली-भाँति परिचित होती हैं जिसके परिणामस्वरूप वे कई बीमारियों का इलाज स्वयं ही कर लेती हैं। इन बातों से यह कहा जा सकता है कि आदिवासियों के लिए वन कितना महत्वपूर्ण है।[4] इन सभी जड़ी-बूटियों का उपयोग करने में महिलाओं की अह्म भूमिका होती है। वे जंगलों से इन जड़ी-बूटियों को लाकर इनकी दवा बना और अपने बच्चों की परिवरिश करती हैं। इसलिए जंगल, जमीन आदिवासियों के लिए महत्वपूर्ण है यहाँ तक की उनका प्रकृति से इतना जुड़ाव होता है कि वे अपने जीवनयापन के लिए इन्हीं जंगलों पर निर्भर होती हैं। बागवानी कृषि और पशुपालन जैसे कार्यों में भी महिलाएँ बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेती हैं। इसी के आधार पर वे अपना विकास करने की कोशिश करती हैं जिसमें वे फलों को एकत्रित करना– महुआ, आँवला, अमरूद और अन्य फल इसके

अतिरिक्त अपने घर के आस-पास पेड़-पौधे लगाना, महिलाओं व सजावट के पौधे आदि लगाना। यह सारा का सारा संकेत यह स्पष्ट करता है कि प्रकृति से जनजाति महिलाओं का कितना जुड़ाव है लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात् यह देखा गया है कि कई कारणों से राज्य सरकारों के द्वारा केन्द्रीकृत औद्योगिक व्यवस्था को अपनाए जाने के कारण और कई औद्योगिक कम्पनियों के द्वारा आदिवासी समुदाय का शोषण होता रहा है और धीरे-धीरे प्रकृति से, जहाँ पर वे निवास करती हैं उन्हें अलग करने की कोशिश होती रही है। हालाँकि आदिवासी समुदाय यह नहीं चाहते कि उनके जंगल जमीन पर कोई हस्तक्षेप करे क्योंकि उनका जंगल और जमीन से इतना गहरा जुड़ाव होता है कि वे अपने आप को अलग नहीं रहने देना चाहते क्योंकि उनकी निर्भरता इन्हीं जंगलों या वनों से होती है। इसलिए प्रकृति से इनका अत्यधिक जुड़ाव होता है।

## आदिवासी महिलाओं का आंदोलन

औद्योगीकरण प्रभाव और विस्थापन की समस्या के कारण आदिवासी समुदाय की महिलाएँ या आदिवासी समुदाय अत्यधिक प्रभावित होते हैं। जिनमें यह देखा गया है कि कई ऐसे आदिवासी समूह से या समुदाय से जुड़े मुद्दे हैं जिनमें आदिवासी महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

### (i) *चिपको आंदोलन*

1970 के दशक में देश में पर्यावरण आंदोलन का भी उभार हुआ। इसमें उद्योगों को फायदा पहुँचाने के लिए जंगलों का दोहन करने का विरोध किया गया। इस तरह के आंदोलन में चिपको आंदोलन सबसे प्रमुख है।[5] यह आंदोलन 1973 में शुरू हुआ। इसमें स्थानीय लोगों ने एक खेल कम्पनी को अलकनंदा घाटी की लकड़ियाँ काटने का अधिकार देने का विरोध किया जिसमें आदिवासी महिलाओं ने भी बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। इसके विरोध के लिए लोगों ने पेड़ से चिपककर इसको काटने से बचाया। *रामचन्द्र गुहा* ने अपने कई शोध-आलेखों के माध्यम से इस आंदोलन के मजबूत ऐतिहासिक आधार पर जोर दिया।

चिपको आंदोलन पर्यावरणीय आंदोलन के साथ-साथ लोगों द्वारा अपनी जीविका के लिए किए गए संघर्ष को भी दिखाता है। इस आंदोलन के द्वारा उन्होंने (आदिवासी) जंगलों पर अपने अधिकार को दिखाया।

### (ii) *नर्मदा बचाओ आंदोलन*

नर्मदा बचाओ आंदोलन जो कि मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात तक फैला हुआ था जिसमें कि नर्मदा नदी पर बाँध बनाने की परियोजना 1960 के दशक में लाई गई जिसके खिलाफ नदी के किनारे रहने वाले लोगों ने इस नदी परियोजना का विरोध किया और इस परियोजना के शुरू होने से देखा यह गया कि नदी के किनारे विस्थापित

लोगों में आदिवासी समुदाय अत्यधिक प्रभावित हुए और जिसमें कि महिलाओं की स्थिति बहुत ही दयनीय हो गई और कई परिवारों को अलग-थलग होना पड़ा जिससे की उनकी आजीविका पर गहरा प्रभाव पड़ा।[6]

इस प्रकार आदिवासी महिलाएँ ने कई वन-विभाग की नीतियों का भी विरोध किया और सरकार की नीतियों का भी क्योंकि इससे आदिवासी समुदाय या महिलाओं पर इसका बुरा असर पर पड़ रहा था इसलिए उन्होंने अपनी आजीविका के लिए संघर्ष किया।

## उदारीकरण से पूर्व आर्थिक स्थिति

आदिवासी समुदाय जंगलों या वनों पर निर्भर रहते हैं और इनकी आर्थिक हितों की पूर्ति इन्हीं जंगलों व पहाड़ों के संसाधनों के द्वारा होती है। इनका आर्थिक स्तर बहुत ही निचले स्तर का होता है और इनका कृषि उत्पादन भी काफी निचले स्तर पर होता पिफर भी उनकी आजीविका इसी पर निर्भर होती है। आदिवासी समुदाय की महिलाओं की आर्थिक स्थिति को हम तीन पहलुओं के आधार पर समझ सकते हैं।

### क. व्यावसायिक साधन

आदिवासी महिलाएँ आर्थिक हितों के लिए कई महत्वपूर्ण संसाधनों का सहारा लेती हैं और पुरुषों के समान ही व्यवसाय कार्य पर अपना हाथ बँटाती हैं। जैसा कि जंगलों से लकड़ी लाना, महुआ, आँवला, अमरूद जैसे अनेक व्यावसायिक वस्तुओं को लेकर आती हैं और अपने ही घर पर हाथों से कई महत्वपूर्ण वस्तुओं का बनाती हैं और इससे अपने आर्थिक हित का जैसे कि टोकरी बनाना, अपने ही हाथों से उकनी वस्त्र, चटाई इत्यादि कई महत्वपूर्ण सामग्री का निर्माण करती हैं और बाजार में इन्हें पहुँचाती हैं ताकि इनसे आर्थिक हितों की पूर्ति हो सके, लेकिन उद्योगों के हस्तक्षेप व सरकार के हस्तक्षेप के कारण देखा यह जा रहा है कि इनसे आर्थिक हितों को नुकसान पहुँचाया जा रहा है। महिलाओं को जलाने की लकड़ी जोकि जंगल से प्राप्त होती थी उसके खिलाफ वन विभाग के द्वारा हस्तक्षेप किया गया, जिसके खिलाफ महिलाओं ने संघर्ष किया।

### ख. श्रमिक विभाजन

आदिवासी समुदाय में चूँकि आर्थिक स्थिति निचले स्तर की है, इसलिए इसमें आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए इस समुदाय में लिंग के आधार पर श्रमिक विभाजन देख सकते हैं।

*मजूमदार जी* इसको भली-भांति समझाने का प्रयास करते हैं। इन्होंने श्रम-शक्ति को परिभाषित करते हुए श्रमिकों का विभाजन किया है। 1981 के जनगणना के

अनुसार वे लोग श्रमशक्ति में शामिल किए गए जोकि आर्थिक कार्य में लगकर उत्पादन में सहयोग करते हैं। यह सहभागिता शारीरिक और मानसिक रूप से भी हो सकती है।[7]

इस आधार पर श्रम शक्ति को तीन भागों में बाँट सकते हैं –

1. *मुख्य श्रमिक* – ये श्रमिक लगभग साल भर काम में लगे हैं और आर्थिक उत्पादन करते हैं।
2. *मार्जनल श्रमिक* & ये वे श्रमिक हैं जो साल में 183 दिन या छः महीने से कम काम करते हैं या आर्थिक उत्पादन में लगे हैं।
3. *कार्यविहीन श्रमिक* & ये वे श्रमिक है जो साल भर किसी भी आर्थिक उत्पादन में हिस्सा नहीं लेते।

इस तरीके से इस श्रमिक विभाजन से महिलाओं की दयनीय स्थिति का भी आभास होता है कि किस तरीके से महिलाएँ चाहे घरेलू कार्य हो या खेती उद्योग के क्षेत्र में उनकी बेहतर स्थिति नहीं है।

## ग. स्थानांतरण

एक ऐसी समस्या है जिसको कि हम आदिवासी समुदाय में भली-भांति समझ सकते हैं। आदिवासी समुदाय में आर्थिक हितों की पूर्ति न होने के कारण स्थानांतरण की समस्याओं को आसानी से समझा जा सकता है।[8] उदारीकरण से पूर्व यह समस्या मौसम पर निर्भर करती थी लेकिन उदारीकरण के दौरान इसमें बदलाव हुआ। उदारीकरण से पूर्व स्थानांतरण की समस्या, फसल में पैदावार न हो पाना, मौसम या फिर एक फसल के बाद खाली समय पर लोग शहरों की ओर पलायन करते थे, जिसमें महिलाएँ भी शामिल रहीं लेकिन उस समय आदिवासी महिलाएँ कम मात्रा में पलायन करती थीं लेकिन धीरे-धीरे इनकी संख्या में बढ़ोत्तरी होने लगी लेकिन फिर भी इनकी स्थिति में कोई खास परिवर्तन देखने को नहीं मिलता है। अभी भी कई मामलों में आदिवासी महिलाएँ उपेक्षित ही देखी जाती हैं।

उदारीकरण से पूर्व आदिवासी समुदाय की महिलाओं की स्थिति को समझने पर कहीं-न-कहीं यह प्रतीत होता है कि आदिवासी समुदाय या महिलाएँ उद्योगों के हस्तक्षेप के कारण, ये समुदाय हास्य व्यवस्था पर दिखाई पड़ते है। यही नहीं इनके जीवनयापन पर औद्योगीकरण के कारण बुरा प्रभाव पड़ रहा है और कहीं-न-कहीं सरकार और उसकी नीतियों के कारण यह समुदाय सोचने पर विवश और इनके मस्तिष्क पर नियंत्रण करने का प्रयास किया जा रहा है जिसके कारण वे सही फैसला नहीं ले पा रहे है। उदारीकरण से पूर्व की अवस्था को समझने के पश्चात् अब उदारीकरण के दौरान आदिवासी समुदाय के बदलते स्वरूप को समझने का प्रयत्न करेंगे।

## उदारीकरण और आदिवासी समुदाय की सामाजिक स्थिति

उदारीकरण के दौरान आदिवासी समुदाय या विशेष रूप से इस समुदाय की महिलाओं के स्थिति की सामाजिक स्वरूप को हम तीन आधारों पर समझ सकते हैं–

क. सांस्कृतिक आधर

ख. प्राकृतिक संसाधनों से अलगाव

ग. आदिवासी महिलाओं का संघर्ष

### क. सांस्कृतिक आधार

आदिवासी समुदाय की महिलाओं की सांस्कृतिक अवस्थाओं को अगर उदारीकरण के संदर्भ में और वैश्वीकरण के संदर्भ में अगर समझा जाए तो उदारीकरण से पूर्व की अवस्था से भिन्न है क्योंकि LPG (उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के) प्रभाव व सरकार के द्वारा आदिवासी के स्थान पर हस्तक्षेप के कारण इनके जीवनयापन व रहन-सहन पर परिवर्तन देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए आदिवासी समुदाय में वैवाहिक जीवन में परिवर्तन आया है। वैश्वीकरण के कारण इस समुदाय में माँग बढ़ी है। अर्थात् आदिवासी समुदाय में विवाह के दौरान दी जाने वाली दहेज इत्यादि में बढ़ोत्तरी हुई है और साथ ही अन्य नई माँगे भी बढ़ती जा रही हैं। जिसमें शादी जैसे अवसरों के लिए वधु पक्ष के लोग अपनी बेटी-वर के लिए अपनी गाढ़ी कमाई का एक भाग उसकी शादी के लिए बचा कर रखते हैं।

और देखा यह जाता है कि कुछ लोग अपनी बेटियों की शादी चोरी-चुपके कम उम्र में कर देते है हालाँकि एक सकारात्मक परिवर्तन यह देखा जा सकता है कि बहुत से लोग कानूनी प्रक्रिया के तहत 18 वर्ष के अवस्था या इसके बाद ही विवाह करते हैं। लेकिन उदारीकरण और वैश्वीकरण से उत्पन्न कई माँगों को देखा जा सकता है। जो कि ये नई माँगे इस समुदाय के विकास में बाधा के रूप में समझा जा सकता है। नई माँगों के बढ़ने के कारण इस समुदाय से 'गौण' प्रथा भी समाप्त हो गई है। गौण प्रथा के अंतर्गत लड़की की शादी के पश्चात् तीन साल या उससे अधिक भी अपने ही घर पर रहना होता था और अपने पति से मिलना भी वर्जित हुआ करता था। सकारात्मक यह है कि अब एक ही साथ उचित उम्र पर शादी सहित 'गौणा' भी करा दिए जाते हैं।

### ख. प्राकृतिक संसाधनों से अलगाव

उदारीकरण और वैश्वीकरण के कारण आदिवासी समुदाय का अलगाव जल, जंगल और जमीन से होता जा रहा है। सरकार के द्वारा कॉरपोरेट क्षेत्र को इस भाग में बढ़ावा देना आदिवासियों के लिए यह एक बड़ी समस्या है और देखा यह जा रहा है कि उद्योगों के हस्तक्षेप के कारण व वन्य विभाग के हस्तक्षेप के कारण महिलाओं को जंगल से संसाधन का उपयोग न करने देना तथा आदिवासी समुदाय को उनके

स्थान से विस्थापित किया जाना ये सभी कहीं-न-कहीं प्राकृतिक संसाधनों से दूर किया जा रहा है, उनमें स्वास्थ्य संबंधी दवाओं की निर्भरता अंग्रेजी दवाओं पर होती जा रही है। जिसकी वजह से जिन जड़ी-बूटियों से ये समुदाय दवा बनाकर अपना स्वास्थ्य उपचार करते थे, वे अब समाप्त हो रहा है और इन दोनों से जड़ी-बूटी जैसे पौधें को नष्ट करके कॉपोर्रेट संस्थाओं को लाभ होने वाले पेड़ों को लगाया जा रहा है जिनमें यूकोलिप्टस प्रमुख है। *रामचन्द्र गुहा* और *गाडगिल* के अनुसार इन क्षेत्रों में पेड़-पौधें को लगाने के लिए बाहर कम्पनियाँ फंडिंग करती है।

रामचन्द्र गुहा और गाडगिल के अनुसार 1980 से 1989 के बीच 14 राज्यों में सोशल फॉरेस्ट्री कार्यक्रमों को 994 मिलियन रुपये की मदद दी। कहीं-न-कहीं औद्योगीकरण के हस्तक्षेप यह बात स्पष्ट है कि आदिवासी समुदाय या विशेष रूप से महिलाओं का जल, जंगल और जमीन से अलग होना उन्हें एक हास्य अवस्था में ले जाता है और वे कुछ भी सोचने के लिए वे मजबूर है और उनका विकास नहीं हो पा रहा है।

## ग. आदिवासी महिलाओं का संघर्ष

आदिवासी समुदाय संघर्ष करता हुआ दिखाई पड़ता है क्योंकि ये अपने क्षेत्र में किसी भी प्रकार से कोई हस्तक्षेप नही चाहते जोकि इनके विकास पर बुरा असर डाले, हालांकि राष्ट्रीय विकास के नाम पर इन क्षेत्रों पर हस्तक्षेप की प्रवृत्ति बढ़ी है जिसमें कि आदिवासी समुदाय इसमें संघर्ष करती हुई दिखाई पड़तें हैं। उड़ीसा में नियमगिरि पर 'डुंगरिया कोंध' आदिवासी समुदायों ने वेदान्ता कम्पनी के खिलाफ आंदोलन किया जोकि वेदान्ता कम्पनी उस क्षेत्र में खनन करना चाहती थी। उन्होंने विरोध जताया कि यह उनके नियम राजा के लिए खिलाफ है। यही नहीं 2006 का *फोरेस्ट राइट एक्ट* (FRA) वन अधिनियम 2006 जोकि आदिवासियों के लिए जंगलों के संसाधनों पर कुछ महत्वपूर्ण अधिकार देता है जोकि उनकी रोजमर्रा की जिंदगी में आवश्यक हैं। लेकिन इस अधिनियम को लागू करने में वन्य विभाग के लापरवाही का पता चलता है। यूपी में महिलाओं को जलावन की लकड़ी महुआ जैसे वस्तुओं का उपभोग पर वन विभाग रोक तथा 2006 वन अधिकार अधिनियम के उल्लंघन पर अपना विरोध जताया है। कमलनयन चौबे जी ने अपनी पुस्तक *'जंगल की लकदारी : राजनीति और संघर्ष'* में इस बात की पुष्टि की है।

इन सभी बातों से यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी महिलाएँ अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही हैं लेकिन कहीं-न-कहीं उन्हें नियंत्रित करने की कोशिश की जा रही है ताकि व कुछ सोच पाने में असमर्थ रहें और उनके सोच को हास्य अवस्था में लाया जा रहा है।

इनकी सामाजिक स्थिति को समझने के पश्चात् हमें उदारीकरण के दौर में इनकी (महिलाओं) आर्थिक स्थिति की भी समीक्षा करनी होगी। उदारीकरण के दौरान

महिलाओं के आर्थिक स्थिति को मुख्य रूप से तीन बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते है।

क. प्राथमिक व्यवसायों से अलगाव

ख. उदारीकरण के दौरान प्लेसमेंट एजेंसी और महिलाओं का शोषण

ग. स्थानांतरण (Migration)

### *क. प्राथमिक व्यवसायों से अलगाव*

उदारीकरण और वैश्वीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण आदिवासी महिलाओं का अपने प्राथमिक व्यवसायों से अलगाव होता जा रहा है। वैश्वीकरण वेफ दौर में नई-नई तकनीको का आना और खनन, आदिवासी क्षेत्रों में औद्योगिक हस्तक्षेप के कारण इनका अलगाव होता जा रहा है। उदारीकरण से पूर्व महिलाएँ खेती, कटाई, बुनाई, जैसे क्रियाओं में संलग्न थी लेकिन अब इसका स्थान थ्रैशर या कटाई मशीनों ने ले लिया है। यह नहीं उदारीकरण से पूर्व यह जंगलों लकड़ी, बांस इत्यादि सामग्री लाकर हैंडीक्रॉफ्ट का कार्य करती थी जिसमें की बासकेट बनाना, चटाई बनाना, ऊनी वस्त्र बनाना और बाजार तक उन्हें पहुँचाना लेकिन नए तकनीकों के आ जाने से व जंगल में इन संसाधनों का उपभोग न करने दिए जाने के कारण ये अपने व्यवसाय से दूर हो रहे है।

### *ख. उदारीकरण के दौरान प्लेसमेंट एजेंसी और महिलाओं का शोषण*

इस उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण और आदिवासी समुदाय में गरीबी होने तथा अशिक्षित होने के कारण प्लेसमेंट एजेंसियाँ इन क्षेत्रों में जाकर इनको बहला-फुसलाकर शहरों में लाते हैं और इन्हें कम वेतन पर घरेलू कामकाज में लगा दी जातीं हैं।[9] यहाँ तक की उनका यौन-शोषण भी हो जाता है। अधिकतर मध्यप्रदेश, बिहार और झारखंड की लड़कियों को लाया जाता है और शहरों में चाय के बागानों तथा घरेलू कामकाज में लगा दिया जाता है। प्लेसमेंट एजेंसियाँ सिर्फ फोन के माध्यम से इस काम को आसानी से करती हैं। क्योंकि इनके एजेन्ट विभिन्न भागों में सक्रिय होते हैं।

इस बात से भी यही स्पष्ट होता है कि इन्हें हास्य अवस्था पर पहुँचाया जा रहा है जहाँ पर यह कुछ न कर पाने के लिए बाध्य हैं और यह भी यही स्पष्ट करता है कि इनके मस्तिष्क तथा इनकी सोच को नियंत्रित किया जा रहा है।

### *ग. स्थानांतरण (Migration)*

उदारीकरण, वैश्वीकरण तथा विकास के दौर में आदिवासी समुदाय अपने आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए संघर्ष कर रहा है। शिक्षा, बेरोजगारी और स्वास्थ्य के लिए संघर्ष करता हुआ प्रतीत हो रहा है। अपने आर्थिक हित की पूर्ति के लिए यह समुदाय तेजी से शहरों के लिए पलायन कर रहा है क्योंकि विकास के दौर में औद्योगीकरण के कारण

बदलते मौसम की वजह से इनके क्षेत्रों में कृषि उत्पादन न हो पाना एक जटिल समस्या है। जिस कारण से ये शहरों की ओर अपनी जीविकोपार्जन के लिए पलायन करते हैं तथा फैक्ट्री इत्यादि जगहों पर कार्यरत् हो जाते हैं लेकिन इन जगहों पर भी महिलाओं का शोषण ही देखने को मिलता है। हालांकि स्थानांतरण से यह सकारात्मक पहलू भी दिखाई पड़ता है कि धीरे-धीरे इनमें शिक्षा का विस्तार हो रहा है और इनकी सोच भी बदल रही है लेकिन यह न के बराबर ही है और खास करके महिलाओं की स्थिति तो पुरुषों से दयनीय है।

उदारीकरण के दौर में आदिवासी महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को समझने से यही स्पष्ट होता है कि महिलाओं की स्थिति संतोषजनक नहीं है और कहीं-न-कहीं इन सभी बातों से यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी समुदाय उपेक्षित है और कुछ ऐसे तत्व है जिनके कारण इनकी सोच को और इनकी मस्तिष्क को नियंत्रित किया जा रहा है जोकि इस समुदाय के विकास के बाधा के रूप में देखा जा सकता है।

उदारीकरण से पूर्व और उदारीकरण के दौरान महिलाओं की स्थिति को समझने के पश्चात् अब मध्यप्रदेश के संदर्भ में आदिवासी महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन आवश्यक होगा।

## मध्यप्रदेश के संदर्भ में आदिवासी महिलाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन

इसका विश्लेषणात्मक अध्ययन सामाजिक और आर्थिक इन्हीं दो बिन्दुओं के आधार पर ही समझा जा सकता है। जिसे हम 'डिंडोरी जिले' के संदर्भ में समझने का प्रयत्न करेंगे।

### *सामाजिक स्थिति*

मध्य प्रदेश का डिंडोरी जिला आदिवासी क्षेत्र कहलाता है जिसमें *बैंगा* और *गौंड* यहाँ की प्रमुख जनजातियाँ है। उदारीकरण और वैश्वीकरण का प्रभाव इस क्षेत्र पर भी आसानी से देखा जा सकता है और यहाँ की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को समझा जा सकता है। सामाजिक अवस्था को हम दो आधारों पर समझ सकते हैं –

क. सांस्कृतिक आधार

ख. प्राकृतिक के साथ इनका संबंध

### क. सांस्कृतिक आधार

सांस्कृतिक तौर पर हम इस जिले में आदिवासी समुदाय के वैवाहिक जीवन पर सीधेतौर पर उदारीकरण और वैश्वीकरण का प्रभाव देखते हैं। जिसका प्रभाव महिलाओं पर भी पड़ा है। वहाँ भी विवाह के समय दहेज की माँग में बढ़ोत्तरी हुई

है। जिस कारण से यहाँ के लोग अपने मेहनत कर पैसा इक्ठ्ठा करके इन माँगों को पूरा करते हैं और दहेज में मोटर साईकिल, टी.वी. जैसे नई चीजों की पूर्ति करते हैं यह भी उनके विकास का गतिरोध है। हालाँकि वहाँ भी गौणा और शादी एक साथ ही कर दी जाती है और धार्मिक कार्यों में भी यहाँ की महिलाएँ बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती हैं लेकिन उदारीकरण के दौर में इस चीज में कमी आई है। जहाँ सारी महिलाएँ किसी एक स्थान पर इक्ठ्ठे होकर अपने धार्मिक कार्यों को अंजाम देती थीं। अब सभी अपनी आजीविका के लिए इससे संबंधित कार्यों पर ध्यान देती हैं।

### ख. प्राकृतिक के साथ इनका संबंध

विस्थापन एक ऐसी समस्या है जिस कारण से महिलाओं पर इसका बुरा असर पड़ा है और प्रकृति से इनका जुड़ाव कम होता जा रहा है। उदाहरण के लिए डिंडोरी जिले के 'बेलगांव' व 'डोंडा' गाँवों के बीच 'बीलगरा' बाँध अभी हाल ही में बनने से कई आदिवासी परिवारों को अपने स्थान से विस्थापित होना पड़ा है। जिस कारण से उनका जुड़ाव कम होता जा रहा है। वे स्वास्थ्य संबंधी जड़ी-बूटियों का उपयोग भी नहीं कर पा रहे हैं। आधुनिक दवाईयों पर उनकी निर्भरता होती जा रही है। विस्थापन से उनके स्वास्थ्य में भी परेशानी आ रही है और कई आदिवासी जिनकी जमीन बाँध में चली गई उस परिवार के आदिवासी व महिलाएँ दूसरों के खेत पर मजदूर बनकर कार्य कर रही है। यहाँ तक कि उन्हें उचित मुआवजा भी नहीं दिया गया है और कुछ परिवारों को तो बिल्कुल भी सहायता नहीं मिली और जिस परिवार में महिलाएँ अकेली हैं वे इसके लिए दौड़-धूप भी नहीं कर सकती। यही नहीं यहाँ पर निरक्षरता एक बड़ी समस्या है जिस कारण अधिकारियों से बात करने में भी समस्या उत्पन्न होती है। इस बात से यही कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में विस्थापन की समस्या एक जटिल समस्या है जिस कारण से लोगों का प्रकृति से जुड़ाव कम होता जा रहा है। अधिकतर इसमें यह देखा गया है कि अधिकारी वर्ग भी इनका शोषण करने से पीछे नहीं है।

## आर्थिक स्थिति

इस क्षेत्र में आर्थिक स्थिति को भी तीन पहलुओं पर समझा जा सकता है। एक व्यावसायिक निर्भरता और दूसरा स्थानांतरण।

### क. व्यावसायिक निर्भरता

इस क्षेत्र में महिलाओं की आर्थिक स्थिति दिन-प्रतिदिन दयनीय होती जा रही है, जहाँ उदारीकरण से पूर्व महिलाओं की निर्भरता कटाई, बुनाई या जंगलों के साधनों पर टिकी हुई थी। धीरे-धीरे से इसका खात्मा हुआ है और कटाई, बुनाई का स्थान तकनीकी मशीनों ने ले लिया है और जंगलों पर जाने से रोक पाना यह भी उनके

आर्थिक हितों को नुकसान पहुँचाया है। वन अधिकार नियम 2006 के बारे में *आर. वेंकट रामानुजम* ने अपने लेख 'मध्य प्रदेश के बैगा चक में वन अधिकार' अधिनियम के बारे में बताया है कि यहाँ पर यह अधिनियम लागू किया गया लेकिन वन विभाग ने इसका उल्लंघन किया और इस क्षेत्र से दवाओं और फलों के वृक्षों को तेजी से काटा जा रहा है और वहाँ से जो भी हरा-भरा था उसे खत्म किया जा रहा है जिससे वहाँ सूखे की स्थिति बनती जा रही है और आध जंगल खत्म कर दिया गया है।[10] यही नहीं यहाँ पर एनजीओ और आदिवासी संगठन अपना कार्य नहीं कर रही है जिस कारण से इन क्षेत्रों की दयनीय स्थिति बनी हुई है। इस बात से भी यही स्पष्ट होता है कि आदिवासी समुदाय को किसी-न-किसी प्रकार से दबाने का प्रयास किया जा रहा है। देखा यह जा रहा है कि जब ये अपने प्राथमिक व्यवसायों से अलग होते जा रहे हैं तो जिस घर में महिला अकेली है, वह सोचने के लिए विवश है और वे अपने बच्चों को शिक्षित भी नहीं कर पा रही है और छोटी उम्र से ही उन्हें कम दाम पर चरवाहा के रूप में काम कराया जा रहा है जहाँ पर उन बच्चों को तीन सौ और चार सौ रुपये महीने के हिसाब से काम कराया जा रहा है और कई बार चराने के दौरान परेशानी आने के कारण इन्हें फटकार भी सुननी पड़ती है जैसे दूसरे के खेत में मवेशियों का प्रवेश कर जाना, जिन कारणों से इन्हें फटकार लगाई जाती है और ये कुछ न सोच पाने के लिए मजबूर हैं।

### ख. स्थानांतरण (Migration)

यहाँ पर गरीबी एक बड़ी समस्या है जिस कारण से लोग मजदूरी के लिए दूसरे स्थानों पर पलायन करते हैं जिसमें महिलाएँ भी शामिल होती हैं क्योंकि यहाँ पर धीरे-धीरे से सारे काम खत्म होते जा रहे हैं। हालाँकि ये अप्रशिक्षित मजदूर होते हैं और कम दाम पर ही दैनिक मजदूरी पर बाहर जाकर कार्य करते हैं। इनकी आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण जिन दूसरे समुदायों के पास या जमीन है या फिर आर्थिक रूप से मजबूत हैं तो उनके द्वारा इन्हें उपेक्षित ही देखा जाता है और इनकी मजबूरी का फायदा उठाया जाता है तथा इनके सोच और मस्तिष्क पर नियंत्रण करने की कोशिश की जाती है ताकि ये इनके खिलाफ कुछ कर न सकें।

### ग. महिलाओं की घरेलू आर्थिक समस्या

वैसे तो महिलाओं की विभिन्न प्रकार की आर्थिक समस्याएँ होती हैं लेकिन हमें आज के बदलते स्वरूप में यह जानने की कोशिश करनी चाहिए कि मुख्य समस्याएँ क्या हैं हालांकि महिलाओं की आर्थिक समस्या को हम एक योजना के द्वारा समझने का प्रयास करेंगे।

1 मई 2016 को उज्ज्वला योजना शुरू की गई जोकि एक सकारात्मक पहल के

रूप में देखा गया है लेकिन मध्य प्रदेश के डिंडोरी जिले के आदिवासी समुदाय पर इसका क्या असर है यह जानना आवश्यक है। उज्ज्वला योजना के अन्तर्गत सभी को मुफ़्त गैस सिलेंडर प्रदान किए गए परन्तु देखा यह जा रहा है कि कई समुदाय ऐसे हैं जिनके पास गैस भरवाने के लिए पैसा नहीं होता और ये लकड़ी पर ही निर्भर होते हैं और जंगल जाते हैं लेकिन उन्हें वहाँ पर लकड़ी लाने से रोका जाता है यही नहीं दूसरी समस्या यह भी है कि गैस एजेंसियाँ दूर होने के कारण उन्हें एजेंसी तक पहुँचने के लिए अन्य वाहनों का सहारा लेना पड़ता है जिसका अतिरिक्त आर्थिक बोझ भी उन पर पड़ता है और इन समस्याओं का सीधेतौर पर महिलाएँ ही सामना करती हैं क्योंकि अधिकतर महिलाएँ ही दैनिक मजदूरी पर निर्भर होती है और घरेलू कार्य में लगी रहती है। आर्थिक समस्या के साथ-साथ महिलाओं को गैस सिलेन्डर से संबंधित कई अन्य समस्याओं से भी जूझना पड़ता है। इसलिए आवश्यक यह है कि सरकार को कोई भी योजना प्रारंभ करने से पूर्व उस क्षेत्र की स्थिति को सही ढंग से समझने का प्रयास किया जाना चाहिए।

## निष्कर्ष

इन सभी पहलुओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 1990 के पश्चात् उदारीकरण, निजीकरण व वैश्वीकरण के कारण हुए बदलावों से आदिवासी समुदाय व विशेष रूप से इस समुदाय की महिलाओं पर नकारात्मक असर पड़ा है। हालांकि महत्वपूर्ण है कि इन्हें समाज की मुख्यधारा में लाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए जिससे की इनको सामाजिक न्याय मिल सके और इनका सतत-पोषणीय विकास हो सके लेकिन सरकार के द्वारा कॉपोर्रेट क्षेत्र को बढ़ावा देना तथा आर्थिक पूँजीपतियों के द्वारा इनकी क्षेत्र में हस्तक्षेप करना और इनके आजीविका पर नकारात्मक प्रभाव डालना और इन्हें कुछ और न करने दिया जाना कहीं-न-कहीं इनकी सोच और मानसिकता पर सरकार तथा पूँजीपतियों का नियंत्रण होता जा रहा है और वे आदिवासी समुदाय का सकारात्मक स्वतंत्रता को सीमित किया जा रहा है। इनके विकास में यह एक बाधा के रूप में देखा जा सकता है। आवश्यकता यह है कि सरकार को आदिवासी समुदायों के लिए कुछ ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है ताकि देश के विकास के साथ-साथ इस तरह के समुदायों का विकास भी संभव हो सके और इनकी सामाजिक और आर्थिक मूल्यों की रक्षा हो सके।

## संदर्भ

1. Sharma, Mittal, S.P.A.C. 1998. The Tribal Women in India, New Delhi : Radha Publication, V-II, pp.17.
2. Sharma, Mittal, S.P.A.C. 1998. The Tribal Women in India, New Delhi : Radha Publication, V-II, pp.30-34.

3. Women and Environment in the Third World, Irene Dankelman John, Davidson.
4. Sharma, S.P., Mittal A.C., 1988. The Tribal Women in India, New Delhi, Radha Publication, VII, pp. 80-116.
5. Sharma, Mittal, S.P.A.C. 1998. The Tribal Women in India, New Delhi : Radha Publication, V-II, pp.200-202.
6. Sharma, Mittal, S.P.A.C. 1998. The Tribal Women in India, New Delhi : Radha Publication, V-II, pp.231-233.
7. Sah Mihir : Economic and Political Weekly, Vol. 40, Nov. 26, Dec. 2005, Ecology, Exclusion and Reform in Madhya Pradesh.
8. Basu, Ashok, R. 1985, Tribal Development Programmes and Administration India, New Delhi : NBO Publication, 00. 87-139.
9. Basu, Ashok, R. 1985, Tribal Development Programme and Administration in India, pp. 204-224.
10. Radhakrishnan, Meena, 2016. First Citizens : Studies on Adivasis Tribals and Indigenous People in India, New Delhi : Oxford University Press, pp. 1-5.
11. Radhakrishnan, Meena, 2016. First Citizens : Studies on Adivasis Tribals and Indigenous People in India, New Delhi : Oxford University Press, pp. 53-60.
12. Radhakrishnan, Meena, 2016. First Citizens : Studies on Adivasis Tribals and Indigenous People in India, New Delhi : Oxford University Press, pp. 207-211.
13. Radhakrishnan, Meena, 2016. First Citizens : Studies on Adivasis Tribals and Indigenous People in India, New Delhi : Oxford University Press, pp. 235-239.
14. Rathnaiah, E.V. 1977. Structural Constraints in Tribal Education : A Regional Study, New Delhi, Sterling Publication Pvt. Ltd.
15. Article : Economic and Political Weekly, June, 2017, Forest Rights in Baiga chak, Madhya Pradesh.
16. Patel Jasbhai, Economic and Political Weekly, Vol. 29, (July 23, 1994), Is National Interest Being Served by Narmada Project.
17. M.N. Buch, India International Center Quarterly, Vol. 17 (Monsoon 1940). The Madhya Pradesh Forest Their Degradation and its implications.

## संदर्भ सूची

[1] चौबे, कमल नयन, 2015, जंगल की हकदारी : राजनीति और संघर्ष, पृ. 77.

[2] देखें, जंगल की हकदारी : राजनीति और संघर्ष, पृ. 72.

[3] Rathnaiah, E.V. 1977, Structural Constraints in Tribal Education, pp. 108-115.

[4] चौबे, कमल नयन, 2015, जंगल की हकदारी : राजनीति और संघर्ष, पृ. 56-60.

[5] देखें, जंगल की हकदारी : राजनीति और संघर्ष, पृ. 94-95

[6] Article : Economic and Political Weekly, July 1994, Is National Interest Being Served by Narmada Project.

[7] Sharma, S.P., Mittal, A.C., Tribal Women in India, pp. 98-101.

[8] देखें, Tribal Women in India, pp. 128-129.

[9] Radhakrishna, Meena (2016), First Citizens Studies as Adivasi Tribals and Indigeneous Peoples in India, pp. 235-239.

[10] Article : Economic and Political Weekly, June 2017, Forest Rights in Baiga Chak, Madhya Pradesh.

# लोकनीति एवं नीति निर्मात्री संस्थाएँ

## अम्बुजेश कुमार मिश्र

***lkjk'k*** *प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य 'लोकनीति और नीति निर्मात्री संस्थाओं का सारगर्भित विश्लेषण प्रस्तुत करना है। लोक नीतियाँ सरकार के सदृश ही प्राचीन हैं। अतीत में सरकार का स्वरूप जो भी रहा हो, जब और जहाँ जैसी भी सरकारें रही हैं, वहाँ लोक नीतियों का निर्माण और क्रियान्वयन हुआ है। जनता की विभिन्न माँगों और समस्याओं के समाधान के लिये सरकार जो नीतियाँ बनाती है उन्हें लोकनीति कहा जाता है। लोकनीति वह दिशा -निर्देश पत्र होता है जो सरकार के कार्यों तथा कार्यक्रमों को एक निश्चित दिशा प्रदान करती है। लोकनीति और लोक प्रशासन का घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा लोकनीति निर्माण लोक प्रशासन का सार हैं। लोकनीति का निर्धारण, निर्माण, क्रियान्वयन, मूल्यांकन एवं संशोधन का कार्य लोक प्रशासन द्वारा ही किया जाता है। यद्यपि लोकनीतियाँ सरकारी निकायों द्वारा विकसित की जाती हैं, परन्तु गैर -सरकारी लोग और संस्थाएँ भी नीति निर्माण प्रक्रिया पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डाल सकती हैं। लोकनीति एक ऐसे ढाँचे का निर्धारण करती है जिसके अन्तर्गत संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है। अतः लोकनीति का निर्माण सरकार की सबसे महत्वपूर्ण गतिविधि है क्योंकि यह संपूर्ण राष्ट्र के नागरिकों के जीवन को प्रभावित करती है। इनके निर्माण में जिन सरकारी गैर -सरकारी संरचनाओं का योगदान होता है उनमें प्रमुख रूप से प्राधिकारी गण, विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका, वृद्ध जन, सर्वोच्च प्रधान, प्रशासक, पार्षद, अधिपति और इसी प्रकार के अन्य लोग सम्मिलित हैं।*

### प्रस्तावना

कोई भी संगठन चाहे वह निजी क्षेत्र का हो अथवा सार्वजनिक क्षेत्र का उसे कोई भी कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व नीति का निर्माण करना आवश्यक होता है। नीति का अर्थ यह निर्णय करना है कि क्या किया जाये, कैसे किया जाये, कब किया जाये और कहाँ किया जाये। किसी भी प्रबन्ध व्यवस्था के लिये ऐसा करना अति आवश्यक होता है। किसी भी संगठन के लक्ष्यों को जो प्रायः सामान्य तथा अस्पष्ट होते हैं उन्हें

नीति के मुद्दों में सुस्पष्ट किया जाता है और वे ही प्रशासन के पहियों को गति प्रदान करते हैं। हर नीति में निर्णय निर्माण करने की प्रक्रिया होती है परन्तु प्रत्येक निर्णय नीति नहीं होता है। प्रायः प्रशासन अपने दैनिक चर्या के कार्यों के निर्वहन में नीति के भीतर रहकर ही निर्णय करते हैं। अतः नीति सम्बन्धी निर्णय प्रशासनिक कार्य के मार्गों को निर्देशन की भावना प्रदान करते हैं। नीति निर्धारण सरकार का एक महत्वपूर्ण कार्य है।

लोक नीतियाँ सरकारी निकायों एवं सरकारी अधिकारियों के द्वारा विकसित की जाती हैं। लोकनीति वह दिशा निर्देश पत्र होता है जो सरकारी कार्यों तथा कार्यक्रमों को एक निश्चित दिशा प्रदान करता है। लोकनीति की आवश्यकता सदैव विद्यमान रही है। राजशाही शासन व्यवस्थाओं में भी राजपुरोहित, धर्मगुरू, सेनापति तथा मंत्रिपरिषद् के अन्य सदस्य सम्राट को लोकनीति से सम्बन्धित परामर्श प्रदान किया करते थे। कौटिल्य का अर्थशास्त्र भी विभिन्न विषयों पर राज्य की व्यावहारिक नीतियों की अनुशंसा करता है। लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार तथा लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा की लोकप्रियता के पश्चात् अब लोकनीति के निर्माण तथा सफल क्रियान्वयन पर बल दिया जाने लगा है। वास्तव में जनता की विविध माँगे और कठिनाइयों का सामना कर सकने के लिये सरकार के द्वारा अनेकानेक नीतियों का निर्माण करना होता है, जिन्हें हम लोक नीतियाँ कहते हैं। लोक प्रशासन के सुप्रसिद्ध विद्वान एल.डी. ह्वाइट, सार्वजनिक नीतियों को व्यावहारिक धरातल पर मूर्त रूप देने वाले विषय के रूप में लोक प्रशासन को परिभाषित करते हैं, क्योंकि लोकनीति ही सरकारी कृत्यों का केन्द्र बिन्दु है।[1]

वर्तमान में नीति का अर्थ ''उन उठने वाली माँगों, इच्छाओं एवं निर्णयों से है जो कि राजनीति द्वारा निर्धारित मूल्यों एवं मानदण्डों में व्याप्त है तथा नीति के परिणामों से मूल्यों एवं मानदण्डों को समयानुसार परिवर्तित करते रहते हैं''। वुडरो विल्सन का मानना है कि ''नीति निर्माण एक राजनीतिक कार्य है जबकि प्रशासन तो नीति का क्रियान्वयनकर्त्ता है। प्रशासन का क्षेत्र व्यापक है। यह राजनीति की हड़बड़ी तथा कलह से अलग होता है''।[2] मार्शल ने कहा है, ''यह सचेतन रूप से स्वीकृत आचरण की संहिता है जो प्रशासनिक निर्णयों का दिशा-निर्देश करती है''।[3] कार्ल जे. फ्रेडरिक का कहना है ''लोकनीति निश्चित वातावरण के अन्तर्गत एक व्यक्ति समूह या सरकार की क्रियाविधि की प्रस्तावित प्रक्रिया है जिसमें अवसर या अवरोध आते हैं, जिन्हें नीति एवं लक्ष्य पूर्ति प्रक्रिया के प्रयत्न स्वरूप प्रयुक्त करती है या दूर करती है''।[4] थॉमस आर. डाई का मानना है ''लोकनीति वह है जिस पर सरकार करने अथवा न करने का निश्चय करती है''।[5] डिमॉक्स का कहना है कि– ''नीतियाँ व्यवहार के वे नियम हैं जिन्हें सचेत रूप से मान्यता प्राप्त है और जो प्रशासनिक निर्णयों का मार्गदर्शन करते हैं''।[6] जेम्स एण्डरसन कहते हैं कि ''किसी कार्यकर्त्ताओं के समूह द्वारा किसी समस्या अथवा चिन्ताजनक विषय से निपटते हुए कार्य का उद्देश्यपूर्ण मार्ग है''।[7] इसी प्रकार ड्रोर ने

नीतियों को कार्यवाही की मुख्य रेखाओं का अनुसरण करने के लिये सामान्य निर्देश के रूप में माना है।[8] एपलबी के अनुसार ''जन प्रशासन का सार नीति निर्माण है'' ।[9]

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सामान्य रूप से लोकनीति सरकार द्वारा किये गये निर्णयों का प्रतिफल होती हैं। निम्नलिखित सूत्र लोक नीति की प्रकृति को अत्यधिक स्पष्ट रूप से बोध कराते हैं –

1. लोक नीतियाँ लक्ष्योन्मुख होती हैं जिनका निर्माण और क्रियान्वयन जनता के हित के लिये सरकार के विचाराधीन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया जाता है।
2. ये सरकारी निकायों एवं सरकारी अधिकारियों के द्वारा विकसित एवं निर्मित की जाती हैं यद्यपि गैर-सरकारी संस्थाएँ भी इस प्रक्रिया को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं।
3. लोकनीति वह है जो सरकार वास्तव में करती है न कि वह क्या करना चाहती है।
4. यह सकारात्मक व नकारात्मक दोनों स्वरूपों में हो सकती हैं।
5. लोकनीति कानूनी है इसलिये बन्धनकारी हो सकती है।

नीति कोई स्थित वस्तु नहीं है और न ही यह स्थायी होती हैं। यह गतिमान है और निरन्तर परिवर्तित होने की इसमें सतत् प्रवृत्ति होती है। जब उद्देश्य बदलते है तो पर्यावरणों में परिवर्तन होता है तथा परिस्थितियों में भिन्नता आती है, तो उसी के अनुरूप नीति का निर्धारण किया जाता है। सेक्लर हडसन के शब्दों में ''प्रत्येक देश में नीति प्रतिपादन का निर्धारण सभी प्रकार के तरीकों से सभी प्रकार की वस्तु सामग्रियों द्वारा अनुकूलित करके किया जाता है।[10] नीति निर्धारण एक निरन्तर चलने वाला दायित्व है और अनुभव के प्रकाश में नीति का पुनर्निर्धारण उतना ही महत्वपूर्ण है जितना प्रथम बार में उसका निर्धारण।[11] नीति निर्माताओं द्वारा नीतियों का निर्धारण करते समय अनेक तत्वों को ध्यान में रखना पड़ता है। साथ ही समाज में विविध प्रकार के असंख्य दबाव डालने वाले समूह होते हैं जो नीतियों को अपने हितों के अनुरूप ढालने का निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि नीति सदैव ही अधिकाधिक व्यक्तियों के सामूहिक प्रयत्न का फल होती है।

एक क्रिया के रूप में नीति निर्माण एक जटिल प्रक्रिया है। यद्यपि वैधानिक रूप से एक या अधिक इकाइयों को नीति निर्माण का अधिकारी बनाया जाता है, परन्तु वास्तव में कई घटक इस प्रक्रिया में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से भाग लेते हैं। इस प्रकार नीति निर्माण में भाग लेने वाले विभिन्न घटकों को दो वर्गों में रखा जा सकता है:–

1. सरकारी अथवा संवैधानिक घटक या इकाइयाँ अथवा संरचनाएँ
2. गैर सरकारी अथवा संविधान के अतिरिक्त घटक या इकाइयाँ अथवा संरचनाएँ

**1- ljdkjh uhfr-fuekZ=h lajpuk,¡ %** सरकारी नीति निर्माण वे लोग हैं जिन्हें जननीति सूत्रबद्ध करने का वैधानिक अधिकार प्राप्त है, इनमें विधानमण्डल, कार्यपालिका, प्रशासकीय इकाइयाँ और न्यायपालिका को शामिल किया जाता है।

(i) *विधानमण्डल :* औपचारिक रूप से नियम बनाने का कार्य विधानमण्डल ही करते हैं। आवश्यक रूप से इनका तात्पर्य यह नहीं है कि उनके पास स्वतंत्र निर्णय करने की शक्तियाँ होती है या वास्वत में वे ही सरकारी नीति का निर्माण करते हैं। प्रायः यह कहा जाता है कि ब्रिटेन व भारतीय विध ानमण्डल द्वारा उन्हीं नीतियों का निर्माण किया जाता है जिनका प्रारम्भ राजनीतिक दलों व दवाब समूहों द्वारा होता है और जिसका प्रारूप अधिकारी तंत्र द्वारा तैयार होता है। अमेरिका में विधानमण्डल ही नीति निर्माण के सम्बन्ध में अंतिम निर्णय लेता है। वस्तुतः अधिनायक देशों की अपेक्षा लोकतांत्रिक देशों में किये जाने वाले नीति निर्माण में विधानमण्डल अधिक महत्वपूर्ण होते हैं।

(ii) *कार्यपालिका* : वर्तमान युग 'कार्यपालिका केन्द्रित युग' है, जहाँ सरकारें नीति-निर्माण और उसके क्रियान्वयन में अधिकाधिक रूप में कार्यकारी नेतृत्व पर निर्भर करती हैं। संसदीय पद्धति वाले देशों में सभी नीतियों को मंत्रिमण्डल का अनुमोदन प्राप्त करना पड़ता है और संसद में समस्त महत्वपूर्ण नियम सरकार के मंत्रियों द्वारा ही प्रस्तुत किये जाते है। विकसित देशों की अपेक्षा विकासशील देशों में सम्भवतः कार्यपालिका का नीति निर्माण में अधिक हाथ रहता है। भारत में कैबिनेट संवैधानिक व्यवस्था की केन्द्रीय इकाई है और कैबिनेट के सदस्य निकटतम या प्रत्यक्ष नीति निर्माता होते है। मंत्रिमण्डल में स्वयं प्रधानमंत्री नीति निर्माण में अधिक शक्तिशाली प्रभाव रखता है। जवाहरलाल नेहरू के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे कैबिनेट की बैठक के पूर्व ही निर्णय करके आते थे। बैठक में सबकी सुनते थे, पर करते वही थे जो पूर्ववत निर्णय करके आते थे।[12]

(iii) *प्रशासनिक इकाइयाँ* % सैद्धान्तिक रूप से नागरिक सेवकों को मंत्रियों द्वारा लिये गये निर्णयों को क्रियान्वित करने के लिये और उन्हें सहायता करने के लिये ही भर्ती किया जाता है, परन्तु व्यवहार में ये लोक सेवक नीति निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं। आर.के. सप्रू का मानना है कि प्रशासकों जो

कि केवल साधनों के प्रति ही नहीं बल्कि उद्देश्यों के प्रति भी उन्मुख होते हैं उन्हें नीति निर्माण प्रक्रिया में तार्किक तत्व प्रदान करने के लिये आमंत्रित किया जाता है और वे अपने विशेष ज्ञान और अनुभव के आधार पर इनके चयन में सहायता पहुँचाते हैं।

(iv) *न्यायपालिका* % जिन देशों में न्यायालय को 'न्यायिक समीक्षा' की शक्ति प्राप्त होती है वे नीति निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस शक्ति द्वारा वह विभिन्न क्षेत्रों में नीति सम्बन्धी मुद्दों को प्रभावित करती हैं। 'जनहित न्यायिक याचिकाओं' (Public Intrest Litigation) ने सामाजिक आर्थिक क्षेत्रों में सरकारों को नीतिगत मार्गदर्शन ही प्रदान नहीं किया है बल्कि जहाँ सरकार किसी विशेष नीति को क्रियान्वित करने में असफल रही है, उसको शक्ति के साथ अनुपालन कराने के लिये कड़े निर्देश भी दिये हैं। भारत में सेवाओं में संरक्षण, शाहबानों केस, पर्यावरण प्रदूषण, बालश्रम जैसे मामलों में दिये गये न्यायिक निर्णय उल्लेखनीय हैं। भारत व अमेरिका में तो न्यायपालिका को संविधान की सुरक्षा, विधि संरूपण की शक्ति के साथ-साथ उसकी व्याख्या करने की शक्ति भी उसे प्राप्त है।

**2- xj-ljdkjh uhfr fuekZ=h lajpuk,¡** % इनमें प्रमुख रूप से – राजनीतिक दल, दबाव समूह, स्वतंत्र नागरिकों, मतदाताओं, जनसंचार माध्यम, सामाजिक आन्दोलन की भूमिका, नीति निर्माण प्रक्रिया को पर्याप्त रूप से प्रभावित करते हैं।

(i) *राजनीतिक दल* % आधुनिक समाज में सामान्यतया राजनीतिक दल भी नीति निर्माण के प्रमुख माध्यम हैं। चुनाव के समय जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिये चुनाव घोषणा पत्र जारी करते हैं। जिनमें उनके भावी कार्यक्रमों एवं नीतियों की रूपरेखा होती है। चुनाव में विजयी दल अपने कार्यक्रम को क्रियान्वित करने के लिये प्रतिबद्ध होते हैं अतः सरकार के निर्माण द्वारा और विधायिका में अपने बहुमत द्वारा अपने घोषणा पत्र को लोक नीतियों के रूप में साकार करते हैं अतः लोकनीति एक प्रकार से दलीय नीति ही होती है।

(ii) *दबाव समूह* % आधुनिक समाज में दबाव समूह, लगभग सभी देशों में नीति निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये समूह सरकारी अंगों के साथ-साथ जनमत को संगठित करके लोक नीतियों पर प्रभाव डालते हैं। साथ ही जब विधायिका किसी विधि प्रस्ताव के सम्बन्ध में जनता से परामर्श माँगती है तो सुझाव पत्र प्रस्तुत करने के लिये आग्रह करती है ऐसे में अधिकांशतः संबंधित दबाव समूहों से ही सुझाव प्रस्तुत किये जाते हैं। दबाव समूहों के प्रतिनिधियों को संबंधित मंत्रिमण्डल समितियों में भी विशेष रूप से आमंत्रित किया जाता है।

(iii) *नागरिक और मतदाता* ⅋ चूँकि लोकतांत्रिक सरकारें प्रतिनिध्यात्मक सरकारें होती हैं अतः यह कहा जाता है कि नागरिक समस्त नीति निर्माण प्रक्रिया में अप्रत्यक्ष रूप से भाग लेता हैं। वयस्क नागरिक, मुख्य रूप से अपने मताधिकार का प्रयोग कर विभिन्न दलों में से जब एक दल का चयन करते हैं तो निश्चय ही यह चयन प्रत्यक्ष रूप से विशेष नीति समूह का ही होता है जोकि इस दल के चुनावी घोषणा पत्र द्वारा अधिसूचित की जाती है। जॉन स्टुअर्ट मिल ने तो 'जनता को मालिक' के रूप में माना है। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में सरकार किसी भी नीति का निर्धारण करने से पूर्व जनता की अभिरूचि जानने की कोशिश करती है। भारत में भी सरकार इस संबंध में संचार माध्यमों के द्वारा जनता में प्रसारित करती है और उनकी राय जानना चाहती है इस संबंध में सार्थक पहल तभी हो सकती है जब जनता जागरूक एवं सक्रिय हो और उसके सम्बन्ध में रूचि रखती हों। प्रजातांत्रिक देशों में जनमत का अनुमान लगाने का प्रमुख साधन चुनाव ही होते हैं जैसा कि चार्ल्स लिंडव्लाम ने अपने तर्क सारांश प्रस्तुत किया है– ''अधिनायकवादी और प्रजातांत्रिक शासनों में सर्वाधिक सुस्पष्ट अन्तर यह है कि प्रजातांत्रिक देशों में सर्वोच्च नीति निर्माताओं का चयन प्रमाणिक निर्वाचन के द्वारा किया जाता है।[13]

(iv) *जनसंचार माध्यम* ⅋ इसके अन्तर्गत समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, रेडियो, टेलीविजन, इण्टरनेट, सोशल मीडिया, एक जगह की सूचना दूसरे जगह तथा अधिकाधिक सूचनाएँ जनता तक पहुँचाने का कार्य करते हैं। साथ ही ये विभिन्न वर्गों, समूहों, समुदायों, संगठनों की वास्तविक जनजीवन की समस्याओं आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं को प्रतिबिम्बित करते हैं। जिससे सरकारी नीति निर्माण प्रक्रिया प्रभावित होती है। जनसंचार माध्यम सरकारी नीतियों पर क्रिया व प्रतिक्रिया व्यक्त कर उनसे सम्बन्धित सुझाव भी प्रस्तुत करते हैं।

(v) *सामाजिक आन्दोलन की भूमिकाः* आधुनिक समाज में सामाजिक आन्दोलन भी नीति निर्माण प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं, उन्हें परिवर्तन के साथ-साथ नित नयी नीति निर्मित करने के लिये बाध्य करते हैं।

## निष्कर्ष

उपरोक्त तथ्यों से यह नितान्त स्पष्ट है कि लोकनीति और लोक प्रशासन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह अपने पर्यावरण को प्रभावित करती है तथा पर्यावरण से प्रभावित होती है। यह व्यावहारिक समस्याओं का समाधान कर राजनीतिक संवाद को प्राप्त करने तथा राजनीतिक जागरूकता के स्तर को ऊँचा उठाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। लोकनीति के निर्माण में उपरोक्त संस्थाएँ सहयोगी की भूमिका निभाती हैं। इन संस्थाओं के अभाव में हम इन नीतियों का न तो निर्धारण कर सकते हैं, न ही निर्माण कर सकते हैं और न ही उन्हें क्रियान्वित कर इनसे जन समूह को

लाभान्वित कर सकते हैं। किसी भी देश अथवा समाज के सर्वांगीण विकास में लोकनीति और नीति निर्माण संस्थाओं का बहुमूल्य योगदान होता है जिनके अभाव में कोई भी शासन व्यवस्था अपने आदर्श लक्ष्यों की प्राप्त नहीं कर सकता। यही वजह है कि आज के वर्तमान परिदृश्य में तीसरी दुनिया के अधिकांश देश अपनी अर्थव्यवस्था, अपनी सामाजिक व्यवस्था में वृद्धि तथा राष्ट्रीय विकास के वृहद लक्ष्य को प्राप्त करने के साथ-साथ अपनी राजनीतिक क्षमता में वृद्धि करने के लिये लोकनीति के अध्ययन, निध ार्रण, निर्माण एवं सफल क्रियान्वयन पर बल दे रहे हैं। अतः स्पष्ट है कि सुदृढ़ लोकनीति और कुशल नीति निर्माण संस्थाएँ ही लोक प्रशासन का सार तत्व है। यदि इन संस्थाओं का स्तर नैतिक, कुशल, उच्च एवं अनुभवी होगा तो निश्चित रूप से श्रेष्ठ, मूल्यवान लोकनीति का निर्माण होगा और ये लोकनीति लोक प्रशासन के माध्यम से शासन को सकारात्मक दिशा की तरफ ले जायेंगे।

## सन्दर्भ

1. सुरेन्द्र कटारिया, तुलनात्मक लोक प्रशासन, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 2001, पृ.-159
2. वही, पृ.-158
3. Dimock and Dimock, Public Administration, Rinehart and Co. New Yark, 1936, P.82
4. Carl. J. Friedrich, Man and His Government, McGraw.Hill, New Year, 1963
5. Thomas R. Day, Understanding, Public Policy, Prentic Hall, Englawood Cliffs, 1978
6. एम.पी. शर्मा, बी.एल. सडाना, लोक प्रशासनः सिद्धान्त एवं व्यवहार, किताब महल, इलाहाबाद, 2011, पृ.-558
7. James, E. Anderson, Public Policy Making, Prager, New Yark, 1975
8. Y. Dror, Public Policy Making, Re examined Scranton, Penorylvania, 1968
9. रूमकी बसु, लोक प्रशासनः संकल्पनाएँ एवं सिद्धान्त, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 1999, पृ.-461
10. Seckler Hudson, Organisation and Management : Theory and Practice, The American University Press, Washington, 1957, P.71
11. अवस्थी एवं माहेश्वरी, लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, आगरा, 2011, पृ.-771
12. इन्द्रजीत कौर, लोक प्रशासन, एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस, आगरा, 2017, पृ.-279
13. Charles E. Lindbolm, "The Science of Muddling Through" in Public Administration Review, 19, No. 2, (Spring 1959), PP.79-88

# सुशासन और लोकनीति

## महेश कुमार सिंह

***lkjk'k*** *प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य 'सुशासन और लोकनीति' का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत करना है। सुशासन और लोकनीति वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में विकास के निर्णायक एवं अनिवार्य घटक के रूप में विद्यमान है। ऐसे शासन का अभिप्राय सुशासन से होता है, जो जनता की अपेक्षाओं की कसौटी पर खरा उतरता हो, जिसमें कार्यकुशलता व प्रभावशीलता विद्यमान हो। सुशासन का प्रत्यक्ष सम्बन्ध किसी भी शासन प्रणाली के स्वरूप से न होकर जनता को उपलब्ध कराये जाने वाली गुणवत्तायुक्त संसाधनों, सेवाओं व सुविधाओं से है, जिनका समुचित उपयोग करके जनता अपने सर्वतोन्नयन की ओर उन्मुख हो सके। सुशासन शासन का वह व्यावहारिक नियोजन है जिसमें शासन को आवश्यक रूप से अच्छा होना चाहिए, किन्तु इसके आदर्श एवं आनुभविक रूप से पालन बहुआयामी है। मानव अस्तित्व का शायद ही कोई पक्ष हो जो अच्छे व श्रेष्ठ शासन के उत्तरदायित्व के अन्तर्गत शामिल न हो। मूल्यों की व्यक्तिपरक प्रकृति के कारण देश, काल तथा संस्कृति के अनुसार ये परिवर्तित होते रहते हैं। वर्तमान युग में 'ई-गवर्नेंस' सुशासन की ही नूतन विशिष्टता को संजोये हुए है। आधुनिक तकनीकी युग में इण्टरनेट (सोशल मीडिया) जनता और शासन के मध्य एक 'द्वार' की भूमिका में है जिसने दोनों के मध्य 'सम्पर्क-सुविधा' मुहैया कराई है।*

### प्रस्तावना

लोकनीति ऐसी ही एक धारणा है जो दैनिक व सार्वजनिक जीवन में बहुत अधिक लोकप्रिय हो चुकी है। लोकनीति का सम्बन्ध निजी या विशुद्ध रूप से वैयक्तिक न होकर सार्वजनिक (साझा) है। लोकनीति सामान्यतया उपलब्ध परिवेश के अन्तर्गत विशिष्ट लक्ष्य या उद्देश्य प्राप्ति हेतु किसी व्यक्ति, समूह, संस्था या शासन की प्रस्तावित क्रियाविधि है। प्रत्येक संगठन चाहे वह सरकारी हो या गैर-सरकारी प्रत्येक क्रिया के पूर्व नीति निर्धारण आवश्यक होता है, जो एक ऐसे ढाँचे का निर्धारण करती है जिसके भीतर संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त किया जाता हैं। किसी भी संगठन के उद्देश्य प्रायः अस्पष्ट एवं सामान्य होते हैं, जिन्हें नीति के लक्ष्य रूप में सुनिश्चित किया

जाता है। जो प्रशासन में गतिशीलता उत्पन्न करते हैं। लोकनीति का निर्धारण सरकार का एक महत्वपूर्ण कार्य है जो लोक प्रशासन का सार है।

सुशासन अतीतकाल से ही विशद् विमर्श का विषय रहा है। पाश्चात्य विद्वान 'सद' और बद्' शासन के मूल तत्वों को समझने का गहन चिंतन प्रस्तुत करते रहे हैं। सुप्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक प्लेटो की अपनी अमर अनुकृति 'रिपब्लिक' में 'अच्छा व्यक्ति', 'अच्छा समाज तथा 'अच्छा राजा' को जानने व समझने का आत्मसंवाद तथा जिज्ञासा[1] व महाभारत के शांतिपर्व के रणक्षेत्र में मृत्यु प्रतिक्षारत शरशैय्या पर विराजमान शासन कौशल के आचार्य भीष्म पितामह और ज्येष्ठ पाण्डवपुत्र युधिष्ठिर के मध्य शासन काल पर विस्तृत संवाद 'सुशासन पर विमर्श' का उत्कृष्ट उदाहरण है। बीसवीं सदी के अन्तिम दशक से 'सुशासन' अत्यधिक प्रचलित अवधारणा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। वर्तमान समय में 'सुशासन' वैश्विक परिदृश्य में शासन की एक माँग के रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत हुआ है। आज 'सुशासन' प्रत्येक समाज का एक 'वाँछित' लक्ष्य बन चुका है। ऐसा कोई समाज नहीं है जो इसकी आवश्यकता से स्वयं को मुक्त कर सके। प्रत्येक समाज में जनता की मुख्य माँग शासन की उत्तम व्यवस्था ही होती है। शासन की प्रत्येक व्यवस्था में कुशलता, प्रभावशीलता, मितव्ययिता, नैतिकता, न्यायपूर्णता, विवेकपूर्णता एवं जनप्रियता का पुट आवश्यक रूप से परिलक्षित होना चाहिए।

वस्तुतः शासन में 'सु' उपसर्ग के संयोग से सुशासन शब्द की उत्पत्ति होती है जिसका आशय सद्, शुभ, सुन्दर, अच्छा, मंगलकारी भावों को आत्मसात करने वाला होता है। अर्थात् सुशासन समस्त जनता के हित में कार्य करने वाला शासन है। विश्व बैंक के एक दस्तावेज 'सब सहारा अफ्रीका संकट से अक्षय विकास है (Sub-Saharan Africa form crisis to Sustainable Growth)' में पहली बार शासन (Governance) शब्द का प्रयोग किया था।[2] विश्व बैंक के पूर्व अध्यक्ष कोनेबल ने 'Good Governance' शब्द की रचना की थी। उनका मानना था कि, ''सुशासन एक विश्वसनीय न्यायिक व्यवस्था तथा जनता के प्रति जवाबदेह प्रशासन था''।[3]

वर्ष 1994 में विश्व बैंक ने सुशासन के आशय को इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया था कि, ''सुशासन, भविष्यवाणी योग्य, खुला और प्रबुद्ध, नीति-निर्माण, एक नौकरशाही जो व्यावसायिक गुणों से युक्त है, एक कार्यपालिका जो अपने कार्यों में भाग लेता है। मुख्यतः ये सभी विधि सम्मत शासन में ही अपना कार्य सम्पादित करते है और अन्ततः जनभागीदारी को सुनिश्चित करते है''। इन्द्रजीत कौर के अनुसार, ''सुशासन, प्रदान की जाने वाली सेवाओं की दर, विकास के स्तर और जनसंतुष्टि की दर को प्रतिबिम्बित करता है, इन संकटों की उच्चतम् दर ही प्रशासन की सफलता का द्योतक है''।[4]

आर.के.डे. के अनुसार, ''सुशासन का अभिप्राय राज्य में लोगों के कार्यों को नियमानुसार वैधानिक सत्ता द्वारा कार्यों का संचालन करना है। लोकतंत्र में जनता की

पुनः आस्था की विद्यमानता के कारण, सुशासन को ही जनता की सरकार, जनता द्वारा और जनता के लिए कल्याण, सद्, शुभ या हित के लिए कार्य करना है''।[5] एमर्सन एवं अन्य का मानना है कि, ''सुशासन प्रजातांत्रिक ढाँचे में समर्थ एवं प्रभावशाली प्रशासन से सम्बन्धित है''।[6] रेने डिस्कोर्टेस के अनुसार, ''वह राज्य सुशासित राज्य कहलाता है, जिसमें नियम भले ही कम प्रतीत हो, किन्तु उन पर अमल शक्तिपूर्वक किया जाता हो''।

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषणात्मक अध्ययन के आधार पर अवस्थी एवं माहेश्वरी के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि, ''सुशासन, शासन का वह स्वरूप है, जो कभी लक्ष्य रूप में, कभी साधन रूप में और कभी-कभी लोकतांत्रिक निर्धारित उद्देश्य रूप में अभिव्यक्त किया जाता है''।[7] यह तथ्य स्मरणीय है कि समय के साथ ही सुशासन की परिभाषा में भी व्यापकता का पुट परिलक्षित हुआ है। वर्तमान वैश्वीकरण के युग में उसकी वैचारिक कलिष्टता का श्रीगणेश होता है जब विश्व के समृद्धशाली राष्ट्र और ईकाइयों द्वारा विकासशील देशों के विकास हेतु दी जाने वाली आर्थिक सहयोग के पूर्व ही शर्त निर्धारित की जाती है।

वस्तुतः भारत सरकार द्वारा 2001 को 'Year of E-Governance' घोषित किया गया था। आंध्रप्रदेश सरकार के 'विजन 2020' प्रालेख के सुशासन को 'SMART' के रूप में अभिव्यक्त किया गया था जिसका आशय है– सरल (Simple), नैतिक (Moral), जवाबदेह (Accountable), उत्तरदायी (Responsive) तथा पारदर्शी (Transparent)[8] सुशासन ऐसे ही शासन को अभिप्रेरित करता है जिससे जवाबदेहिता, पारदर्शिता, समानता, और लोकतंत्र की भागीदारी आदि की सम्भाव्यता हो। सुशासन जनता द्वारा सरकार के मध्य स्वस्थ एवं गुणात्मक समन्वय बनाये रखने का प्रतीक है। सुशासन को आज व्यापक रूप में परिलक्षित करने की आवश्यकता है। मात्र भारतीय प्रशासनिक सेवा से सम्बन्धित अधिकारी वर्ग ही सुशासन हेतु जवाबदेह नहीं होते वरन् इनसे अधिक जवाबदेही राजनीतिज्ञों की बनती है और साथ ही आम नागरिकों की सहभागिता से ही यह पुष्ट हो सकेगा।[9]

वर्तमान समय में वास्तविक विकास हेतु वातावरणीय तत्त्वों को एक अच्छे अभिशासन के माध्यम से ही सम्भव बनाया जा सकता है। सुशासन हेतु कतिपय आवश्यक बिन्दुओं को अग्रांकित पंक्तियों में निम्नवत् दृष्टव्य किया जा सकता है –

1. प्रभावी एवं कुशल प्रशासन।
2. नागरिकों के जीवन स्तर में सुधार।
3. संस्थाओं की वैधता सुनिश्चित करना।
4. मित्तव्ययी प्रशासन।
5. परिणामोन्मुखी प्रशासन।

6. भ्रष्टाचार से राहत दिलाने वाला प्रशासन।
7. जवाबदेही सुनिश्चित करने वाला प्रशासन।
8. सूचना एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदाता प्रशासन।
9. लोक सेवाओं की गुणवत्ता सुनिश्चित करने वाला प्रशासन।
10. कार्मिकों की उत्पादकता में वृद्धि करने वाला प्रशासन।
11. उत्तरदात्ताओं के साथ मैत्रीपूर्ण एवं नागरिकों की देखभाल करने वाला प्रशासन।
12. सत्ता के प्रयोग में स्वेच्छाचारिता से मुक्त प्रशासन।
13. ई-गवर्नेंस पर अवलम्बित नागरिक एवं सरकार को सम्मुख लाने वाला प्रशासन।

वस्तुतः सुशासन स्वच्छ, सुन्दर, स्वस्थ एवं श्रेष्ठ लोकजीवन है, जो वर्तमान युग की प्रथम किन्तु स्वाभाविक आवश्यकता है। लोकजीवन की सफल संचालन शासन द्वारा निर्मित नीति के सफल कार्यान्वयन पर अवलम्बित है। यह तथ्य स्मरणीय है कि शासन की सफलता का श्रेय उन नीतियों पर अवलम्बित है जो शासन के मार्ग दर्शक होते है। ये नीतियाँ ही करने और न करने योग्य कार्यों के मध्य अन्तर स्पष्ट करती है। नीति का सम्बन्ध मौलिक मामलों से है जबकि रीति किसी नीति को प्रभावकारी स्थिति प्रदान करने से सम्बन्धित होती है। जार्ज टैरी का इस सम्बन्ध में कथन है कि, ''नीति उस कार्यवाही की शाब्दिक, लिखित या विहित बुनियादी मार्गदर्शक है जिसे प्रबन्धक अपनाता है तथा जिसका अनुगमन करता है''। रिचर्ड रोज के शब्दों में, ''लोकनीति एक निर्णय न होकर क्रिया की एक प्रतिक्रिया या प्रतिरूप है''। कार्ल जे. फ्रेडरिक के शब्दों में, ''लोकनीति निश्चित वातावरण के अन्तर्गत एक व्यक्ति, समूह या सरकार की क्रियाविधि की प्रस्तावित प्रक्रिया है, जिसमें अवसर या अवरोध आते है। जिन्हें नीति एवं लक्ष्य पूर्ति प्रक्रिया के प्रयत्न स्वरूप प्रयुक्त करती है या दूर करती है''।[10] राजशास्त्र के अग्रणीय विद्वान वाई ड्रोर (Y. Dror) नीति को ''अनुसरण किए जाने वाली कार्यवाहियों के मुख्य विषय पर सामान्य निर्देशों''[11] के रूप में अभिव्यक्त करते हैं। जेम्स एण्डरसन (James Andersen) का सुझाव है कि नीति को ''समस्या या चिंता के विषय से निपटने हेतु अभिकर्त्ता या अभिकर्त्ताओं के समूह द्वारा अनुसरण की गई सप्रयोजन कार्यविधि (A Purposive course of Action)''[12] के रूप में माना जाता है। थॉमस आर.डे. (Thomas R. Dye) के अनुसार, ''लोकनीति वह है जिस पर सरकार कार्य करने हेतु चयन करती है किन्तु नहीं करती है[13]।'' इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं से यह तथ्य स्पष्ट है कि लोक नीति में सरकार क्या निर्णय करती है किन्तु वास्तव में क्या करती है यह शासन की वर्तमान स्थिति पर निर्भर करती है।

वस्तुतः लोकनीति उसके कार्य कलाप के वे प्रमुख भाग हो सकते है, जो शासन की विकास नीति के अनुकूल होते है। सामाजिक-आर्थिक विकास, समानता, स्वतंत्रता, आत्म-निर्भरता हेतु मार्गदर्शन के समान व्यापक सिद्धान्तों को विकास सम्बन्धी नीति या लक्ष्यों के आधारभूत संरचना के रूप में अपनाया जा सकता है। लोकनीति सीमित भी हो सकती है, निश्चित कार्यकलाप, यथा– बालश्रम का निवारण शामिल कर सकती है या व्यापक भी हो सकती है, यथा– महिलाओं का सशक्तीकरण। लोकनीति शासन द्वारा देश के लोगों के सीमित वर्ग या सर्वजन पर लागू हो सकती है। सरकार के प्रत्येक स्तर (केन्द्रीय, राज्य एवं स्थानीय) के अतिरिक्त विशिष्ट या सामान्य नीतियाँ लोकनीति के रूप में हो सकती है। सभी विशिष्ट नीतियों द्वारा अपनाये गये सामान्य ''मार्ग निर्देशकों को वृहद् नीतियाँ'' कहा जाता है। सामान्यतया सभी नीतियों में अधिक स्पष्ट एवं अस्पष्ट शब्दों में निश्चित लक्ष्य और उद्देश्य होते हैं। लोकनीतियों के वे परिणाम भी होते हैं जिनकी प्रत्याशा की जा सकती है या नहीं भी की जा सकती है।

आधुनिक शासन प्रणाली में लोकनीतियाँ लक्ष्योन्मुखी विवरण होती हैं। इसके अतिरिक्त, लोकनीति या तो सकारात्मक स्वरूप में हो सकती है या नकारात्मक स्वरूप में। उसका सकारात्मक स्वरूप किसी खास समस्या से निपटने के लिए इसे किसी भी रूप में स्पष्ट सरकारी कार्यवाही में शामिल कर सकती है। जबकि अपने नकारात्मक स्वरूप में लोकनीति कुछ ऐसे मामलों में कार्यवाही न करने के लिए सरकारी अधि ाकारियों द्वारा लिये गये निर्णयों को शामिल कर सकती है। जिस पर सरकारी आदेश लेने के प्रयास किए जाते है। लोकनीति बाध्यकारी होती है जिसे नागरिक वैध समझते है। उदाहरण स्वरूप, यदि व्यक्ति गंभीर दण्ड या कारावास का जोखिम नहीं लेना चाहता है तो वह करों का भुगतान निश्चित और नियमित रूप से करता है। लोकनीतियों की बाध्यता की वैधता ही सरकारी संगठनों को निजी संगठनों से पृथक करती है।

वर्तमान समय में विकासशील देशों में शासन के कार्य वृहदतर हुए हैं। अब वे राष्ट्र निर्माण के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक प्रगति के अधिक गंभीर मामलों से भी सम्बद्ध है। सरकार आज न केवल शांतिरक्षक, विवादों का मध्यस्थ और सामान्य माल तथा दिन-प्रतिदिन की सेवा प्रदाता है, बल्कि वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुख्य प्रवर्तक, सामाजिक और आर्थिक कार्यक्रमों का मुख्य नियतिवादी और वित्तदाता एवं आर्थिक उपक्रम और विकास हेतु मुख्य उत्प्रेरक भी हो गया है।

वर्तमान परिदृश्य में बहुतायत से विकासशील देशों में निम्न प्रमुख कार्यों हेतु बहुत अधिक अवरोध बना रहता है यथा– राष्ट्रीय विकास तीव्र करना, अद्यतन और सुसंगत नूतन प्रौद्योगिकी का प्रयोग करना, आवश्यक संस्थागत परिवर्तन अपनाना तथा सफल बनाना, राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ाना, मानव और अन्य संसाधनों का पूरा-पूरा उपयोग करना

और जीवन स्तर सुधारना। प्रायः लोकनीतियाँ नागरिकों के जीवन चक्र की समस्त अवस्थाओं पर गहरा प्रभाव डालती हैं। निजीकरण की बढ़ती हुई प्रवृत्ति के कारण परिस्थितियाँ तीव्र गति से परिवर्तित हो रही है। माइकल टीट्ज (Michael Teitz) ने यह लिखा था कि, ''लोकनीति की सीमा संकुचित न होकर विस्तृत है, वह अतिआवश्यक से अति साधारण तक विद्यमान है'' ।[14] वर्तमान समय में लोकनीतियाँ रक्षा, पर्यावरण संरक्षण, स्वास्थ्य देखभाल और स्वास्थ्य शिक्षा, आवास, मुद्रा स्फीति, विज्ञान प्रौद्योगिकी इत्यादि महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर कार्य कर सकती हैं।

समाज की उत्तरोत्तर वृद्धि से उत्पन्न हो रही जटिलता के साथ-साथ लोकनीति के क्षेत्र व महत्व में भी अभिवृद्धि होती गई है। यह न केवल सरकारी गतिविधियों के कारणों एवं परिणामों के वितरण और व्याख्या से ही सम्बन्धित होता है, वरन् इसको आकार प्रदान करने वाली शक्तियों से सम्बन्धित ज्ञान के विकास से सम्बन्धित होता है। लोक अध्ययन के अन्तर्गत उत्पन्न विषय व्याधियों को समझने हेतु लोकनीति का अध्ययन अधिक सहायक सिद्ध होता है। किसी भी शासन प्रणाली को अतीत से वर्तमान और वर्तमान से भविष्य की तरफ गतिशीलता प्रदान करने हेतु लोकनीति एक महत्वपूर्ण तंत्र है। वर्तमान उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण के युग में शासन की भूमिका में परिवर्तन हुआ है। सामान एवं सेवाएँ प्रदान करना सुशासन का महत्वपूर्ण कार्य है परन्तु आधुनिक परिस्थितियों में सुशासन समाज की ही एक संस्था है, जिसका सतत् प्रयत्न समाज का विकास करना है। फलस्वरूप इसकी योग्यता नीतियों के निर्माण एवं उन्हें कार्यान्वित करने में निहित होती है। लोकनीति में जनता की लोकतांत्रिक या राजनीतिक क्षमता का सुधार सम्मिलित है। लोकनीति एक अनिवार्य सार्वजनिक शिक्षा की भूमिका का निर्वहन करती है। नीति-निर्माण का मुख्य लक्ष्य ऐसे मूल्यों का निर्माण करना है, जिनके जरिए समाज में व्यक्ति का सर्वांगीण विकास सम्भव हो सके, जिससे लोग एकजुट होकर अनुशासित जीवन जीने में सक्षम हो सकें।

वस्तुतः लोकनीति की आवश्यकता के निम्न बिन्दु परिलक्षित होते हैं, जो निम्नवत् हैं:–

1. किसी भी राष्ट्र का संविधान जनाकांक्षाओं तथा शासन के उद्देश्य का मौलिक प्रालेख है। संवैधानिक आदर्शों तथा प्रावधानों को मूर्त स्वरूप प्रदान करने हेतु कतिपय विषयगत लोकनीतियों की जरूरत होती है जिससे लोककल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सके।
2. वर्तमान समय में राज्य सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन का प्रतीक बन गया है। अतः राज्य द्वारा विकास कार्यों एवं परियोजनाओं के उद्देश्य बिना नीति के निरूपित नहीं हो सकते।

3. लोकनीति के द्वारा ही जनसमस्याओं, जनता की माँगों, राष्ट्रीय आवश्यकताओं तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य के अनुरूप शासन के दृष्टिकोण को निर्धारित किया जा सकता है।
4. लोकतंत्र में राजनीति दल विचारधारा प्रेरित होते हैं जनहित में इन विचारों को लोकनीति के माध्यम से ही क्रियान्वित किया जा सकता है।
5. लोकनीति संसाधनों के सदुपयोग, वितरण, नियंत्रण एवं निर्देशन की प्रक्रियाओं को सरल बना देती है।
6. शासन की क्रियाविधि को कार्यान्वित करने में लोकनीति का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसके द्वारा शासन-प्रशासन के कार्यों में समरूपता परिलक्षित होती है।

सामान्यतया यह महसूस किया जाता है कि विकासशील लोकतांत्रिक राष्ट्रों में लोकनीति वैश्विक शक्तियों से अभिप्रेरित है। जिससे सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक नीतियाँ अत्यधिक प्रभावित होती हैं। वैश्विक सन्दर्भ में साझा मुद्दों और समस्याओं की उत्तरोत्तर रूप में पहचान की जा सकती है किन्तु नीति-निर्माण व क्रियान्वयन करने की प्रकृति एवं प्रवृत्ति राज्यों में ही समाहित होती है। वर्तमान सन्दर्भ में लोकनीति इसलिए भी अति प्रासंगिक है कि विकासशील राष्ट्र अत्यधिक चुनौतियों से ग्रसित है जिससे उनके विकास की दर निम्नतर है। इन चुनौतियों से निपटने हेतु विभिन्न लोकनीतियाँ निर्मित की जाती है। विकास एवं सुशासन हेतु गरीबी-उन्मूलन, सर्व-शिक्षा अभियान एवं विभिन्न स्वास्थ्य कार्यक्रम आदि महत्वपूर्ण घटक है जिनके प्रति जागरूकता लाकर उनमें सक्रिय भागीदारी निभाना लोकनीति के माध्यम से ही बहुत हद तक सम्भव हो सकता है।

## fu"d"k

इस प्रकार उपरोक्त विवरणों से यह नितांत स्पष्ट है कि सुशासन वर्तमान समय में एक नूतन अवधारणा है, जो राज्य के प्रजातांत्रिक ढाँचे को कुशल व प्रभावशाली बनाता है। सामान्य हित के लक्ष्य से अभिप्रेरित सुशासन ऐसे पर्यावरण के सृजन की कल्पना है जिससे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव हो। सुशासन को लोकनीतियों और कल्याणकारी योजनाओं को बिना किसी वर्ग, लिंग व धर्म के भेदभाव के निर्मित व कार्यान्वित करनी चाहिए। जनता को जानने का अधिकार व उनके प्रति जवाबदेही को बढ़ावा देना सुशासन का परम कर्त्तव्य होना चाहिए। जनसमस्याओं का त्वरित निवारण पर बल देकर सुशासन को अपनी उपलब्धियों से जनता का वर्तमान एवं भविष्य उज्ज्वल करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करना चाहिए।

## सन्दर्भ

1. अर्नेस्ट वार्कर, ग्रीक पॉलिटिकल थ्योरी प्लेटो एण्ड हिज प्रेडीसेसर, सुरजीत पब्लिकेशन, दिल्ली, 2006, पृ.-169
2. वर्ल्ड बैंक, 1981, पृ.-55
3. वर्ल्ड बैंक, 1989, पृ.-12
4. इन्द्रजीत कौर, लोक प्रशासन के नये क्षितिज, एस.वी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस, 2015, पृ.-513
5. R.K. Dey, Difining Good Governance, Article Published in IJPA, 1998, P.412.
6. सी.पी. वर्थवाल, ''गुड गवर्नेन्स इन इण्डिया,'' दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली, 2003, पृ.-56
7. अवस्थी एवं अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण पब्लिकेशन, आगरा, 2016, पृ. -355
8. प्रदीप साहनी, उमा मेदुरी (एडी), गवर्नेंस फॉर डेवलपमेंट इश्यूज़ एंड स्ट्रेटजीज़, प्रिन्टस हॉल ऑफ इण्डिया प्रा.लि., नई दिल्ली, 2003, पृ.-15
9. आनन्द किशोर, सुशासन तथा ई-गवर्नेंस, योजना, अगस्त-2005, पृ.-43
10. Carl, J. Friedrich, Man and His Government, MeGraw-Hill, New Yerk, 1963.
11. Y. Dror, Public Policy Making Re-examined Scranton, Pennsylvania, 1968.
12. James, E. Anderson, Public Policy Making, Praeger, New Yark, 1975
13. Thomas R. Dye, Understanding Public Policy, Prentice Hall, Englewood Cliffs, 1978.
14. Michael Teitz, "Towards a Theory of Urban Public Facility Location", Papers of the Regional Science Association, No. 21, 1968.

# विकासशील देशों में विकास प्रशासन की भूमिका


## स्निग्धा त्रिपाठी



***Ikjk'k%*** *प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य 'विकासशील देशों में विकास प्रशासन की भूमिका' का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत करना है। यद्यपि 'परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है तथापि मानव एक जिज्ञासु प्राणी होने के कारण सदैव विकास हेतु प्रयत्नशील रहा है। अतीत से वर्तमान तक का मानव इतिहास उसके सतत् विकास का ही द्योतक है, उसके प्रगति की नूतन कहानी है, उसके भविष्य का दिक्सूचक भी है। वस्तुतः परिवर्तन विकासात्मक होता है जिसके अभाव में विकास और विकास परिवर्तन बिना सम्भव प्रतीत नहीं होता है। वर्तमान परिवर्तित परिस्थितियों में सतत् परिवर्तन एवं स्वयं की शक्ति तथा अस्तित्व को सुदृढ़ करते हुए विकास प्रगति पथ पर अग्रसर है। वर्तमान समय में विकास सर्वाधिक प्रचलित विचारों में से एक है। इस सम्बन्ध में अमेरिकी विद्वान ब्रान ने यहाँ तक कह दिया कि, ''सारी दुनिया विकास से अभिशापित है, इससे बच पाना मुश्किल सा लगता है''।*


### प्रस्तावना

विकास प्रशासन लोक प्रशासन की नूतन विद्या है। यह एक प्रगतिशील एवं परिवर्तनशील अवधारणा है, जो समाज में सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिवर्तन हेतु प्रयत्नशील है। यह विकासात्मक कार्यों को ही प्राथमिकता प्रदान करता है। द्वितीय महायुद्धोपरान्त जब प्रशासन को राष्ट्र निर्माण, आर्थिक सुदृढ़ता एवं लोकहित सम्बन्धी महत्वपूर्ण नूतन दायित्व सुपुर्द किये गये, तब उन्हें सुचारू रूप से कार्यान्वित करने हेतु विकास प्रशासन की आवश्यकता हुई। आधुनिक विश्व के देश तीव्रतर विकास कार्यों में तल्लीन है, किन्तु तीसरी दुनिया के देशों के समक्ष तीव्रतर सर्वांगीण विकास करना चुनौतीपूर्ण कार्य है। अतः इसी आवश्यकता ने प्रशासन को विकासोन्मुख बना दिया है।

वर्तमान सार्वभौमिक परिदृश्य में विकास एक बहुआयामी, सर्वसम्मिलित, गत्यात्मक एवं प्रगतिशील अवधारणा है। अतीतकालीन विकास हेतु किये गये प्रयासों एवं अनुभवों के आधार पर विकास की धारणा में परिवर्तन होते रहे हैं। इस धारणा का मूल विचार है– समाज के उच्चतर रूपों को अपना लक्ष्य बनाकर उनकी दिशा में आगे बढ़ना। ऑक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार, ''विकास उच्चतर, पूर्णत्तर और परिपक्वतापूर्ण स्थिति की ओर बढ़ने की प्रक्रिया है''।[1] एडवर्ड वीडनर (E. Weidner) के अनुसार, ''विकास मन की एक स्थिति, एक प्रवृत्ति एवं एक दिशा के रूप में है। एक निश्चित लक्ष्य की अपेक्षा यह एक विशिष्ट दिशा में परिवर्तन की गति है''।[2]

जॉन डी. मॉण्टगोमरी (John D. Montgomery) के अनुसार, ''विकास परिवर्तन का एक विशिष्ट पहलू है जो सामान्यतः सम्भावित एवं नियोजित हो तथा शासकीय कार्यों से निर्देशित हो''।[3]

एफ. डब्ल्यू. रिग्स (F.W. Riggs) के अनुसार, ''विकास परिवर्तन के उभरते स्तर द्वारा सम्भाव्य सामाजिक प्रणालियों की विवेकपूर्ण प्रक्रिया है''।[4]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 'कम वांछित स्थिति से अधिक वांछित स्थिति की ओर जाने की प्रक्रिया' को ही विकास की संज्ञा दी जाती है।

वस्तुतः 'विकास प्रशासन' सर्वप्रथम एक भारतीय अध्येया यू.एल. गोस्वामी द्वारा सन् 1955 में छपे लेख "The Structure of Development Administration in India" में प्रयुक्त किया गया था। 'विकास प्रशासन' के पिता के नाम से विश्वविख्यात अमेरिका विद्वान जार्ज ग्रॉण्ट (George Grant) द्वारा इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "Development Administration : Concepts, Goel and Methods 1979" में किया गया। एडवर्ड वीडनर विकास प्रशासन के सर्वश्रेष्ठ भाष्यकार है तथा विकास प्रशासन को अवधारणात्मक स्वरूप में व्यवस्थित भी किया है। फेरल हैडी का मानना है कि, ''जार्ज ग्रॉण्ट को विकास प्रशासन शब्द को गढ़ने का श्रेय प्रदत्त है''। प्रभा दत्ता का मानना है कि, ''विकास प्रशासन शब्द भारतीय विद्वान यू.एल. गोस्वामी की देन है, जबकि इस पाश्चात्य अवधारणा का सर्वप्रथम प्रयोग डोनाल्ड सी. स्टोन (Donold C. Stone) ने किया था''।[5]

'विकास प्रशासन' दो शब्दों के योग से बना है– विकास और प्रशासन। विकास का अभिप्राय है – निरन्तर आगे बढ़ना, और प्रशासन का अभिप्राय सेवा करना है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विकास प्रशासन में जनता की सेवा हेतु विकास कार्यों को सम्पादित करना निहित है। एडवर्ड वीडनर (E. Weidner) के अनुसार, ''विकास प्रशासन राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक प्रगति हेतु संगठन का मार्गदर्शन करता है। यह मुख्यतः एक कार्योन्मुख एवं लक्ष्योन्मुख प्रशासनिक प्रणाली पर बल देता है''।[6]

एफ, डब्ल्यू, रिग्स (F. W. Riggs) के अनुसार, ''विकास प्रशासन का सम्बन्ध विकास कार्यक्रमों के प्रशासन, बृहद संगठनों विशेषतः सरकार की प्रणालियों, विकास लक्ष्यों की उपलब्धि हेतु नीतियों और योजनाओं को क्रियान्वित करने से है'' ।[7]

डोनाल्ड सी. स्टोन (Donold C. Stone) के अनुसार, ''विकास प्रशासन निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु संयुक्त प्रयास के रूप में सभी तत्वों तथा साधनों (मानवीय एवं भौतिक) का समिश्रण है। इसका लक्ष्य निर्धारित समयक्रम के अन्तर्गत विकास के पूर्व-निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति है'' ।[8]

उपरोक्त परिभाषाओं में पर्याप्त विविधता के बावजूद यह स्पष्टतः परिलक्षित है कि विकास प्रशासन लक्ष्योन्मुखी एवं कार्योन्मुखी है। इसका अध्ययन करते समय अध्ययन का केन्द्रस्थ बिन्दु सरकारी तंत्र की क्षमता होती है। किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था की क्षमता की वृद्धि और विकास के लक्ष्यों की कुशलतापूर्वक प्राप्ति हेतु नियोजित प्रक्रिया अपनायी जाती है। इसीलिए 'विकास प्रशासन' को 'नियोजित परिवर्तन का प्रशासन' भी माना गया है। तथ्यात्मक दृष्टि से विकास प्रशासन 4P- योजना (Planning), नीति (Policy), कार्यक्रम (Programme), तथा परियोजना (Project) से सम्बन्धित है।[9]

विकासशील देशों के विकास पर ध्यान केन्द्रित करने पर यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि आज विकास प्रशासन कहीं अधिक सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है, तो कही कम। कतिपय आवश्यकताएँ एवं परिस्थितियाँ है, जो विकासशील देशों में विकास प्रशासन के विकास हेतु अपरिहार्य है, जिनके अभाव में विकास प्रशासन अभीष्ट परिणाम प्रदान करने में सक्षम न हो सकेगा। वे आवश्यक परिस्थितियाँ, जो विकास प्रशासन की सफलता हेतु अपरिहार्य है, निम्नवत हैः

1- **i;kIr lalk/ku %** विकासशील देशों में विकास प्रशासन की सफलता हेतु पर्याप्त संसाधनों की उपलब्धता अत्यंत आवश्यक है। विकास प्रशासन की सफलता भौतिक व मानवीय संसाधनों का समुचित मात्रा में प्राप्ति आवश्यक है। एक तरफ भौतिक संसाधनों के अभाव में प्रशासन विकास सम्बन्धी योजनाओं को कार्यान्वित करने में असमर्थ है, तो दूसरी तरफ मानवीय संसाधनों की उपलब्धता भौतिक संसाधनों की अपेक्षा अपरिहार्य है, क्योंकि मानव ही किसी भी संरचना का संचालक, संवाहक व संरक्षक होता है। यद्यपि कितनी ही अच्छी योजनाएँ क्यों न बनाई गयी हों, भौतिक संसाधनों की उपलब्धता प्रचुर हो, किन्तु विकास प्रशासन के संसाधनों का मानवीय पक्ष अकुशल हो, तो वह योजना कभी भी अपेक्षित परिणाम नहीं दे सकेगी।

2- **mUur izkS|ksfxdh %** विकासशील देशों के विकास हेतु उन्नत प्रौद्योगिकी का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके अभाव में विकास प्रशासन न तो सफलतापूर्वक कार्य कर सकता है और न ही अपेक्षित परिणाम की प्राप्ति

कर सकता है। उन्नत प्रौद्योगिकी के विकास हेतु 'शोध एवं विकास' (Research & Development-R & D) की आवश्यक होता है जिसका इन देशों के पास पर्याप्त अनुपलब्धता पायी जाती है। जिसकी पूर्ति हेतु उन्हें विकसित देशों पर निर्भर रहना पड़ता है, जिससे उनके सर्वांगीण विकास में अवरोध उत्पन्न होता है।

3- **mUur ,oa iHkkoh lapkj 0;oLFkk** % उन्नत एवं प्रभावी संचार प्रणाली किसी भी राष्ट्र के प्रशासनिक व्यवस्था की रीढ़ होती है। विकास कार्यक्रमों के उद्देश्यों को लाभार्थियों तक पहुँचाने तथा उन कार्यक्रमों के बारे में लाभार्थियों से उनकी प्रतिक्रियाएँ जानने का प्रभावपूर्ण व्यवस्था उन्नत संचार पर अवलम्बित होता है। इसके अभाव में विकास कार्यक्रमों के निर्धारित लक्ष्यों को प्रशासनिक अधिकारियों को प्रेषित नहीं किया जा सकता है। अतः इन योजनाओं और कार्यक्रमों के बारे में लाभार्थियों के अनुभव एवं योजनाओं तथा कार्यक्रमों का क्रियान्वयन सही नहीं रहता है।

4- **tulgHkkfxrk** % इसके अभाव में प्रशासनिक उद्देश्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। यह विकासशील देशों के प्रशासन पर भी समानरूप से लागू होता है। विकास कार्यक्रमों का निर्माण लोकहित में होता है। अतः इनके निर्माण एवं क्रियान्वयन हेतु जनभागीदारी आवश्यक हो जाती है।

5- **fLFkj jktuhfrd 0;oLFkk** % विकासशील देशों के विकास प्रशासन की एक अन्य महत्वपूर्ण आवश्यकता राजनीतिक व्यवस्था का स्थिर रूप में पाया जाना होता है। राजनैतिक अस्थिरता के समय प्रभावी राजनीतिक निर्देशन का अभाव हो जाता है जिससे विकास प्रशासन में कार्यरत् प्रशासनिक पदाधिकारी सेवक की अपेक्षा स्वामी की भूमिका धारणकर लेते है।

6- **fof'k"V leUo;** % समन्वय संगठन का प्रभावी सिद्धान्त है और विकास प्रशासन इससे अछूता नहीं रह सकता। विकासशील देशों में समन्वय के अभाव में विकास प्रशासन अपनी नीतियों, योजनाओं एवं कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से कार्यान्वित नहीं कर सकेगा। विकास प्रशासन में समन्वय के महत्व में और अधिक वृद्धि तब हो जाती है, जब एक से अधिक सामाजिक वर्गों हेतु योजनाएँ एवं कार्यक्रम बनाने पड़ते है। विकासशील देशों में ऐसी परिस्थितियाँ पर्याप्त रूप से परिलक्षित होती हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि विकास प्रशासन की सफलता एवं प्रभावपूर्णता हेतु इन आवश्यक तत्वों की अपेक्षा होती है। इनके अभाव में विकास प्रशासन प्रभावी तरीके से कार्य करने में सक्षम न होगा। अधिकांश विकासशील देशों में इनका अभाव परिलक्षित होता है, जिससे वहाँ विकास प्रभावी नहीं रहता है। ऐसे देश अल्प विकास के दुष्चक्र में उलझे रह जाते हैं।

द्वितीय महायुद्धोपरांत विश्व पटल पर एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के अधिकांशतः देश जो पूर्व उपनिवेशवादी शक्तियों के अधिकार क्षेत्र में थे, स्वतंत्र होकर नूतन स्वरूप धारण किए। जिन्हें विकासशील' या 'तीसरी दुनिया के देश' के रूप में जाना जाता है। नवोदित स्वरूप में ये सभी राष्ट्र विविध भयावह समस्याओं यथा – गरीबी, भुखमरी, बेरोज़गारी, अशिक्षा, अस्वास्थ्य आदि से पीड़ित थे। जिसका मुख्य कारण औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा इनका निरन्तर एवं वृहद् कालावधि तक किया गया दमन एवं शोषण था। अतः इनका मुख्य मुद्दा सर्वांगीण विकास का था। जिससे इन समस्याओं का यथोचित हल ढूंढ़ा जा सके। इस हेतु इन देशों ने विकास प्रशासन को धारण कर, इसके मुख्य उद्देश्यों की अभिवृद्धि की, जिससे इन समस्याओं से निजात पाया जा सके।

इस प्रकार विकासशील देशों में विकास प्रशासन एक आधारभूत भूमिका का निर्वहन करता है, जो निम्नवत् है –

1- **lkekftd dY;k.k dh vfHkof) djuk %** विकासशील देशों में समाज विन्यास अनेक जटिल समस्याओं से दुःखित है, पीड़ित है, ग्रसित है। विकास प्रशासन का मुख्य उद्देश्य, समाज के इन विविध वर्गों हेतु कल्याणकारी योजनाओं का सृजन एवं कार्यांवित करना है। जिससे इन्हें इन समस्याओं से निजात पाने में सहयोग मिल सके और ये अपनी स्थितियाँ सुदृढ़ कर सकें।

2- **vkfFkd fo"kerk de djuk %** प्रायः विकासशील देशों में पर्याप्त आर्थिक विषमता पायी जाती है। विकास प्रशासन इन देशों में व्याप्त आर्थिक विषमता को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। यह नियोजित विकास की प्रक्रिया अपनाकर वर्चस्व की प्रवृत्तियों की रोकथाम करता है। तदोपरान्त प्रगतिशील वर्गों पर करारोपण कर समाज के गरीब व वंचित वर्गों की उत्पादकता की अभिवृद्धि हेतु सतत् प्रयत्नशील रहता है, जिससे समाज में व्याप्त आर्थिक विषमताओं को दूर किया जा सके।

3- **lekt dh 0;kIr cjkbZ;ksa dk lekIr djuk %** प्रायः विकासशील देशों में विविध सामाजिक बुराईयों यथा– निरक्षरता, निर्धनता, धर्मांधता, अंधविश्वास, जातिवाद आदि की विद्यमानता परिलक्षित होता है। ये समस्त बुराईयाँ समाज के सर्वांगीण विकास में अवरोध उत्पन्न करती हैं। इन्हें दूर करने हेतु विकास प्रशासन महत्वपूर्ण उपाय एवं भूमिका का निर्वहन करता है जिससे स्वस्थ सामाजिक परिवेश का सृजन हो सके।

4- **vkfFkd lfodkl dh vfHkof) djuk %** सामान्यतः विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं में विविधता का समावेश होता है। इन देशों के विविध परिक्षेत्रों में कम या अधिक विकसित अवस्था दिखाई पड़ती है। विकास

प्रशासन इन देशों की इस असमानता के कारणों की खोजकर उन्हें दूर करने का प्रयास करता है। विकास प्रशासन विभिन्न क्षेत्रीय विकास कार्यक्रमों की सहायता से पिछड़े इलाकों का विकास कर उन्हें समान स्वरूप प्रदान करने की भूमिका का निर्वहन करता है।

5- **tulgHkkfxrk lqfuf'pr djuk %** प्रायः विकासशील देशों में सरकार के विभिन्न कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी का अभाव परिलक्षित होता है। जनसहभागिता के अभाव में विकास कार्यक्रमों में जनसहभागिता का होना परमावश्यक है। इसे सुनिश्चित करने में विकास प्रशासन एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। वस्तुतः विकास प्रशासन जनकल्याण एवं लोकोन्नयन से सम्बन्धित होने के कारण विकास नीतियों एवं कार्यक्रमों में जनसहभागिता पर दबाव डालता है। विकासशील देशों में प्रचलित शिक्षा-प्रसार, पर्यावरण संरक्षण एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रमों की सफलता इसमें लोगों के अत्यधिक सहभागिता पर अवलम्बित है। जिसमें विकास प्रशासन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

6- **tukdk{kkvksa dh iwfr djuk %** विकासशील देशों में विकास प्रशासन विभिन्न वर्गों से सम्बन्धित तथा विविधतापूर्ण क्षेत्रों में निवास करने वाले जन की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की पहचान कर उनकी पूर्ति हेतु विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम तैयार कर उन्हें कार्यरूप में परिणत करता है। जनाकांक्षाओं की पूर्ति करना विकास प्रशासन का प्रमुख लक्ष्य होता है। अतः जनसमस्याओं का समाधान एवं जनाकांक्षाओं की पूर्ति कर विकास प्रशासन विकासशील देशों में सशक्त भूमिका का निर्वहन करता है।

7- **i;koj.k dk lqj{k.k djuk %** विकासशील देशों के पर्यावरण संरक्षण में विकास प्रशासन महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। पर्यावरण सम्बन्धी कार्यों को सम्पन्न कराने हेतु प्रशासन सार्वजनिक नीतियों को निर्धारित करता है तत्सम्बन्धी विधि तैयार होने के उपरान्त उसके क्रियान्वयन एवं जनजागृति उत्पन्न कर जनसहयोग का प्रयास करता है। जिससे पर्यावरण के संरक्षण में सक्रिय जनभागीदारी हो सके।

8- **lqj{kkRed dk;Z lEikfnr djuk %** विकासशील देशों में विकास प्रशासन आकस्मिक विपत्तियों - प्राकृतिक (बाढ़, भूकम्प, सुनामी, अकाल महामारी) एवं मानवीय (युद्ध, आतंकवाद, आन्तरिक उपद्रवों से उत्पन्न मानवीय विपत्ति) में जनता को सुरक्षा प्रदान करता है। सामान्यतया विकासशील देशों में जिस रूप में जनता इन विपदाओं से प्रभावित हुई है, प्रशासन को इन स्थितियों से निपटने हेतु कौशलयुक्त होना परमावश्यक है, जिससे न केवल सुरक्षात्मक सुविधाओं की प्राप्ति हो सके वरन् इसकी पूर्वानुमान के आधार पर आवश्यक कार्यवाही संचालित किया जा सके।

## निष्कर्ष

उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से यह नितांत स्पष्ट है कि वर्तमान समय में विकासशील देशों में विकास प्रशासन मात्र नीति कार्यान्वयन तक सीमित न रहकर मानव के 'जन्म से लेकर मृत्यु तक के क्रमिक विकास' में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। यह मानव के रोजमर्रा की आवश्यकताओं यथा– रोटी, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य, शिक्षा, सड़क, बिजली, पानी इत्यादि की व्यवस्था के साथ-साथ विकासात्मक कार्यवाहियों को सम्पादित कर रहा है। अतः विकास प्रशासन आज सुविधासाधक और नियमनकर्त्ता मात्र[10] न रहकर, वरन् इसके विकासात्मक प्रवृत्तिपोषक की भूमिका में उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होती जा रही है। विकास प्रशासन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व आर्थिक क्षेत्रों में विकास लाकर जनकल्याण के माध्यम से मानव की दिशा व दशा सुदृढ़ करने का सफल प्रयास कर रहा है। जिससे मानव व समाज का सर्वांगीण विकास सम्भव हो सकेगा।

## सन्दर्भ

1. अवस्थी एवं माहेश्वरी, लोकप्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1998, पृ.-48
2. E. Weidner : Development Administration – A New force for Research, IPA, Michigan, 1962, P.99.
3. John D. Montgomery : Approaches to Development Politics, Administration & Change, New Yark, Mcgraw Hill Book, Co., 1966, P.259.
4. F.W. Riggs : The Forontiers of Development Administration, Duhran, N.C. Duke University Press, 1970, P.6.
5. एम. लक्ष्मीकांत, लोक प्रशासन, टाटा मैक्ग्राहिल, नई दिल्ली, 2012, पृ.-1.18
6. E. Weidner : Ibid, P.99.
7. F.W. Riggs : Ibid, P.6.
8. D.C. Stone : Education for Development Administration, Brussels, 1966, P.41.
9. डॉ0 प्रभुदत्त शर्मा एवं डॉ. हरिश्चन्द्र शर्मा, लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार, कालेज बुक डिपो, जयपुर, 2003, पृ.-62
10. इन्द्रजीत कौर, लोक प्रशासनः नए क्षितिज, एस.वी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस, 2017, पृ.-59

# प्रवासी भारतीय एवं भारत सरकार- संक्षिप्त अध्ययन


## शीला कुमारी



*Ikjk'k प्रवासी भारतीय समुदाय विविध विजातीय और मिलनसार वैश्विक समुदाय है जो विभिन्न धर्मों, भाषाओं, संस्कृतियों और मान्यताओं का प्रतिनिधित्व करता है। प्रवासी भारतीयों में भारतीय मूल के लोग और अप्रवासी भारतीय शामिल हैं जिन्हें भारत और इसके आंतरिक मूल्यों का विचार एक आम सूत्र में बाँधे हुए है। विश्व के प्रत्येक कोने में प्रवासी भारतीय समुदाय को कड़ी मेहनत, अनुशासन और हस्तक्षेप न करने और स्थानीय समुदाय के साथ सफलतापूर्वक तालमेल बनाए रखने के कारण जाना जाता है। प्रवासी भारतीयों ने अपने आवास के देशों की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान दिया है और स्वयं में ज्ञान एवं नवीनता का संचार किया है। ऐसे भारतीय मूल के लोगों को अपने पूर्वजों की भूमि, मिट्टी, गाँव, देश आदि से निरंतर लगाव बना हुआ है। इन सभी भारतीयों के अतिरिक्त विदेशों में रहने वाले ऐसे भारतीय भी हैं जो उच्च शिक्षा के लिए वहाँ गए और वहीं बसकर वहाँ के नागरिक बन गए। ऐसे प्रवासी भारतीयों के साथ भारत का औपचारिक संबंध भारत के हित में है, क्योंकि भारत के पास वर्तमान में 25 मिलियन का एक सशक्त प्रवासी भारतीय समुदाय है। इस समुदाय के साथ संबंध बनाए रखना देश हित में है। यही कारण है कि प्रवासी आबादी के महत्व को देखते हुए इनके साथ एक सतत् और परस्पर लाभकारी संबद्धता के लिए भारत सरकार द्वारा एक संस्थागत ढाँचा बनाने का प्रयास किया जा रहा है।*


### प्रवासी भारतीय और वैश्विक स्तर पर उनका बढ़ता प्रभाव

विश्व के 48 राष्ट्रों में फैले प्रवासी भारतीयों की जनसंख्या आज करीब तीन करोड़ है। इनमें से करीब 11 राष्ट्रों में पाँच लाख से ज्यादा प्रवासी भारतीय वहाँ की औसत जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हुए वहाँ की आर्थिक/राजनीतिक दिशा को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।[1] इन देशों में इनकी आर्थिक,

शैक्षणिक व व्यावसायिक दक्षता का आधार काफी सुदृढ़ है। वे विदेशों में अपनी भाषा बोलते हुए वहाँ के क्रियाकलापों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वहाँ उनके द्वारा अपनी सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्ण बनाए रखने के चलते ही उन्हें *साझा पहचान* मिली है, और यही उन्हें भारत से जोड़ती है। जिन राष्ट्रों में वे बसे हैं, उनके आर्थिक तंत्र को मजबूती प्रदान कर कम समय में उन्होंने वहाँ अपना स्थान बना लिया है। इसीलिए मजदूर, व्यापारी, शिक्षक, अनुसंधानकर्त्ता, खोजकर्ता, डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, प्रबंधक तथा प्रशासक आदि विभिन्न रूपों में उनकी पहचान है। वैश्विक स्तर पर सूचना तकनीक के क्षेत्र में आई क्रांति में उनकी परंपरागत सोच, सांस्कृतिक मूल्यों और शैक्षणिक योग्यता के चलते भारत की छवि निखरी है और वह विश्व में आर्थिक महाशक्ति के रूप में उभर रहा है। अतः प्रवासन एक ऐसी प्रक्रिया है जो मनुष्य की उत्पति के साथ से ही जारी है। *संयुक्त राष्ट्र प्रतिवेदन* के अनुसार 2005 में विश्व की कुल आबादी की तीन प्रतिशत जनसंख्या प्रवासियों की थी। प्रवासन के फलस्वरूप जिस समुदाय का निर्माण हुआ उसे 'डायस्पोरा' (Diaspora) कहा गया। *डायस्पोरा* का शाब्दिक अर्थ बिखराव है। यहूदियों के बेबिलोन से पलायन के बाद पलायित समूह को *डायस्पोरा* की संज्ञा दी गई।[2] वर्तमान में प्रवासन तथा प्रवासित समूहों के अध्ययन हेतु 'डायस्पोरा' शब्द ही शैक्षणिक जगत में ग्रहण कर लिया गया है। भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा डायस्पोरा है। प्रवासी भारतीय समुदाय सैकड़ों वर्षों में हुए उत्प्रवास का परिणाम है और इसके पीछे विभिन्न कारण रहे हैं जैसे वाणिज्यवाद, उपनिवेशवाद और वैश्वीकरण। इसके शुरु के अनुभवों में कोशिशों, दुःख-तकलीफों और दृढ़ निश्चय तथा कड़ी मेहनत के फलस्वरूप सफलता का आख्यान है। 20वीं शताब्दी के पिछले तीन दशकों के उत्प्रवास का स्वरूप बदलने लगा है और 'नया डायस्पोरा' उभरा है जिसमें उच्च कौशल प्राप्त व्यावसायिक पश्चिमी देशों की ओर तथा अकुशल/अर्द्धकुशल कामगार खाड़ी, पश्चिम और दक्षिण पूर्व एशिया की ओर ठेके पर काम करने जा रहे हैं। भारतीय समाज की ही तरह यह डायस्पोरा बहुधर्मी (हिन्दु, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध, जैन और पारसी) बहुजातीय और बहुभाषी हैं। भारतीय डायस्पोरा की *तीन* प्रमुख श्रेणियाँ हैं– 1. उत्पीड़ित डायस्पोरा 2. श्रमिक डायस्पोरा और 3. तिजारती डायस्पोरा।[3] उदाहरणार्थ *जिप्सी* भारतवंशी माने जाते हैं और पूरे विश्व में उनके विरुद्ध उत्पीड़न के प्रमाण बड़े पैमाने पर उपलब्ध हैं। उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के परिणामस्वरूप 19 वीं सदी में बहुत बड़ी संख्या में भारतवासियों को अनुबंध की शर्तों में बँधे हुए *बँधुआ* श्रमिक के तौर पर ब्रिटिश उपनिवेशों के बागानों में काम करने के लिए भेजा गया था। इस डायस्पोरा का एक हिस्सा ऐसा भी है जिसे *तिजारती* श्रेणी में रखा जा सकता है। इसमें वे भारतवंशी आते हैं जो अपनी व्यावसायिक योग्यताओं के आधार पर विदेशों में बेहतर अवसरों की तलाश में गए थे। इस श्रेणी में शारीरिक श्रम करने वाले श्रमिकों, कारीगरों, डॉक्टरों, इंजीनियरों और व्यापारियों को रखा जा सकता है।

राजनीतिक दृष्टि से भी भारतीय डायस्पोरा का महत्व विश्व के अन्य डायस्पोरा समाजों से अधिक है। उपनिवेशवाद आंदोलन का इतिहास साक्षी है कि दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों के बीच ही महात्मा गाँधी ने हिंसक आंदोलन और सत्याग्रह का सबसे पहले प्रयोग किए थे।[4] इसी प्रकार, श्रीलंका में अलगावादी आंदोलन चलाने वाला *ईलम संगठन* भारतवंशी तमिलों का ही है। उत्तरी अमेरिका में भी प्रवासी भारतीय *विश्व हिंदू परिषद* के हिंदुत्त्ववादी कार्यक्रम का समर्थन करते रहे हैं। प्रवासी भारतीय हिंदू धर्म के भूमंडलीकरण की प्रक्रिया और उसके माध्यम से उसमें आने वाले परिवर्तनों के भी जिम्मेवार माने जाते हैं।

## ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु एक देश से दूसरे देश जाने की परंपरा भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही देखी जा सकती है। समसामयिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, मनोवैज्ञानिक व राजनीतिक परिस्थितियाँ मानव प्रगति का सर्वश्रेष्ठ वाहक हैं और ये परिस्थितियाँ व्यक्ति को धार्मिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक कारणों से राष्ट्र की सीमाओं से मुक्त करके नए राष्ट्र में बसने के लिए प्रेरित करती हैं। अतः प्रवास की संकल्पना, प्राचीन सभ्यताओं के समय से ही अस्तित्व में है। वैदिक सभ्यता से लेकर 18वीं शताब्दी तक इसका स्वरूप भारत में प्रायः ज्ञान प्राप्त करने के लिए, लोक-कल्याण के लिए और धार्मिक अभिप्रायों से किए जाने वाले प्रवास का रहा है। *बौद्ध धर्म* ग्रहण करने के बाद सम्राट अशोक ने ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दी में अपने पुत्र *महेंद्र* एवं पुत्री *संघमित्रा* को धार्मिक अभिप्राय से प्रवास पर भेजा था।[5] दक्षिण भारत के राजेन्द्र चोल जैसे शक्तिशली सम्राटों ने भी सुदूर पूर्व के देशों (वर्तमान मलेशिया, सिंगापुर, इंडोनेशिया आदि) तक अपनी नौसेनाओं को भेजकर राजनैतिक-आर्थिक संबंध स्थापित किए जो अभी तक विद्यमान हैं। अल बरूनी, मेगास्थनीज, मार्को पोलो, ह्वेन सांग, इब्न बतूता आदि ने अरब एवं यूरोपीय देशों से आकर भारत में प्रवास किया था। मध्य एशिया के देशों से आए तुर्क, हूण, पठान, उज्बेक आदि का भारत में आगमन तो आक्रमणकारियों के रूप में हुआ था, लेकिन वे बाद में यहीं के होकर रह गए और इस प्रकार वे भी भारत में अन्य देशों के प्रवासी ही माने जाएँगे। हजारों वर्ष तक भारतीय सभ्यता का अरब देशों एवं चीन, इंडोनेशिया, बर्मा, कंबोडिया आदि देशों के साथ प्रत्यक्ष और यूरोपीय देशों के साथ अप्रत्यक्ष संपर्क/संबंध रहा है।[6] व्यापारिक उद्देश्यों के लिए भी बड़े पैमाने पर प्रब्रजन एवं प्रवास की शुरुआत *16वीं* शताब्दी में हुई। वॉस्को डि गामा, कोलंबस, पेदरो अलवरेस कबराल आदि जैसे महान नाविकों ने भारत, अमेरिका, ब्राजील जैसे देशों का समुद्री संपर्क यूरोपीय देशों के साथ संबंध बनाना शुरू किया। गुजराती व्यापारियों ने वर्तमान केन्या, युगांडा, जिम्बावे, जांबिया, दक्षिण अफ्रीका में अठारहवीं शताब्दी में अपने कदम रखे।

इन्हीं में से एक व्यापारिक दादा *अब्दुल्ला सेठ* के कानूनी प्रतिनिधि के रूप में महात्मा गाँधी ने मई, 1893 में नटाल प्रांत में पदार्पण किया। रंगभेद नीति के साथ उनका संघर्ष और प्रवासी भारतीय समुदाय के सम्मान की उनकी लड़ाई सर्वविदित है। अहिंसा और सत्याग्रह के सर्वथा नवीन साधनों से प्राप्त सफलता से वे जन-मन के मानस में प्रतिष्ठित हो गए। 9 जनवरी 1915 को 22 वर्ष के प्रवास के बाद वे भारत लौटे। इसी यादगार में इस महान आत्मा से प्रेरणा लेकर इस दिवस को *प्रवासी भारतीय दिवस* के रूप में मनाया जाता है।[7]

सही अर्थ में प्रवासी भारतीयों के साथ भारत का औपचारिक संबंध तो था, लेकिन एक निकटवर्ती, घनिष्ठ और आत्मिक जुड़ाव की आवश्यकता लंबे अरसे से महसूस की जा रही थी। परिणामस्वरूप, नवंबर 1977 में *इंडिया इंटरनेशनल सेंटर* में आयोजित एक समारोह में तत्कालीन *जनता पार्टी* सरकार के विदेश मंत्री *अटल बिहारी वाजपेयी* ने बल देकर कहा कि दूर-दराज के देशों में बसे भारतवंशियों के साथ हमें अपना संबंध ा और प्रगाढ़ करना होगा। उन्होंने कहा कि भारत इन प्रवासियों की सेवाओं, त्याग और संघर्ष को भूल नहीं सकता। इस प्रकार, प्रवासी भारतीयों के साथ अपने जुड़ाव एवं संबंध को प्रगाढ़ करने के लिए किस प्रकार की नीतियाँ बनाई जाएँ, कौन से साध न अपनाए जाएँ और कैसा तंत्र तैयार किया जाए, इस पर चर्चा चलती रही।

## डॉ. एल. एम. सिंघवी समिति

18 अगस्त 2000 को *विदेश मंत्रालय* ने प्रवासी भारतीयों के साथ भारत सरकार के भावी संबंधों के निर्माण के लिए *डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी* की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। इस समिति में पूर्व विदेश राज्यमंत्री आर. एल. भाटियात्र, पूर्व राजनयिक जे. आर. हिरेमथ, अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिषद के महासचिव बालेश्वर अग्रवाल और राजनयिक जे. सी शर्मा शामिल थे। समिति ने 20 से अधिक देशों का प्रत्यक्ष दौरा करके, विश्वभर के यथासंभव अधिकतम् प्रवासी भारतीय संगठनों एवं पूर्व राजनयज्ञों से बातचीत करके अपने संचित ज्ञान और अनुभव के आधार पर 19 दिसंबर 2001 को अपनी रिपोर्ट भारत सरकार का सौंपी जिसमें, अन्य बातों के अलावा *प्रवासी भारतीय दिवस* 9 जनवरी को मनाए जाने और प्रति वर्ष प्रवासी भारतीय सम्मान दिए जाने की सिफारिशें भी शामिल थीं। रिपोर्ट में प्रवासी भारतीयों पर बनाई गई उच्चस्तरीय समिति को पहला ऐतिहासिक कदम बताते हुए इस बात की आशा व्यक्त की गई की समिति द्वारा जो सुझाव दिए गए, उस पर सरकार पहल करेगी।[8]

प्रवासी भारतीयों के संबंध में गठित एल. एम. सिंघवी ने पाया कि 19वीं शताब्दी में भारत ने ब्रितानवी शासन के चलते नए अवसर की तलाश में और आर्थिक कारणों से बड़े पैमाने पर लोग दूसरे देशों में प्रवास पर गए। ब्रिटिश संसद द्वारा वर्ष 1833-34 में गुलामी प्रथा के समाप्त किए जाने के परिणामस्वरूप विश्वभर में फैले उनके सम्राज्य

को जब मजदूरों का अभाव सताने लगा तब गुलामी की एक नई तरकीब निकाली गई जिसे शर्तबंदी (अग्रीमेंट) कहा गया।[9] बाद में 'अग्रीमेंट' (Agreement) का अपभ्रंश रूप 'गिरमिट' पड़ गया। इसके अंतर्गत अधिकतम पाँच वर्ष की शर्तबंदी पर कामगारों को त्रिनीडाड एवं टोबैगो गयाना, सूरीनाम, मॉरीशस और फीजी जैसे देशों में भेजा गया।[10] इन गिरमिटिया मजदूरों का जीवन गुलामों से किसी प्रकार बेहतर नहीं था। प्रवासियों की दूसरी खेप, भारत की स्वतंत्रता के बाद, पेशेवर क्रार्मिकों के रूप में जहाँ अमेरिका, ब्रिटेन तथा कनाडा जैसे विकसित देशों में भेजा गया वहाँ इसके समानांतर खेप तेल समृद्ध खाड़ी देशों में कुशल और अर्द्धकुशल कामगारों के रूप में की गई। 1970 के बाद इन देशों में उच्च कुशल एवं पेशेवर लोग उच्च शिक्षा के लिए या वैज्ञानिक एवं तकनीकी पदों पर काम करने के लिए गए। इस प्रकार, भारत के प्रवासी समुदाय में आज की स्थिति में लगभग तीन करोड़ लोग सम्मिलित हैं और विश्व में चीन ही संभवतः एकमात्र ऐसा देश है जिसका प्रवासी समुदाय भारत जैसे विविध और विशाल है। चीन की आर्थिक प्रगति में प्रवासी चीनियों के महत्त्वपूर्ण योगदान से प्रभावित होकर समिति ने पुरजोर सिफारिश की कि इस विशाल प्रवासी भारतीय समुदाय से लाभ उठाने से पहले इनकी निम्नलिखित समस्याओं एवं चिंताओं का समाधान करना होगा[11]–

1. खाड़ी देशों में जाने वाले श्रमिकों के साथ भारत में भर्ती कंपनियाँ धोखाधड़ी करती हैं।
2. काम के दौरान मालिकों द्वारा उनके पासपोर्ट अपने कब्जे में रख लिए जाते हैं, उन्हें पूरी मजदूरी नहीं दी जाती और उनका दैहिक शोषण किया जाता है।
3. भारतीय दूतावासों से उन्हें पर्याप्त सहायता नहीं मिलती और भारत में उनके परिवारजनों की सुरक्षा नहीं दी जाती।
4. भारत लौटने पर उन्हें कस्टम अधिकारियों द्वारा पेरशान किया जाता है।
5. अन्य देशों की नागरिकता ग्रहण कर चुके भारतीय मूल के व्यक्तियों को भारत आगमन के लिए विदेशियों की तरह *वीज़ा* लेना पड़ता है।
6. प्रवासियों की सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक चिंताओं के समाधान के लिए भारत में उन्हें बहुत भटकना पड़ता है।
7. पूर्वी अफ्रीकी देशों, फीजी तथा अन्य देशों में भी भारतीय मूल के व्यक्तियों के सामने राजनैतिक/सामाजिक/जातीय आधार पर संकट आने की स्थिति में उनकी सहायता के भारत को आगे आना चाहिए तथा अनिवासी भारतीयों को भारत में मताधिकार प्राप्त होना चाहिए आदि।

## समिति की सिफारिशों पर भारत सरकार द्वारा किए गए पहल

प्रवासी भारतीयों के हित में *एल. एम. सिंधवी समिति* की उपर्युक्त सिफारिशों के आलोक में भारत सरकार ने पिछले वर्षों में इन समस्याओं के समाधान के लिए निम्नलिखित कदम उठाएँ हैं–[12]

1. खाड़ी देशों या अन्यत्र भी, आपत्ति में आए साधनहीन प्रवासियों की सहायता के लिए करीब 43 देशों में *भारतीय समुदाय कल्याण कोष* की स्थापना की गई है। इसमें अन्य के साथ-साथ, मुसीबजदा मजदूरों, घरेलू नौकर, नौकरानियों को रहने-खाने की व्यवस्था, सरकारी खर्च पर उन्हें भारत पहुँचाने की सुविधा और दुर्भाग्यवश मौत हो जाने पर पार्थिव शरीर को भारत लाया जाना शामिल है।
2. भारतीय मूल के व्यक्तियों को भारत की यात्रा के लिए लंबी अवधि का एकमुश्त *वीजा* एवं रहने की अवधि में छूट प्रदान करने वाला पीआईओ कार्ड दिया गया। बाद में इसका नवीकृत रूप *ओसीआई कार्ड* दिया जा रहा है। इससे भारतीय मूल के व्यक्ति लंबी अवधि तक बिना *वीजा* के भारत आ जा सकते हैं। यह योजना वर्ष 2005 से लागू है और अब तक आठ लाख से अधिक ओसीआई कार्ड जारी किए जा चुके हैं।
3. सैकड़ों वर्ष पूर्व गए प्रवासियों की चौथी-पाँचवीं पीढ़ी अपने पैतृक स्थान की खोज में बहुत पेरशानियों का सामना करती थी। इसके लिए वर्ष 2008 से *ट्रेसिंग द रूट्स* नाम की योजना चलाई जा रही है।
4. प्रवासी भारतीयों की युवा पीढ़ी को आधुनिक भारत का साक्षात्कार कराने के लिए 'भारत को जानो' (Know India program) चलाया जा रहा है। अलग-अलग राज्यों के सहयोग से चलाई जाने वाली योजना में 18 से 26 वर्ष के युवाओं को भारत की प्रायोजित यात्रा कराई जाती है। अब तक लगभग 17 *यात्रा -कार्यक्रम* आयोजित किए जा चुके हैं।
5. युवा पीढ़ी को भारत में उपलब्ध उच्च स्तरीय शिक्षा की सुविधा, देने के लिए, उच्च शिक्षा संस्थानों में उनके लिए स्थान आरक्षित किए गए हैं और प्रति वर्ष करीब 100 विधार्थियों को 5000 अमेरिकी डॉलर प्रति विधार्थी की दर से छात्रवृत्ति दी जाती है।
6. ओवरसीज इंडियन यूथ क्लब, स्टडी इंडिया प्रोग्राम आदि के द्वारा नई पीढ़ी को भारत से जोड़ने का काम किया जा रहा है।
7. वर्ष 2003 से लगातार *प्रवासी भारतीय दिवस* का आयोजन 7 से 9 जनवरी तक किया जाता है जिसमें भारत के प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, केंद्रीय मंत्री, राज्यों के मुख्यमंत्री तथा मंत्रालयों/विभागों के उच्चाधिकारी शामिल होते

हैं। प्रवासी भारतीय दिवस, एक उल्लेखनीय आयोजन बन गया है। अब तक दिल्ली में छह और मुंबई, हैदराबाद, चेन्नई और जयपुर में एक-एक प्रवासी भारतीय दिवस आयोजित किए जा चुके हैं।

8. लघु प्रवासी दिवसों की योजना भी शुरू की गई है। 2018 न्यूयॉर्क, सिंगापुर और कनाडा में ऐसे लघु प्रवासी दिवस मनाए गए हैं।
9. अपने-अपने प्रवास के देशों में उल्लेखनीय सफलताएँ प्राप्त करने वाले, मानव सेवा के क्षेत्र के काम करने वाले तथा भारत का नाम रोशन करने वाले व्यक्तियों/संस्थाओं को प्रति वर्ष राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित किया जाता है।
10. अनिवासी भारतीयों द्वारा भारतीय महिलाओं से विवाह के बाद विदेश ले जाकर उन्हें परेशान किए जाने की घटनाओं को देखते हुए *प्रवासी भारतीय कार्य मंत्रालय* द्वारा एक विशेष प्रकोष्ठ का गठन करके तथा अलग-अलग देशों के महिला संगठनों की सहायता से परित्यक्त/सताई गई महिलाओं के सहायतार्थ कदम उठाए जा रहे हैं।

## प्रवासी भारतीय मामले मंत्रालय और उसके जनादेश

*प्रवासी भारतीय मामले मंत्रालय* (एमओआईए) सभी अनिवासी भारतीयों (एनआरआई), भारतीय मूल के व्यक्तियों (पीआईओ) और भारत के विदेशी नागरिकों (ओसीआई) से संबंधित मामलों के लिए नोडल मंत्रालय है।[13] इसका उद्देश्य भारत और विदेशी भारतीयों के बीच पारस्परिक रूप से लाभप्रद और प्रतिकात्मक संबंध बनाए रखना और बढ़ावा देना है। यह मंत्रालय *चार* प्रमुख सिद्धांतों द्वारा निर्देशित है– 1. विदेशों में भारतीय समुदाय के विभिन्न अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए समाधान प्रस्ताव, 2. प्रवासी भारतीयों के साथ भारत के संबंधों को एक सामरिक आयात, 3. ज्ञान और संसाधन के मामले में प्रवासी निवेश समुदाय से संपर्क तथा 4. राज्य में सभी प्रवासियों की पहल के लिए आमंत्रण।

## प्रवासी भारतीय दिवस (पीबीडी)

9 जनवरी को प्रवासी भारतीय दिवस के रूप में इसलिए मान्यता दी गई है कि इसी दिन 1915 में महात्मा गाँधी दक्षिणी अफ्रीका से भारत लौटे थे और विश्वभर में प्रवासी भारतीयों और औपनिवेशिक शासन के तहत लोगों के लिए भारत के सफल स्वतंत्रता संग्राम के लिए प्रेरणा बने। भारत को इसके विशाल प्रवासी समुदाय के साथ जोड़ने और उनके ज्ञान और कौशल को *साझा मंच* पर लाने के लिए प्रवासी भारतीय दिवस मनाया जाता है जो *डायस्पोरा* से संपर्क का एक प्रमुख कार्यक्रम है। इसके माध्यम से हम अधिक संवादपरक तरीके से *डायस्पोरा* तक पहुँचते हैं और उनके हित और सरोकार से संबंधित मुद्दों पर उनकी राय जान पाते हैं। इसमें अपने क्षेत्र में विशेष उपलब्धि प्राप्त करने वाले भारतवंशियों को *प्रवासी भारतीय सम्मान* से नवाजा जाता

है। इसके उद्देश्य हैं– (1) अप्रवासी भारतीयों की भारत के प्रति सोच, उनकी भावनाओं की अभिव्यक्ति के साथ ही उनकी अपने देशवासियों के साथ सकारात्मक बातचीत के लिए एक मंत्र उपलब्ध कराना, (2) भारतवासियों को अप्रवासी बंधुओं की उपलब्धियों के बारे में बताना तथा अप्रवासियों को देशवासियों की उनसे अपेक्षाओं से अवगत कराना, (3) विश्व के 110 देशों में अप्रवासी भारतीयों का एक नेटवर्क बनाना, (4) भारत का दूसरे देशों से बनने वाले मधुर संबंध में अप्रवासियों की भूमिका के संबंध में आम लोगों को बताना, (5) भारत की युवा पीढ़ी को अप्रवासी भाईयों से जोड़ना, तथा (6) भारतीय श्रमजीवियों को विदेश में किस तरह की कठिनाइयों का सामना करना होता है, के बारे में विचार-विमर्श करना। प्रवासी भारतीय दिवस की शुरुआत 2003 से हुई थीं। जनवरी 2018 तक निम्नलिखित *15* प्रवासी भारतीय दिवस मनाए गए हैं–

1. 2003 नई दिल्ली
2. 2004 नई दिल्ली
3. 2005 मुंबई, महाराष्ट्र
4. 2006 हैदराबाद
5. 2007 नई दिल्ली
6. 2008 नई दिल्ली
7. 2009 चेन्नई
8. 2010 नई दिल्ली
9. 2011 नई दिल्ली
10. 2012 जयपुर, राजस्थान
11. 2013 कोच्चि
12. 2014 नई दिल्ली
13. 2015 गाँधीनगर, गुजरात
14. 2016 दिल्ली
15. 2017 बैंगलुरु, कर्नाटक
16. 2018 सिंगापुर
17. 2019 वाराणसी (प्रस्तावित)

## प्रवासी भारतीय समारोह 2017 के मुख्य बिंदु

जनवरी 2017 में प्रवासी भारतीय समारोह का आयोजन बेंगलुरू में किया गया। इस समारोह में विश्वभर के छह हजार से अधिक प्रवासी भारतीयों ने हिस्सा लिया। यह समारोह विदेशों में रह रहे भारतीय समुदाय से मिलने-जुलने और संपर्क बनाने का

मौका था। इस प्रवासी भारतीय समारोह का विषय 'प्रवासी भारतीय संबंधों के नए आयाम' था। समारोह का उद्घाटन करते हुए प्रधानमंत्री *नरेंद्र मोदी* ने कहा, ''हम पासपोर्ट का रंग नहीं देखते, बल्कि खून का रिश्ता देखते हैं। प्रवासी भारतीयों पर हमें गर्व है। वे जहाँ भी गए, अपनी मेहनत और काबिलियत से अपनी पहचान बनाई''। इस समारोह के मुख्य अतिथि पुर्तगाल के प्रधानमंत्री डॉ. एंटोनियो कोस्टा थे। इस समारोह के दौरान प्रवासी भारतीयों के अनेक मुद्दों पर चर्चा हुई– (1) भारतीय छात्रों तक पहुँच, जो विदेश में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं और भारत के श्रेष्ठ दूत हैं, (2) भारत में बदलाव के लिए युवा प्रवासियों की भूमिका, (3) भविष्य के लिए जुड़ाव को बनाना, (4) अबाधित नवाचार के माध्यम से विकास को गति प्रदान करना तथा (5) भारत को 'ग्लोबल हेल्थ तथा वेलेनस हब' के रूप में प्रयुक्त करना।

## भारतीय डायस्पोरा के साथ संबद्धता

*भारतीय विदेश मंत्रालय* इसके लिए अनेक कार्यक्रमों, उत्सवों और योजनाओं का आयोजन करता है। इसके द्वारा प्रवासी भारतीय समुदाय खासतौर पर व्यथित भारतीय और प्रवासी भारतीय कामगारों के विभिन्न कमजोर और असुरक्षित वर्गों के कल्याण और संरक्षण को सुनिश्चित करने के लिए विशेष ध्यान दिया जाता है। इन प्रवासी प्रवाहों के परिणामस्वरूप भारतीय डायस्पोरा के विशाल समुदाय का निर्माण हुआ है जिसमें पूर्वी एशिया, मध्य पूर्व एशिया, दक्षिण और पूर्वी अफ्रीका, यूरोप, उत्तरी अमेरिका, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अमेरिका के उत्तरी भाग और कैरीबीयाई द्विपों में बसे भारतीय मूल के लोग शामिल हैं। विगत वर्षों में भारत सरकार ने विदेशों में भारतीय डायस्पोरा के साथ नए संपर्क स्थापति करने संबंधी अपने दृष्टिकोण को जारी रखा। प्रधानमंत्री और विदेश मंत्री के विदेशी दौरों से विदेशी भारतीय समुदाय तक पहुँचने, भारत में जारी विकास और आर्थिक पहलों के बारे में उन्हें जानकारी देने और भारत के विकास की कहानी में अपना योगदान देने के लिए उन्हें आमंत्रित करने का अवसर मिला है। भारतीय डायस्पोरा ने भारत में चल रहे प्रमुख कार्यक्रमों जैसे स्वच्छ भारत मिशन, राष्ट्रीय स्वच्छ गंगा मिशन, मेक इन इंडिया और स्टार्ट अप इंडिया आदि के बारे में रूचि और उत्साह दर्शाया है।

## विदेश मंत्रालय के साथ विलय

उल्लेखनीय है कि प्रधानमंत्री के अनुमोदन से *प्रवासी भारतीय कार्य मंत्रालय* का *विदेश मंत्रालय* के साथ विलय कर दिया गया है। भारतीय डायस्पोरा से संबंधित जारी कार्य में न्यूनतम व्यवधान हुए है। यह सुनिश्चित करते हुए दो मंत्रालयों का आसानी से विलय किया गया। यह विलय सरकार के 'न्यूनतम सरकार अधिकतम सुशासन' के लक्ष्य के अनुरूप है। यह एक प्रशासनिक निर्णय है जो सुशासन की दिशा में एक अच्छा कदम है। इससे विदेश मंत्रालय भी भारतीय डायस्पोरा, विशेष रूप से विदेशी भारतीय

कामगारों के लिए विभिन्न नीतियों, योजनाओं और कार्यक्रमों का बेहतर कार्यान्वयन कर सकेगा।

## पन्द्रहवाँ प्रवासी भारतीय दिवस

6-7 जनवरी 2018 को *15वाँ* प्रवासी भारतीय दिवस (पीबीडी) पहला ऐसा अवसर था जिसका आयोजन भारत से बाहर सिंगापुर में किया गया। इस समारोह में 'आसियान भारतीय प्रवासी दिवस' मरीना बे सैंड्रस एक्सपो एवं कन्वेंशन सेंटर का भी आयोजन किया गया, जिसका उद्देश्य भारतीय मूल के लोगों और भारत के लोगों के मध्य संबंध स्थापना, पारस्परिक विचार विनिमय को प्रोत्साहन देने तथ प्रवासी भारतीय समुदाय को भारत के सामाजिक-आर्थिक विकास से संबद्ध होने हेतु प्रेरित करना था। इस सम्मेलन का थीम– 'प्राचीन मार्ग, नई यात्रा : गतिशील आसियान– भारत साझेदारी में डायस्पोरा' (Ancient Route, New Journey : Diaspora in the Dynamic Asean India Partnership) था।[14] समारोह में मुख्य अतिथि भारतीय विदेश मंत्री सुषमा स्वराज थीं।

## प्रवासी भारतीय सम्मान पुरस्कार (पी बी एस ए)

प्रवासी भारतीय सम्मान पुरस्कार, प्रवासी भारतीय दिवस सम्मेलन का हिस्सा है यह पुरस्कार भारत सरकार द्वारा 2003 से दिया जा रहा है। प्रवासी भारतीय सम्मान पुरस्कार प्रवासी भारतीयों को दिया जाने वाला सबसे प्रतिष्ठित सम्मान है। प्रवासी भारतीय सम्मान पुरस्कार की संशोधित मार्गदर्शिकाओं के अनुसार यह पुरस्कार किसी अप्रवासी भारतीय, भारतीय मूल के व्यक्ति अथवा संगठन अथवा संस्थान, जिसे अप्रवासी भारतीयों अथवा भारतीय मूल के लोगों द्वारा स्थापित किया गया हो, और जिसने निम्नलिखित कार्य किए हों–

1. भारत की विदेशों में बेहतर सूझबूझ के प्रति योगदान और भारत के उद्देश्यों और चिंताओं के प्रति वास्तविक रूप में सहायता,
2. डायस्पोरा के कल्याण के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान,
3. लोकोपकार और धर्मार्थ कार्य तथा भारत और विदेशों में सामाजिक और मानवीय कार्यों में उल्लेखनीय योगदान,
4. आर्थिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक क्षेत्रों में भारत और इसके डायस्पोरा के बीच संबंधों को सुदृढ़ बनाने में उल्लेखनीय योगदान तथा
5. किसी भी क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य में अपनी अलग पहचान, जिससे उनको निवास के देश में भारत की प्रतिष्ठा बढ़ी हो अथवा अपने कौशल से अपनी पहचान, जिससे उस देश में भारत का सम्मान बढ़ा हो।

पुरस्कार के लिए नामांकन विदेशों में भारतीय राजनयिक मिशनों के प्रमुखों, प्रवासी भारतीय कार्य मंत्रालय की संसदीय स्थायी समिति के अध्यक्ष, प्रवासी भारतीय कार्य मंत्रालय द्वारा यथानिर्णित राष्ट्रव्यापी स्तर की प्रमुख एसोसिएशन और प्रवासी भारतीय सम्मान पुरस्कार के प्राप्तकर्ताओं द्वारा किए जा सकते है। उल्लेखनीय भारतीय मूल के 81 व्यक्तियों और एक प्रवासीय भारतीय संगठन *राष्ट्रीय भारतीय संस्कृति संघ*, त्रिनिडाड एवं टोबेगो को इस सम्मान से सुशोभित किया गया है।[15]

## भारत के प्रवासी नागरिकों के लिए बाहरी नागरिकता (ओ सी आई) योजना

प्रवासी भारतीयों की दोहरी नागरिकता की लगातार मांग विशेषकर उत्तर अमेरिका और अन्य विकसित देशों के प्रवासी भारतीयों की मांग को देखते हुए तथा सरकार की प्रवासी भारतीयों की आशाओं और अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए अपनी प्रतिबद्धता को निभाते हुए अगस्त 2005 में प्रवासी भारतीयों के लिए *'दोहरी नागरिकता'* योजना के *नागरिकता अधिनियम, 1995* में संशोधन के बाद लागू किया गया। इस योजना का शुभारंभ हैदराबाद में वर्ष 2006 में आयोजित *प्रवासी भारतीय दिवस* के दौरान किया गया था। इस योजना के अंतर्गत पाकिस्तान, बांग्लादेश अथवा केंद्र सरकार द्वारा सरकारी राजपत्र में निर्दिष्ट किए जाने वाले देश को छोड़कर सभी देशों के भारतीय मूल के सभी व्यक्तियों, जो कि भारत के नागरिक थे अथवा 26 जनवरी 1950 अथवा उसके बाद भारत के नागरिक बनने के लिए पात्र थे, को *प्रवासी भारतीय* नागरिक के रूप में पंजीकरण कराने की सुविधा देने की व्यवस्था है। भारत की पंजीकृत प्रवासी नागरिकों को बहु-प्रवेश, बहुआयामी भारत भ्रमण के लिए आजीवन *वीजा* की पात्रता है। भारत के पंजीकृत प्रवासी नागरिक को क्षेत्रीय विदेश पंजीकरण अधिकारी के यहाँ किसी भी अवधि तक भारत में रहने के लिए पंजीकरण की आवश्यकता नहीं होगी। उसे अप्रवासी भारतीय के समान आर्थिक, वित्तीय तथा शैक्षणिक क्षेत्रों में सभी सुविधाएँ उपलब्ध होंगी। मंत्रालय पंजीकृत प्रवासी भारतीयों के लाभ के लिए अन्य कार्य भी कर रहा है। मंत्रालय ने अधिसूचित किया है कि उन्हें भारत के अंदर घरेलू क्षेत्र में हवाई टिकट शुल्क में, नेशनल पार्क आदि में तथा देश में भारतीय बच्चा गोद लेने के मामले में अप्रवासी भारतीयों के समान माना जाएगा। जुलाई 2008 तक भारतीय मूल के 2,81,000 लोगों ने पंजीकरण करवाया। 5 जनवरी 2009 से निम्नलिखित मामलों के संबंध में प्रवासी भारतीय नागरिकता को अप्रवासी भारतीयों के समान माना गया–

1. भारत में तीन राष्ट्रीय स्मारकों, ऐतिहासिक स्थलों तथा संग्रहालयों के लिए प्रवेश शुल्क

2. संबंधित अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार भारत में निम्न कार्य करने पर– डॉक्टर, दंत-चिकित्सक, नर्स तथा फार्मासिस्ट, वकील, वस्तुविद्, चार्टर्टिड एकाउंटेंट।
3. संबंधित अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार उन्हें दाखिले के लिए आल इंडिया प्री-मेडिकल तथा ऐसी ही परीक्षाओं में बैठने की अनुमति होगी। अधिसूचना के उचित तथा सुचारू कार्यान्वयन के लिए संबद्ध मंत्रालयों/विभागों/एजेंसियों को आवश्यक प्रावधान करने के लिए कहा गया। 31 जुलाई 2009 तक भारतीय मूल के 45.56 लाख व्यक्तियों ने भारतीय प्रवासी नागरिकता के तहत पंजीकरण कराया गया।

## अनिवासी भारतीयों (एन आर आई) को मतदान का अधिकार

प्रवासी भारतीय पासपोर्ट धारकों को मतदान का अधिकार देने के लिए *लोक प्रतिनिधित्व संशोधन अधिनियम 2010* पारित किया गया। इस संबंध में 3 फरवरी 2011 को अधिसूचना जारी की गई जो विदेशों में रह रहे भारतीयों को पासपोर्ट पर अंकित भारत में आवासीय पते के अनुसार मनदाता सूची में अपना नाम डलवाने का अधिकार देती है। विदेशों में रह रहे मतदाताओं को निर्धारित प्रपत्र में अपना आवेदन संबंधित पंजीयन अधिकारी (आरओ) को भेजने की आवश्यकता है। नियमों के मुताबिक आवेदकों को स्व-अभिप्रमाणित दस्तावेज भेजने की अनुमति है। भारतीय चुनाव आयोग ने एक प्रक्रिया की शुरुआत की है, जो प्रवासी मतदाताओं को इलेक्ट्रॉनिक मत पत्र के माध्यम से विदेश स्थित अपने निवास स्थान से ही अपने मताधिकार का प्रयोग करने की अनुमति देती है।

## प्रवासी भारतीयों के लिए अन्य योजनाएँ एवं नरेंद्र मोदी का योगदान

प्रवासी भारतीयों के संबंध में भारत की विदेश नीति में निरंतर सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं। *राजीव गाँधी* ने 1984 में 'इंडियन ओवरसीज़ अफेयर डिपार्टमेंट' का गठन किया तथा *सैम पित्रोदा* को इसका अध्यक्ष बनाया। वर्ष 1999 में *एनडीए* सरकार द्वारा *'चेन्नई घोषणापत्र'* में प्रवासी भारतीयों को भारत की *'ग्रेट इंडियन फैमिली'* बताया गया तथा इनको सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, भावनात्मक आदान-प्रदान के लिए अपनी मातृभूमि की सहायता करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। इसके साथ ही, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को सशक्त बनाने पर बल दिया गया। इस नीति को और कारगर बनाने के लिए *एनडीए* सरकार द्वारा *एल. एम. सिंघवी* की सिफारिश पर 2003 से प्रवासी भारतीय दिवस का आयोजन किया जाने लगा। भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के कुशल नेतृत्व में प्रवासी भारतीयों के संबंध में भारत की विदेश नीति में व्यापक सकारात्मक परिवर्तन को अंजाम दिए जाने का प्रयास किए जाने लगा। इस दिशा में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का व्यक्तिगत योगदान सराहनीय रहा।

नरेंद्र मोदी सिडनी से लेकर न्यूयॉर्क और नैरोबी से लेकर दुबई, जहाँ भी गए वहाँ रहने वाले भारतीय समूह के लोगों से वे गर्मजोशी से मिले। अपनी विदेश यात्राओं में नरेंद्र मोदी ने प्रवासी भारतीयों की बड़ी-बड़ी जनसभाओं को संबोधित किया और उनके मसलों को उन देशों की सरकारों के सामने उठाया। यह नरेंद्र मोदी के कठिन और दृढ़ संकल्प का ही परिणाम था कि वर्ष 2015 में यमन में फँसे हजारों भारतीय सुरक्षित अपने देश लौट आए। नरेंद्र मोदी की *एनडीए* सरकार भारत में निवेश, अवसंरचना विकास, विश्व विद्यालयों में भूमिका (ज्ञान) तथा भारतीय नीति निर्माण एवं क्रियान्वयन व नियोजन में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करने वाले प्रवासी भारतीयों को विदेश नीति के द्वारा भारत से जोड़ने का निरंतर प्रयास कर रही है। भारत सरकार ने प्रवासी भारतीयों के साथ अपने संबंध को बनाए रखने में अब तक जो कार्य किया है, वे निम्नलिखित हैं:–

1- **{k=h; i;okl h Hkkjrh; fnol** – विदेश मंत्रालय उन देशों में क्षेत्रीय प्रवासी भारतीय दिवस का आयोजन करता है जहाँ *डायस्पोरा* आबादी काफी अधिक है और इसका मकसद उस *डायस्पोरा* से संपर्क स्थापित करना होता है जो भारत में *पीबीडी* में भाग लेने मे सक्षम नहीं है। न्यूयॉर्क, सिंगापुर, द हेग, डर्बन, टोरंटो, मॉरिशस, सिडनी, लंदन और एंजिल्स में अब तक *नौ* आरपीबीडी आयोजित किए गए हैं। *नौवाँ* आरपीबीडी 14-15 नवंबर 2015 के दौरान लॉस एंजिल्स में मनाया गया जिसमें प्रवासी भारतीय कार्य राज्यमंत्री जनरल वी. के. सिंह ने भारतीय प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व किया था।

2- **Hkkjr dk tkuk dk;Øe ¼dvkbZih½** – मंत्रालय द्वारा प्रत्येक वर्ष 2-3 'भारत जानो कार्यक्रम' का आयोजन किया जाता है। यह कार्यक्रम पहले *'इनटर्नशिप प्रोग्राम' फॉर डायस्पोरा यूथ'* के नाम से जाना जाता था।[16] इसका उद्देश्य 18-26 आयु वर्ग के भारतीय डायस्पोरा को देश द्वारा किए गए विकास और प्राप्त उपलब्धियों के संबंध में परिचित कराकर उन्हें अपने पूर्वजों की धरती के करीब लाना है। यह कार्यक्रम भारतीय मूल के छात्रों और युवाओं को भारत का भ्रमण करने, अपने विचारों, उम्मीदों और अनुभव को साझा करने और समकालीन भारत के साथ निकटता से जुड़ने का अनोखा मंत्र प्रदान करता है। मंत्रालय ने अब तक 1053 प्रवासी भारतीय युवाओं की भागीदारी से 34 *के आई पी* का आयोजन किया है। 33वाँ *के आई पी* 29 जून से 19 जुलाई 2015 तक आयोजित किया गया जिसमें गोवा साझेदार राज्य था। इसमें फिजी, फ्रांस, इंडोनेशिया, मलेशिया, म्यांमार, सिंगापुर, दक्षिण अफ्रीका, त्रिनिदाद और टोबेगो के 38 प्रतिभागियों ने भाग लिया। 34वाँ केआईपी 17 अगस्त से 6 सितंबर 2015 तक अयोजित किया गया जिसमें पंजाब साझेदार राज्य था।

3- **iokl h Hkkjrh; cPpk d fy, Nk=ofÙk ;kstuk**– शैक्षिक सत्र 2006-07 में इस योजना का शुभारंभ किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य भारत में उच्च शिक्षा को प्रवासी भारतीय बच्चों की पहुँच में लाना और भारत को शिक्षा के लिए केंद्र के रूप में संबंधित करना है। वर्तमान में मंत्रालय द्वारा भारतीय मूल के व्यक्तियों और प्रवासी भारतीयों के 100 बच्चों को इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी, कला, वाणिज्य, प्रबंधन, पत्रकारिता, होटल प्रबंधन, कृषि पशुपालन इत्यादि क्षेत्र में छात्रवृत्तियाँ दी जा रही हैं।[17]

4- **Hkkjrh; ey d ykxk d fy, fo'ofo|ky; dh LFkkiuk**– प्रवासी भारतीयों के लिए बनी उच्च स्तरीय समिति की संस्तुति तथा उच्चतम स्तर पर दी गई वचनबद्धता को ध्यान में रखते हुए सरकार ने भारतीय मूल के लोगों तथा प्रवासी भारतीयों के बच्चों को लाभान्वित करने के लिए विश्वविद्यालय की स्थापना की। इस विश्वविद्यालय का स्तर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत 'डीम्ड विश्वविद्यालय' का होगा। इस विश्वविद्यालय की स्थापना कर्नाटक, बैंगुलुरू में मणिपाल उच्च शिक्षा ट्रस्ट अकादमी, मणिपाल द्वारा की जाएगी।

5- **Hkkjr v/;;u dk;Øe**– भारत अध्ययन कार्यक्रम प्रवासी युवाओं को भारत के इतिहास, विरासत, कला, संस्कृति, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक विकास आदि की जानकारी प्राप्त करने हेतु एक भारतीय विश्वविद्यालय में अल्पावधि पाठ्यक्रम के लिए सक्षम बनाता है। चौथे भारत अध्ययन कार्यक्रम का आयोजन 20 जनवरी 2016 के दौरान सिम्बओसिस विश्वविद्यालय पुणे में किया गया।

6- **ey fuokl LFkku dh [kkst**– विदेश मंत्रालय अक्टूबर 2008 से मूल निवास स्थान की खोज नामक एक योजना चला रहा है ताकि भारतीय मूल के लोगों की भारत में मूल स्थान की खोज में सहायता की जा सके। भारतीय प्रवासी दिवस जनवरी 2015 के दौरान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी घोषणा की थी 'भारत को जानिए' शीर्षक वाले एक आन लाइन क्विज़ का आयोजन किया जाएगा ताकि प्रवासी भारतीय और युवाओं में भारत के बारे में जानकारी को बढ़ाया जा सके।

7- **iokl h Hkkjrh;k dk Hkkjr fodkl ifr"Bku**– प्रवासी भारतीयों का भारत विकस प्रतिष्ठान (आईडीउफ-ओआई) एक गैर लाभकारी ट्रस्ट है जिसकी स्थापना प्रवासी भारतीयों को भारत में सामाजिक और विकास परियोजनाओं के साथ संबद्ध करने के लिए की गई है। इस ट्रस्ट को विदेशी योगदान विनियम अधिनियम (एफसीआरए) 2010 के प्रावधानों से छूट है।

**8- iokl h Hkkjrh; lfo/kk dn ¼vkvkb,Q l h½**– प्रवासी भारतीय सुविधा केंद्र (ओआईएफसी) एक अलाभकारी संस्था है। इसकी स्थापना भारतीय उद्योग परिसंघ की भागीदारी से की गई है। यह केंद्र भारत में प्रवासी भारतीयों के निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए एकल खिड़की के रूप में काम करता है और प्रवासी भारतीयों को विविध प्रकार की व्यापार परामर्श सेवाएँ और ज्ञान नेटवर्किंग की सुविधा प्रदान करता है।

**9- iokl h Hkkjrh;k d fy, vU; fofo/k ;k tuk,**– *प्रवासी भारतीय मामला मंत्रालय* ने अन्य विविध निम्नलिखित योजनाओं के माध्यम से भी प्रवासी भारतीयों के साथ संपर्क बढ़ाने का प्रयास किया है– (1) *प्रवासियों का अनिवार्य बीमा योजना*– 2003 में प्रवासी भारतीय दिवस के अवसर पर सरकार ने रोजगार के लिए विदेश जा रहे प्रत्येक प्रवासी के लिए अनिवार्य बीमा योजना की घोषणा की। इस घोषणा के अनुपालन में 25 दिसंबर 2003 से प्रवासी भारतीय बीमा योजना को लागू किया गया। पीबीबीबाई 2003 को उद्यतन करके प्रवासी भारतीय बीमा योजना 2006 बना दिया गया। इसे 1 फरवरी 2006 से लागू कर दिया गया और 28 फरवरी 2008 के आदेश के अंतर्गत इस योजना को प्रवासी श्रमिकों को अधिक लाभ देने के उद्देश्य से उन्नत किया गया, (2) *भारतीय प्रवासी रोजगार परिषद*& प्रवासी भारतीय मामले मंत्रालय ने प्रवासी रोजगार संवर्द्धन के लिए एक परिषद की स्थापना की है। इसका संशोधित नाम *भारतीय प्रवासी रोजगार परिषद* (आईसीओई) रखा गया है। यह परिषद बाजार अनुसंदान करने, अंतरराष्ट्रीय श्रम बाजार में रोजगार के अवसरों का पता लगाने, बाजार में माँग को देखते हुए कौशल विकसित करने, गतिशील अंतरराष्ट्रीय श्रम बाजार के प्रत्युत्तर में नीतियाँ तय करने और वैश्वीकरण के जनसांख्यिक लाभों को भारतीय प्रवासियों तक पहुँचाने के लिए 'थिंक टैंक' यानी वैचारिक संगठन के रूप में कार्य करेगी, (3) *कल्याण कोष*– प्रवासी भारतीय मामले मंत्रालय ने सभी एसीआर देशों के भारतीय मिशनों की इच्छानुसार 'भारतीय समुदाय कल्याण कोष (आईसीडब्ल्यूएफ)' की स्थापना की है, (4) *श्रम गतिशीलता भागीदारी*& इसके जरिए द्विपक्षीय सहयोग के लिए एक प्रभावकारी फ्रेमवर्क बनाया जा सकता है। प्रवासी भारतीय मामले मंत्रालय यूरोपीय संघ में महत्त्वपूर्ण लक्षित देशों के साथ श्रम गतिशीलता भागीदारी कायम करने के लिए उपर्युक्त उपाय कर रहा है। हाल ही में श्रम गतिशीलता भागीदारी के लिए डेनमार्क के साथ एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए। मंत्रालय ने स्वीडन और फ्रांस के साथ भी श्रम गतिशीलता समझौतों के लिए बातचीत की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया,[18] (5) *प्रवासी भारतीय केंद्रों की स्थापना*– सरकार ने विदेशों में काम

कर रहे भारतीय मजदूरों को चिकित्सा कानूनी और वित्तीय परामर्श उपलब्ध कराने के लिए दुबई, कोआलालम्पुर तथा न्यूयॉर्क के तीन भारतीय केंद्र स्थापित करने की स्वीकृति प्रदान की है, (6) *प्रस्थान पूर्व ओरिएंटेशन और कौशल उन्नयन*– प्रवासी भारतीय मामलों के मंत्रालय ने राज्य सरकारों के साथ मिलकर 2006–07 के दौरान प्रवासी श्रमिकों के लिए प्रस्थान पूर्व ओरिएंटेशन और कुशलता उन्नयन प्रशिक्षण कार्यक्रम की शुरूआत की। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य अंतरराष्ट्रीय श्रम बाजार की आवश्यकताओं को पूरा करने और विश्व स्तर पर प्रतियोगिता करने लायक बनाने में श्रमिकों की मदद करना है, (7) *मानव श्रम पर द्विपक्षीय समझौता*– भारतीय श्रमिकों के संरक्षण और उनकी खुशहाली सुनिश्चित करने के लिए *प्रवासी भारतीय मामले मंत्रालय* ने संयुक्त अरब अमीरात, कुवैत, ओमान, बहरीन और मलेशिया के साथ समझौता ज्ञापनों पर हस्ताक्षर किए हैं। इसके आलोक में भर्ती और रोजगार की शर्तें दोनों देशों के कानूनों के अनुरूप होंगी और मेजबान देश संगठित क्षेत्र में कामगारों के कल्याण को बढ़ावा देने के लिए वैद्यानिक और प्रशासनिक उपाय करेंगे। इसके अतिरिक्त *मंत्रालय* ने बेल्जियम के साथ द्विपक्षीय सामाजिक समझौते पर हस्ताक्षर किए है। भारत-बेल्जियम समझौता बेल्जियम में काम करने वाले भारतीय श्रमिकों को पारस्परिक आधार पर लाभ प्रदान करता है। इस संबंध में फ्रांस और जर्मनी के साथ-साथ अन्य कई देशों के साथ भी द्विपक्षीय सामाजिक समझौते संपन्न हुए है।[19]

## भारत के विकास में प्रवासी भारतीयों का योगदान

वैश्विक स्तर पर प्रवासी भारतीयों की मौजूदगी यह स्पष्ट करती है कि प्रवासी भारतीय विश्व के विभिन्न देशों में वहाँ के आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। गत वर्षों में प्रवासी भारतीय सम्मेलनों के माध्यम से भारतवंशियों को भारत के साथ जोड़ने का प्रयास किया गया है। भारत सरकार की पहल से इन्हें सिर्फ अपनी जड़ों को समझने और इससे जुड़ने का ही अवसर नहीं मिला है वरन् इसके चलते विश्वभर के भारतवंशी भी एक-दूसरे से जुड़ रहे हैं। भारत के बाहर अलग-अलग देशों के भारतवंशियों के बीच रिश्ते गहरा रहे हैं और वे पारस्परिक व्यापारिक-सांस्कृतिक साझेदारी कर रहे हैं। यह भारत की अगुवाई का ही परिणाम है कि वैश्विक स्तर पर *वैश्विक भारतीय परिवार* आकार ले रहा है। विभिन्न राज्यों की राजधानियों में भिन्न-भिन्न प्रवासी भारतीय दिवस समारोह के आयोजन की परिकल्पना मूल रूप से प्रवासी भारतीय का निवेश आकर्षित करने के भारत सरकार की ओर से की गई है। 10वें प्रवासी भारतीय दिवस (2012) के अवसर पर भारतीय राष्ट्रपति *प्रतिभा देवी पाटिल* ने प्रवासी भारतीयों से कहा कि वे स्वास्थ्य, शिक्षा और कौशल विकास के कार्यों में सक्रियता के साथ निवेश में भागीदारी निभाकर देश के विभिन्न क्षेत्रों के विकास में

हाथ बँटायें। तीन दिवसीय प्रवासी भारतीय सम्मेलन के समापन समारोह को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि भारत में एक करोड़ से भी ज्यादा लोग गरीबी की रेखा के नीचे जीवन-यापन करने को बिबस है। उन्होंने देश के बाहर रह रहे भारतीयों से अपील की कि भारत के विकास और प्रगति के लिए वे एक भागीदार के रूप में आगे आवें। तत्कालीन वित्त मंत्री *प्रणव मुखर्जी* ने प्रवासी भारतीयों से देश की प्रगति में अपना योगदान देने का आग्रह करते हुए कहा कि उनके इस प्रयास से देश के सामाजिक विषमता को कम करने में मदद मिल सकेगी।

## भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रवासी भारतीयों का बढ़ता योगदान

जयपुर के *10वें प्रवासी भारतीय दिवस* सम्मेलन के दौरान अनेक प्रवासी भारतीयों द्वारा भारत में निवेश की इच्छा व्यक्त की गई। प्रवासी भारतीय दिवस समारोह में भाग लेने आए अधिकांश प्रवासियों का यह कहना था कि भारत में हो रहे विकास के चलते वे स्वदेश लौटना चाहते हैं। कनाडा से आए *कमल सिंह* का कहना था ''मैं कनाडा से आया हूँ , जहाँ मंदी ने आर्थिक व्यवस्था को वास्तव में प्रभावित किया है।'' दक्षिण अफ्रीका से आए *प्रो. बनवारी लाल मील* का कहना था कि प्रवासी भारतीय लोग वास्तव में यहाँ आना चाहते हैं।[20] प्रवासी भारतीयों की भारत में निवेश की चाहत को जयपुर के प्रवासी कारोबारियों ने शुभ शुरुआत बताई।

देश के विकास में प्रवासियों ने अबतक बढ़चढ़कर हिस्सा लिया है। उन्होंने भारतीय अर्थव्यवस्था में *69 अरब डॉलर* का योगदान दिया है।[21] *विश्व बैंक* की 'माइग्रेशन ऐंड रेमिटेंस' रिपोर्ट 2018 के अनुसार भारत में विदेशी मुद्रा भेजने के मामले में प्रवासी भारतीय सबसे आगे रहे हैं। इस रिपोर्ट के अनुसार प्रवासी भारतीयों ने वर्ष 2018 में 80 अरब डॉलर भारत भेजे।[22] भारतीय प्रवासियों द्वारा भारत भेजे गए कुल धन का 75 फीसदी से अधिक हिस्सा 10 बड़े देशों में कमाया गया है। इन देशों में अमेरिका, सऊदी अरब, रूस, संयुक्त अरब अमीरात, जर्मनी, कुवैत, फ्रांस, कतर, ब्रिटेन और ओमान शामिल है।[23] रिपोर्ट में बताया गया है कि विभिन्न देशों के प्रवासियों द्वारा विकासशील देशों की अधिकारिक रूप से भेजा गया धन 2018 में 10.8 प्रतिशत से बढ़कर 528 अरब डॉलर के रिकॉर्ड स्तर पर पहुँच गया है। पिछले तीन वर्षों में भारतीय प्रवासियों द्वारा भारत भेजे गए धन में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है[24]। ये प्रवासी देश की बहुत बड़ी पूँजी हैं। विश्व के 200 देशों में रह रहे करीब तीन करोड़ से अधिक प्रवासी भारतीय विभिन्न देशों में अपनी अहम भूमिका निभाते हुए भारतीय अर्थव्यवस्था को भी सुदृढ़ कर रहे हैं। ''कई बार यह देखा गया कि जब भी देश के विदेशी मुद्रा कोष में कमी आई और देश की मुद्रा रुपया कमजोर हुआ है, तब प्रवासी भारतीयों द्वारा स्वदेश भेजे गए धन से भारतीय रुपया स्वतः ही स्थिर होने की प्रवृत्ति की ओर बढ़ा है''।[25]

## निष्कर्ष

प्रवासी भारतीयों के उपर्युक्त विश्लेषण से निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि जहाँ-जहाँ भारतीय बसे हैं, वहाँ उन्होंने आर्थिक तंत्र को मजबूती प्रदान करते हुए बहुत कम समय में उन देशों में उन्होंने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। मजदूर, व्यापारी, शिक्षक, अनुसंधानकर्ता, डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, प्रबंधक तथा प्रशासक आदि विभिन्न रूपों में अपनी जिम्मेवारियाँ निभाते हुए वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान बनाते हुए उन्होंने भारत के कीर्तिमान को आगे बढ़ाया है। कई देशों में वहाँ के मूल निवासियों की अपेक्षा भारतवंशियों की प्रति व्यक्ति आय ज्यादा है। वैश्विक स्तर पर सूचना तकनीक के क्षेत्र में हुई क्रांति में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है जिसके परिणामस्वरूप विदेशों में भारत की छवि निखरी है। प्रवासी भारतीयों की कामयाबी और सफलता के चलते ही आज भारत विश्व में *आर्थिक महाशक्ति* के रूप में उभर रहा है। ऐसे प्रवासी भारतवंशियों से गहरा रिश्ता बनाकर देश अनेक क्षेत्रों में आगे बढ़ सकता है। भारत का प्रवासी वैदेशिक मंत्रालय इस दिशा में सकारात्मक पहल कर सतत् आगे बढ़ रहा है।

## संदर्भ

1. प्रवासी भारतीय : https://hi.m.wikipedia.org
2. ग्लोरिया आईन्द : भारतीय प्रवासी, *भारतीय राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका,* वर्ष-दशम, अंक द्वितीय, जुलाई-दिसंबर, 2018, पृ. 430
3. विकीर्णन (डायस्पोरा) विकीपीडिया : https://hi.m.wikipedia.org>...
4. उपरोक्त
5. प्रवासी भारतीय दिवस-संकल्पना और.....: Pib.nic.in.>newsite>hindi..
6. उपरोक्त
7. उपरोक्त
8. http://in.jagran.yahoo.com/pravasi/index.php...
9. विकीर्णन (डायस्पोरा) विकीपीडिया : https://hi.m.wikipedia.org>...
10. उपरोक्त
11. उपरोक्त
12. उपरोक्त
13. प्रवासी भारतीय और प्रवासी भारतीय मामले मंत्रालय : https://archive.india.gov.in>knowindia.
14. आसियान भारतीय प्रवासी दिवस, 2018 : www.ssgcp.com>2018>...
15. प्रवासी भारतीय और प्रवासी भारतीय मामले मंत्रालय : https://archive.india.gov.in>knowindia

16. उपरोक्त
17. उपरोक्त
18. उपरोक्त
19. उपरोक्त
20. 9 जनवरी : प्रवासी भारतीय दिवस विशेष : https://m.hindi.webdunia.com> prawasi...
21. भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रवासी अहम भागीदार : https://m.dailyhunt.in>hindi..
22. "According to World Bank's Migration and Dedvelopment Brief, India will retain its position as world's top recipient of remittances in 2018, receiving a total remittance of $ 80 billion from its diaspora. India is followed by China ($ 67 billion), Mexico and hilippines ($ 34 billion each) and Egypt ($ 26 billon), India to receive total remittance of $ 80 billon in 2018.'' ; World Bank : https://currentaffairs.gktoday.in>tags.
23. Ibid
24. जयंतीलाल भंडारी, अर्थशास्त्री का आलेख, 'देश की अर्थव्यवस्था में प्रवासी भारतीयों का बढ़ रहा योगदान' : *हिन्दुस्तान* (पटना, 17 दिसंबर 2018), पृ. 10
25. उपरोक्त

# ग्रामीण विकास की योजनाओं में भारत सरकार का योगदान : एक मूल्यांकन

## मो. ताहिर अन्सारी

*lkjk'k% भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसका सतत् संचालन गाँवों के द्वारा किया जाता है। जब तक गाँव समृद्ध नहीं होगा तब तक भारत प्रगति नहीं कर सकता है। गाँवों के विकास के लिए प्रशासनिक स्तर पर व्यापक योजनाओं का संचालन किया जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र में ग्रामीण विकास की योजनाओं में भारत सरकार के योगदान तथा मनरेगा, प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना, प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, डिजिटल इण्डिया आदि योजनाओं का उल्लेख किया गया है। इस शोध पत्र के माध्यम से भारत सरकार द्वारा ग्रामीण विकास की समकालीन योजनाओं को विस्तृत ढंग से समझा जा सकता है।*

**प्रस्तावना**

भारत एक समाजवादी, लोकतान्त्रिक और कल्याणकारी देश है। भारत को गाँवों का देश कहा जाता है। भारत की 70 प्रतिशत जनता गाँवों में निवास करती है। ग्रामीण क्षेत्र में स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास, बिजली, सड़क, पानी और शौचालय जैसे आवश्यक बुनियादी सुविधाओं का अभाव है। गाँवों में गरीबी, बेरोजगारी, जाति-पाति, अन्धविश्वास, बाल-विवाह, वृद्धों एवं कमजोरों की सामाजिक सुरक्षा जैसे सामाजिक समस्याएँ विद्यमान हैं। वर्तमान समय में गरीबी के कारण जनसंख्या का एक बड़ा भाग बुनियादी सुविधाओं से वंचित है। इस दृष्टि से वंचित लोगों को सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा प्रदान कर उन्हें बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध करना ही ग्रामीण विकास है। ग्रामीण विकास ग्रामीणों के जीवन स्तर की गुणवत्ता में सतत् सुधार की आवश्यक प्रक्रिया है। यह सेवा आन्दोलन है जिसमें विशाल जनपुंज सरकार द्वारा संचालित विभिन्न योजनाओं का उपयोग कर भावी जीवन में उन्नति एवं भविष्य का निर्माण करती है।

ग्रामीण विकास सम्प्रत्य का विश्लेषण करने पर यह बहुआयामी अवधारणा के रूप में उभर कर आती है, जिसका विश्लेषण संकुचित एवं व्यापक अर्थों में किया जा

सकता है। संकुचित अर्थों में ग्रामीण विकास कृषि, पशुपालन, हस्तकला और लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास है किन्तु व्यापक अर्थ में ग्रामीण विकास ग्रामीणों के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक जीवन में गुणात्मक प्रगति और संरचनात्मक परिवर्तनों को समाहित किया हुआ है।

किसी की विकसित अर्थव्यवस्था की सफलता के लिए उसके ग्रामीण अर्थव्यवस्था का सुदृढ़ होना आवश्यक है। भारत जैसे विशाल देश जहाँ गाँवों की संख्या लगभग छह लाख 50 हजार के आस-पास है वहाँ ग्रामीण विकास के बिना विकसित भारत की परिकल्पना नहीं की जा सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों का विकास ही पूरे देश को विकास के मार्ग पर लेकर जाता है। जिस देश की दो-तिहाई जनसंख्या गाँवों में बसती हों, और पूरे देश के लिए खाद्यान्नों की व्यवस्था करना गाँवों के किसानों के कन्धों पर हो, वहाँ यह अत्यन्त आवश्यक है कि गाँवों में आधारभूत संरचना का विकास, उन्नत कृषि एवं सिंचाई व्यवस्था स्वास्थ्य सेवाओं की सुलभता एवं शिक्षा तथा रोजगार सृजन की ओर विशेष ध्यान दिया जाए। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले न्यूनतम आय वर्ग के लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाया जाये और उनके विकास के क्रम को आत्मपोषित बनाया जाये। ग्रामीण विकास एक ऐसी व्यूह रचना है जो निर्धन ग्रामीण लोगों के आर्थिक एवं सामुदायिक जीवन को उन्नत बनाने के लिए निर्मित की गयी है। इस प्रकार ग्रामीण विकास त्रि-स्तरीय कार्यक्रम है :–

1. यह एक विधि है जिसके द्वारा विकास के कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में लोगों को सम्मिलित किया जाता है।
2. यह एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा परम्परागत ग्रामीण व्यवस्था को विज्ञान एवं तकनीकी प्रयोग द्वारा आधुनिक बनाया जाता है।
3. यह एक उद्देश्य है जिसके द्वारा जीवन की गुणवत्ता में सुधार किया जाता है।[1]

## भारत में ग्रामीण विकास में सरकार एवं प्रशासन का योगदान

वर्तमान समय में श्री नरेन्द्र मोदी जी के नेतृत्व में सरकार ग्रामीण क्षेत्रों के समुचित विकास और गाँव के निवासियों के समृद्धि के लिए अनेक प्रयास कर रही है। ग्रामीण विकास के सन्दर्भ में खुद प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी का कहना है कि ''ग्राम मजबूत होगें तो राज्य मजबूत होगें, राज्य मजबूत होगें तो देश मजबूत होगा''। ग्रामीण भारत के विकास में तेजी कैसे लाई जाये यह मूलतः तीन बातों पर आधारित है –

1. सिंचाई की उचित व्यवस्था ताकि कृषि मानसून पर निर्भर न रहे।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों का संजाल जिससे ग्रामीण जनता शहरों से जुड़ सके तथा किसान अपना उत्पादन मंडियों और बाजारों तक समय पर पहुँचा सके।

3. गाँवों में बिजली, पानी, स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास जैसी बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करना ताकि ग्रामीण भारत का आर्थिक और सामाजिक विकास में संतुलन बना रह सके।

ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना, महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन, राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम (एनएसएपी) सांसद आदर्श ग्राम योजना, श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूरल मिशन और दीनदयाल अंत्योदय योजना जैसे महत्वपूर्ण योजनाओं के माध्यम से गाँवों के समृद्धि और खुशहाली के लिए ईमानदार प्रयास किया जा रहा है। सरकार द्वारा संचालित ग्रामीण विकास योजनाओं और कार्यक्रमों को लागू करने तथा क्रियान्वयन में आधुनिक प्रौद्योगिकी, नई तकनीकी और वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाने पर बल दिया गया है। इन सभी योजनाओं के बेहतर आयोजन, प्रभावी निगरानी और पारदर्शिता लाने में लोक प्रशासन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रशासन के अपेक्षित सहयोग के बिना योजनाओं का लक्षित उद्देश्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। प्रस्तुत शोध पत्र में प्रशासन के सहयोग से संचालित ग्रामीण विकास के प्रमुख योजनाओं का वर्णन एवं विश्लेषण निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया है:–

## (1) महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम (MNREGA) :

ग्रामीण बेरोज़गारी और गरीबी को समाप्त करने के लिए भारत में लागू एक रोजगार गारंटी योजना है, जिसे 2 अक्टूबर, 2005 संसद द्वारा पास किया गया था। इस योजना का शुभारम्भ प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने 2 फरवरी, 2006 को आन्ध्र प्रदेश के अन्नतपुर जिले से किया था। अप्रैल, 2008 से इस योजना को पूरे देश में लागू कर दिया गया। इस योजना के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों के गरीब परिवार के एक सदस्य को कम-से-कम 100 दिन अकुशल श्रम वाले रोज़गार की गारंटी दी गयी है। मनरेगा के अन्तर्गत 2017-18 में 4800 करोड़ रूपये का बजट आवंटित किया गया और वित्त वर्ष 2018-19 में 55,000 करोड़ रूपये आवंटित किए गये है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में सड़क, नाली, पोखरों, तालाबों, जल निकासी, स्वच्छता कार्यक्रमों, शौचालयों आदि के कार्यों में तेजी आई है। ग्रामीण क्षेत्रों में रोज़गार के अवसर पैदा हुए हैं तथा गाँवों के लोगों को आजीविका में मदद मिली है।[2]

## (2) प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना

20 नवम्बर, 2016 को प्रधानमंत्री द्वारा इसका शुभारंभ आगरा से किया गया। प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना गरीबों को आवास उपलब्ध कराने का एक महत्वपूर्ण योजना है। यह मौजूदा इन्दिरा आवास योजना का पुनर्गठन है जिसका नाम सितम्बर 2016 में बदलकर प्रधानमंत्री आवास योजना कर दिया गया। यह योजना केवल गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले (बीपीएल) परिवारों के

लिए है। ग्रामीण विकास मंत्रालय ने श्रेष्ठ गुणवत्ता वाले आवास उपलबध करने के लिए ''पहल'' योजना के नाम से सामान्य दिशा-निर्देश और मकानों के डिजाइन जारी किए हैं।[3] इसके लिए लाभार्थियों का चयन सामाजिक-आर्थिक जाति जनगणना (एसईसीसी) 2011 के द्वारा किया गया है। इस योजना के अन्तर्गत मैदानी इलाकों में 1.20 लाख रूपये तथा पहाड़ी दुर्गम इलाकों में 1.30 लाख रूपये प्रति आवास की सहायता दी जाती है। इसके पहले चरण में 2018-19 तक एक करोड़ मकान बनवाने का लक्ष्य रखा गया, जिसके लिए कुल 1,30,075 करोड़ रूपये का बजट रखा गया है। इस योजना में घर विहिन तथा एक या दो कमरे के कच्ची छत, कच्ची दीवार के मकानों में रहने वाले गरीब परिवारों को रसोई, बिजली कनेक्शन, एलपीजी, स्नानघर एवं शौचालय से युक्त आवास को एक पूर्ण रूप दिया जायेगा, तथा 2022 तक सभी ग्रामीण परिवारों को पर्यावरणीय रूप से सुरक्षित एवं पक्के घर उपलब्ध कराने का लक्ष्य है।[4]

## (3) प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना

प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना का प्रारम्भ भारत सरकार द्वारा 25 दिसम्बर, 2000 को किया गया था। तात्कालिन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी ने इसका शुभारम्भ किया था। इस योजना का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में 500 से अधिक आबादी वाले और पहाड़ी और रेगिस्तानी इलाकों में 250 लोगों की आबादी वाले सड़क-सम्पर्क से वंचित गाँवों को बारहमासी सड़कों से जोड़ना है। इस योजना का सबसे अधिक लाभ गाँवों के छोटे किसानों व्यापारियों और कामगारों मिला है, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति सुधरी है। यह योजना गाँवों के विकास में काफी सहायक हुआ है। प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के तहत सरकार ने 'मेरी सड़क' नाम से एक सरकारी ऐप जारी किया है, जिसके द्वारा जिन क्षेत्रों में सड़क नहीं है या खराब हो चुकी है, तो इसकी शिकायत सीधे प्रधानमंत्री से कर पुनः बनवाया या ठीक कराया जा सकता है। इस योजना का पूरा करने का लक्ष्य मार्च 2019 तक रखा गया है। साल 2014 तक 73 किलोमीटर प्रतिदिन सड़क बनाने की गति थी अब इसे बढ़ाकर 133 किलोमीटर कर दिया गया है।

## (4) प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना

भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों का आर्थिक स्थिति में सुधार और किसानों की आय दोगुनी करने के उद्देश्य से 1 जुलाई, 2015 को भारत सरकार द्वारा प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना का सूत्रपात किया गया है। भारत की कृषि मानसून आधारित होने के कारण खाधान्न उत्पादन कम होता है। इस योजना के द्वारा इस समस्या का समाधान करना है। इस कार्यक्रम को दो प्रमुख लक्ष्य है – ''हर खेत को पानी'' और ''प्रति बूंद अधिक फसल''। इस कार्यक्रम के प्रमुख लक्ष्य हासिल करने के लिए नदी संपर्क परियोजना का तेजी से कार्यान्वयन, प्रत्येक गाँव में एक जल-संग्रह ढाचें का

निर्माण, लंबित सिंचाई परियोजना को जल्दी से पूरा करना और प्रति बूंद अधिक फसल का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियाँ का व्यापक विस्तार किया गया है।[5]

## (5) दीनदयाल अंत्योदय योजना

इस योजना का आरम्भ 25 सितम्बर, 2015 को किया गया है। इसका उद्देश्य गरीब परिवारों के ग्रामीण बेरोज़गारों को प्रशिक्षित करना है ताकि वे अपने निवास स्थान के आस-पास स्वरोज़गार शुरू कर सके। यह योजना शहरों एवं ग्रामीण दोनों क्षेत्रों के लिए है। इसका प्रमुख उद्देश्य गरीबी कम करना है।

## (6) दीनदयाल ग्रामीण कौशल योजना

इस योजना का उद्देश्य बेरोजगार युवाओं का कौशल विकास करके उनकी रोजगार पाने की क्षमता बढ़ाना है। इस कार्यक्रम के तहत प्रति व्यक्ति 25,696 रूपये से लेकर एक लाख रूपये तक प्लेसमेंट से जुड़े स्किलिंग प्रोजेक्टस के लिए धन उपलब्ध कराया जाता है। सरकार द्वारा चलाये जाना वाला 'स्टार्टअप इण्डिया' और 'मेक इन इण्डिया' कार्यक्रम इसका अभिन्न अंग है।[6]

## (7) प्रधानमंत्री मुद्रा योजना

08 अप्रैल 2015 को शुरू इस योजना के तहत वित्तविहिनों को वित्तपोषित करता है। महिलाओं में उद्यमिता बढ़ाने के लिए 'महिला उद्यम निधि' नामक एक विशेष कार्यक्रम का प्रावधान किया गया है जिसके अन्तर्गत सभी तीन वर्गों– 'शिशु, किशोर एवं तरूण के अन्तर्गत ऋण की उपलब्धता को सुनिश्चित किया गया है।

## (8) ग्रामीण उद्यमिता जागरूकता विकास योजना

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने खेती-बाड़ी के क्षेत्र में कौशल विकास के लिए वर्ष 2015 में क्रांतिकारी छात्र रेडी योजना शुरू की है। इस योजना के तहत कृषि शिक्षा में युवाओं की उद्यमशीलता के लिए कौशल विकास को परियोजना मोड़ में विभिन्न कृषि विश्वविद्यालयों में लागू किया जा रहा है। इस योजना में सरकार का लक्ष्य देश में सलाना 25 हजार अधिक छात्रों को रोज़गार के लिए प्रशिक्षित करना है।

## (9) सांसद आदर्श ग्राम योजना

सांसद आदर्श ग्राम योजना गाँवों के नवनिर्माण और विकास का कार्यक्रम है। यह मुख्यत ग्रामीण विकास के लिए प्रेरित है। इस कार्यक्रम का प्रारम्भ प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने 11 अक्टूबर 2014 को शुरू किया। इस योजना के अन्तर्गत प्रत्येक सांसद को एक आदर्श ग्राम तैयार करना है। इस गाँव में स्कूल, पंचायत भवन, सड़क, चौपाल, स्वच्छ जल, गोबर गैस संयंत्र, शौचालय आदि जैसे बुनियादी सुविधाओं

की स्थापना एवं विकास किया जायेगा।

## (10) डिजिटल इण्डिया कार्यक्रम

1 जुलाई 2015 को भारत सरकार द्वारा चलाये जाने वाला यह बेहतरीन कार्यक्रम है। इसका उद्देश्य सशक्त समाज का निर्माण और ज्ञान पर आधारित अर्थव्यवस्था को डिजिटल रूप देना है।[7] इस योजना के तहत भारत के सभी गाँवों को फाइबर ऑप्टिकल केबल के माध्यम से इन्टरनेट से जोड़ना है तथा प्रत्येक ग्राम पंचायतों को 100 एमवीपीएस की स्पीड से ब्रॉडबैंड सुविधा प्रदान की जायेगी, जिससे उन्हें कृषि, व्यापार, मण्डी भाव और सरकार द्वारा चलायी जा रही योजनाओं की जानकारी मिलती रहेगी और उन्हें किसी कागज़ी कार्यवाही के लिए शहर आने की आवश्यकता नहीं होगी तथा उनका कार्य इन्टरनेट से ही हो जायेगा।

## सन्दर्भ

1. शाही, धर्मेन्द्र प्रताप, 'ग्रामीण विकास एवं मनरेगा', भारत बुक सेन्टर लखनऊ, 2012, पृ. 385
2. कुरूक्षेत्र, अगस्त, 2018, पृ. 12
3. कुरूक्षेत्र, दिसम्बर, 2016, पृ. 26
4. कुरूक्षेत्र, दिसम्बर, 2016, पृ. 27
5. कुरूक्षेत्र, नवम्बर, 2017, पृ. 10
6. कुरूक्षेत्र, सितम्बर, 2017, पृ. 46
7. कुरूक्षेत्र, अगस्त, 2017, पृ. 23

# औपनिवेशिक प्रशासन तथा बाढ़ नियंत्रण : उत्तर बिहार का विशेष सन्दर्भ

## निशा कुमारी

**lkjk'k** : *उत्तर बिहार नदियों का क्षेत्र है। अनेकों नदियाँ उत्तर बिहार की भूमि पर बिछी हुई हैं जो गंगा की गोद को भरती हैं। साथ ही उत्तर बिहार विश्व के सर्वाधिक बाढ़ प्रभावित तथा पिछड़े क्षेत्रों में से एक है। प्रतिवर्ष आने वाली बाढ़ इस क्षेत्र में भारी बर्बादी का कारण बनती है। यद्यपि स्थानीय लोगों द्वारा अपने जीवन में नदी की संस्कृति के समावेशन की एक व्यापक तथा विकसित परंपरा देखने को मिलती है जिसमें वह नदी के बीच रहकर, इनके साथ समायोजन स्थापित करते आए परन्तु उनके पारंपरिक ज्ञान को पिछड़ा बताकर औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा व्यापक हस्तक्षेप किया गया। औपनिवेशिक प्रशासन की यह मान्यता थी कि नदियों के बहाव को नियंत्रित किया जाना चाहिए। जिसके फलस्वरूप नदियों पर व्यापक रूप से तटबंधों तथा अन्य संरचनाओं का निर्माण किया गया। औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा यह प्रयास अपने निहित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया गया जिसका स्थानीय जन-जीवन पर व्यापक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। यह लेख भारत में औपनिवेशिक प्रशासन के बाढ़ नियंत्रण के विभिन्न प्रयासों के वर्णन के माध्यम से पर्यावरण के औपनिवेशीकरण तथा विशेष रूप से नदियों के औपनिवेशीकरण का विश्लेषण करने का एक प्रयास है।*

### प्रस्तावना

नदियाँ जीवन का आधार है। विश्व की सभी सभ्यताएं नदियों, समुद्रों या जल के अन्य स्रोतों के आस-पास ही विकसित हुईं हैं। भारत के परंपरागत समाज ने जल को जिस तरह समझा और सम्मान दिया, वह अद्वितीय है। यहाँ जल को 'देवता' अर्थात देने वाले की संज्ञा दी गयी है। जल का मुख्य स्रोत नदी को 'माता का स्वरूप' तथा समुद्र को 'रत्नाकर' अर्थात रत्नों का घर कहा गया। इस प्रकार भारत की परंपरागत संस्कृति 'जल संस्कृति' रही है। उत्तर बिहार की भूमि पर नदियों का विशाल जाल

है जिन्हें पश्चिम से पूर्व की और बढ़ते क्रम में देखा जाये तो क्रमशः घाघरा, झरही, दाहा, मही, गण्डकी, बूढी गंडक, बागमती, लखनदेइ, अधवारा, जमुनिया, कमला-बलान, भूतही-बालन, कोसी, महानंदा इत्यादि नदियाँ है जो अपने जल से गंगा की गोदी को भरती हैं। इस क्षेत्र में नदियों के इस विशाल जाल का कारण है कि उत्तर बिहार विश्व के सबसे अधिक बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में से एक है। साथ ही यह क्षेत्र नदियों द्वारा निरंतर बदलते मार्ग तथा बदलती कृषि-पारिस्थितिकी की विशेषता रखता है। 18 अगस्त 2008 को कुसहा में तटबंध टूटने से आई बाढ़ की घटना, अपने विनाशकारी परिणामों के लिए विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय मंचों पर व्यापक चर्चा का विषय रही। बाढ़ से होने वाली तबाही से सम्बंधित आंकड़ों पर दृष्टि डालें तो कोसी क्षेत्र के 811 परिवारों पर किये गये एक अध्ययन के अनुसार इस परिवारों की निजी फसलों की क्षति 5,63,75,000 रूपए के बराबर थी। इसके अतिरिक्त जान माल की जो व्यापक क्षति हुयी उसका आकलन कर पाना तो असंभव है (गौरीनाथ, 2019)।

जिन नदियों ने मानव को जीवन आरम्भ करने की अनुकूल परिस्थितियाँ उपलब्ध करायीं वह आज विध्वंसक तथा विनाशकारी कैसे बन गयी? नदियों के जीवनदायी रूप से जीवनहरनी स्वरूप तक हुए परिवर्तन की प्रक्रिया पर व्यापक चिंतन करने की आवश्यकता है। सामान्य तौर नदियों तथा बाढ़ के इस परिवर्तित स्वरूप को तीन कालखंडों में विभाजित कर समझा जा सकता है। *पहला,* भारत में औपनिवेशिक शासन से पूर्व का समाज नदी तथा बाढ़ को किस प्रकार समझता था तथा अपने दैनिक व्यवहार में उपयोग में लाता था। *दूसरा,* भारत में औपनिवेशिक शासन के सम्पूर्ण कालखंड में नदियों के साथ किस प्रकार का व्यवहार अपनाया गया तथा इसने समाज को किस प्रकार प्रभावित किया। *तीसरा,* औपनिवेशिक शासन की समाप्ति के उपरांत स्वतंत्र भारतीय राज्य ने नदी तथा बाढ़ को किस रूप में देखा तथा मुख्यतः किस प्रकार की नीतियाँ अपनाई। यद्यपि यह लेख मुख्य रूप से भारत में औपनिवेशिक शासन द्वारा नदी तथा बाढ़ सम्बन्धी नीतियों का विस्तृत अलोचानात्मक अध्ययन करने का एक प्रयास है। वही यह लेख स्वतंत्र भारत में भी नदी तथा बाढ़ के सम्बन्ध में औपनिवेशिक नीति की निरंतरता को चिन्हित करता है।

## पूर्व औपनिवेशिक समाज, नदियाँ तथा बाढ़

बाढ़ का जो रूप आज हमारे समक्ष है वह विध्वंसक तथा भयानक है। यह प्रतिवर्ष देश के विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक तबाही का कारण बनता है। परन्तु क्या बाढ़ सदैव मानव के लिए विध्वंसक थी? नदियों तथा बाढ़ के भौगोलिक तथा सांस्कृतिक इतिहास पर दृष्टि डालें तो बाढ़ के लाभदायी परिणामों तथा बाढ़ के साथ जीवन जीने वाले भारतीय समाज की छवि हमारे समक्ष बनकर आती है। गांधीवादी विचारक अनुपम मिश्र बाढ़ प्रबंधन के पारंपरिक ज्ञान पर बताते हुए अपनी पुस्तक तैरने वाला समाज

आज डूब रहा है (2008) में उत्तर बिहार की बाढ़ के संदर्भ में लिखते हैं कि अनेकों नदियों के जाल के कारण उत्तर बिहार कभी एक बहुत संपन्न क्षेत्र था। "मुजफ्फरपुर की लीचियाँ, पूसा ढोली की ईंख, दरभंगा का शहबसंत धान, शकरकंद, आम, चीनीया केला, बादाम व यहाँ के कुछ इलाके में पैदा होने वाला तम्बाकू, सिलोत क्षेत्र का पतले से पतला चूरा इत्यादि के कारण यह क्षेत्र प्रसिद्ध हुआ करता था। यहाँ धान की ऐसी किस्में हुईं हैं जो बाढ़ के पानी के साथ खेलते हुए ऊपर उठती थी तथा बाढ़ को विदा कर खलिहान में आती थीं" (मिश्र, 2008)। यद्यपि बाढ़ उस समय भी आती थी परन्तु उसकी मारक क्षमता का रूप वर्तमान की भांति नहीं होता था। नदी द्वारा लायी जाने वाली बाढ़ तथा गाद लोगों के लिए समस्या नही थी अपितु लोग बाढ़ आने का इंतजार करते थे। बाढ़ आना लोगों के लिए अच्छी फसल के उपजने का भी सूचक होता था। यहाँ फसल उपजाने की एक सोची समझी व्यवस्था थी, जो बाढ़ को एक संसाधन के रूप में उपयोग करने का पक्षधर थी परन्तु बाढ़ सम्बन्धी इस पारंपरिक ज्ञान को तकनीकी ज्ञान की रौशनी ने अन्धकार में डाल दिया। भारतीय सन्दर्भ में यह भूमिका विशेष रूप से औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए व्यवहार में लायी गयी। हालंकि यदि देखा जाये तो बरसों से नदी को नियंत्रित करने का प्रयास होता रहा है परन्तु पूर्वगामी स्थिति इतनी विकराल नही थी तथा इतने व्यापक स्तर पर जान-माल की हानि नहीं कर पाती थी। क्योंकि स्थानीय आमजन इस बाढ़ से पार पाना जानते थे। इसके साथ-साथ तैरना जानते थे, डूबना नहीं। ब्रिटिश प्रशासन ने जहां स्थानीय हितों के स्थान पर स्वंय के औपनिवेशिक हितों को प्राथमिकता दी। वहीं पारम्परिक ज्ञान को पिछड़ा तथा अनुपयोगी बता कर औपनिवेशिक प्रशासन में अपने एजेंडे को व्यावहारिक रूप दिया।

## भारत में औपनिवेशिक प्रशासन तथा बाढ़ नियंत्रण

यद्यपि उत्तर बिहार अपनी विशेष भौगोलिक विशेषताओं के कारण बाढ़ का सामना लम्बे समय से करता आया है परन्तु बाढ़ को समस्या के रूप में समझने तथा उसे नियंत्रित करने के विचार की उत्पत्ति मुख्य रूप से औपनिवेशिक प्रशासन में हुई। औपनिवेशिक सत्ता की नजर में यहाँ की नदियों तथा जल का प्रश्न स्थानीय निवासियों से भिन्न था। नदी, बाढ़ तथा समाज– के बीच के अन्तर्सम्बन्धों को तेजी से परिवर्तित करने में औपनिवेशिक प्रशासन ने मुख्य भूमिका निभाई। हालाँकि ब्रिटिश उपनिवेश से पूर्व भी नदी की प्राकृतिक गति में परिवर्तन के प्रयास देखने को मिलते हैं। उदाहरणस्वरूप मौर्य साम्राज्य ने सिंचाई की सुविधा के लिए प्रयास किये तथा मुगलों ने भी यमुना पर नहर बनवाई (गुहा, गाडगिल,1995)। परन्तु यह संरचनाएं बहुत व्यापक स्तर पर नदियों के प्राकृतिक स्वभाव में हस्तक्षेप नहीं करती थीं। भारत में उपनिवेशवाद के परिणामस्वरूप पारिस्थितिकी में हुए परिवर्तन सम्बन्धी विभिन्न अध्ययन यह निष्कर्ष निकालते हैं कि

पश्चिमी साम्राज्यवाद तथा पर्यावरण के क्षय के बीच नजदीकी जुड़ाव है। पश्चिमी पूँजीवाद के कारण दुनिया की पारिस्थितिकी में गहरा बदलाव हुआ है। पहले व्यापार और बाद में उपनिवेशवाद के कारण पूँजीवाद का व्यापक विस्तार हुआ तथा इसके कारण अन्य पारिस्थितिकी व्यवस्थाएं भी बाधित हुईं। जिन प्रयासों में इस प्रकार के हस्तक्षेप हुए वहाँ सामाजिक, परिस्थितिक और जनसांख्यिकी विशेषताओं को पूरी तरह परिवर्तित कर नया आकार दिया गया। साथ ही उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि बदलावों का प्राथमिक रूप से फायदा यूरोप का हो (गुहा, गाडगिल, 1992)। जब यूरोपीय औपनिवेशिक शासन भारत आया तो उन्होंने यहाँ जो व्यापक परिवर्तन किये उन्हें संसाधन उपभोग की औद्योगिक प्रणाली के विरोधाभासों के रूप में देखने की आवश्यकता है। संसाधन उपयोग के औद्योगिक प्रणाली तथा भारत और ब्रिटेन के बीच पारिस्थितिक टकराव की समुचित समझ तीन विशेषताओं के आधार पर बनायीं जा सकती हैं। औपनिवेशिक शासन की पहली विशेषता को प्राकृतिक संसाधनों की जीविका हेतु उपयोग के स्थान पर व्यावसायिक उपयोग को अधिक प्राथमिकता देने के रूप में समझा जा सकता है। प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन में सामुदायिक भागीदारी को अवैध बनाना- औपनिवेशिक शासन की दूसरी विशेषता है। *तीसरा,* औपनिवेशिक शासन का जो परिणाम सामने आया वह संसाधनों के उपभोग के विस्तार की संभावनाएं के असीमित रूप से बढ़ जाना था (वही,1992)।

19वीं शताब्दी के आरंभ में भारत में औपनिवेशिक शासन द्वारा कृषि के लिए मुख्य आगत के रूप में सिंचाई के क्षेत्र में व्यापक हस्तक्षेप किये गये। यद्यपि 19वीं शताब्दी के पूर्व औपनिवेशिक प्रशासन ने कृषि तथा सिंचाई के विकास के लिए निवेश करने में रुचि नही दिखाई। राजस्व एकत्रीकरण की स्थायी बंदोबस्त व्यवस्था (1793) के नियमों के अनुसार जमींदारों से एक निश्चित राशि मिलने के कारण ब्रिटिश प्रशासन ने स्वयं को सिंचाई क्षेत्र में निवेश करने से दूर रखा तथा यह माना गया कि स्थायी बंदोबस्त के कारण क्षेत्र की कृषि के सुधार के प्रयास जमींदारों द्वारा किये जायेंगे। परन्तु 1866-67 के अकाल के बाद उत्तर बिहार में सिंचाई योजनाओं की कमी अनुभव की जाने लगी तथा ब्रिटिश सरकार ने इस दिशा में सक्रियता दिखाई। 1867 में उत्तर बिहार की नदियों गंडक, बूढी गंडक तथा बागमती से होने वाली सिंचाई की संभावनाओं का अनुमान लगाने का निर्णय लिया गया। औपनिवेशिक सरकार द्वारा सर्वप्रथम कृष्णा-गोदावरी डेल्टा स्कीम तथा पश्चिमी यमुना नहर योजना में नवनीकरण का कार्य किया गया तथा इसके बाद उत्तर बिहार की लगभग सभी मुख्य नदियों को लेकर अनेक योजनाएं बनायीं गयी जैसे गंडक कैनाल परियोजना, बागमती कैनाल परियोजना, कमला तथा कोसी कैनाल परियोजना इत्यादि। इस क्षेत्र में शुरुआती समय में कृषि उत्पादन के बढ़ने की सफलता से सिंचाई परियोजनाओं का देश के अन्य

भागों में विस्तार किया गया। 19वी शताब्दी के अंत तक भारत में एक बहु विस्तारित सिंचाई व्यवस्था का निर्माण हो चुका था। अधिकतर मुख्य नदियों पर तटबंध तथा बाँध रूपी शिकंजा कस दिया गया तथा उनके जल को उन क्षेत्रों तक विस्तारित कर दिया गया जहाँ सिंचाई के जल की पूर्ति के लिए वर्षा के अतिरिक्त अन्य स्रोतों का अभाव था। सिंचाई सम्बन्धी अधिनियम पारित कर, औपनिवेशिक राज्य सिंचाई के साधनों को उपलब्ध कराने तथा नियंत्रित करने वाली एकमात्र एजेंसी के रूप में उभरा। उत्तरी चंपारण में यह भी देखने में आया कि औपनिवेशिक राज्य द्वारा सिर्फ कृत्रिम नहरों का ही निर्माण नहीं किया गया अपितु इस प्रक्रिया ने क्षेत्र की पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही परंपरागत सिचाई व्यवस्था को भी समाप्त कर दिया (सिंह, 2003)।

उत्तर बिहार में ब्रिटिश शासन के द्वारा अपनाई गयी एक मुख्य गतिविधि व्यापक स्तर पर बाढ़ नियंत्रण करने का प्रयास था। उत्तर बिहार का क्षेत्र नदियों के विशेष भौगोलिक स्वरूप के कारण औपनिवेशिक राज्य के लिए समस्या बन रहा था। सीधे हिमालयी मार्ग से उतरने के कारण नदियाँ अपने साथ भारी मात्र में सिल्ट (गाद) लेकर आती तथा यह धीरे-धीरे नदी की तलहटी में जमा होती जाती हैं। परिणामस्वरूप यहाँ की नदियाँ अपना रास्ता बदलती है तथा इस स्थान की कृषि-पारिस्थितिकी में परिवर्तन लाती थी, जिससे औपनिवेशिक प्रशासन को राजस्व के एकत्रीकरण में समस्या का सामना करना पड रहा था। साथ ही निरंतर आने वाली बाढ़ में होने वाली फसलों की होने वाली तबाही को रोकने के उद्देश्य से भी ब्रिटिश शासन ने अनेक कदम उठाएं। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश शासन नदी के जल को नियंत्रित कर कृषि भूमि का अधिक विस्तार करना चाहता था। अपने इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए औपनिवेशिक शासन द्वारा नदियों को नियंत्रित करने के लिए तटबंधों का निर्माण किया गया। ब्रिटिश सरकार ने तटबंधों के निर्माण से न सिर्फ इस क्षेत्र से मिलने वाली राजस्व की राशि तथा प्रशासनिक व्यवस्थाओं को स्थायी रूप देने की कोशिश की अपितु इस क्षेत्र की निरंतर परिवर्तित होती विशेष कृषि–पारिस्थितिकी को भी स्थायी करने का प्रयास किया (सिंह, 2008)। इस समय जब भी कहीं बाढ़ की समस्या आती तो उसका समाधान सिर्फ तटबंध के निर्माण के रूप में देखा गया। जहां सरकार ने तटबंधों के निर्माण में रूचि दिखाई वहीं साथ ही अनेक 'निजी तटबंधों' का अस्तित्व भी सामने आया। बड़े जमींदारों तथा नील की कंपनियों द्वारा भी अनेक निजी तथा सीमान्त तटबंधों का निर्माण किया गया।

## औपनिवेशिक प्रशासन तथा नदी, बाढ़, समाजः बुनियादी बदलाव

भारत में ब्रिटिश शासन की बाढ़ नियन्त्रण की नीतियों के प्रभाव को विशेष तौर पर तीन सन्दर्भों में समझा जा सकता है। *पहला,* यह आधुनिक तकनीकी हस्तक्षेप

सिंचाई की व्यवस्था सुनिश्चित करने में कितना सफल व असफल रहे? *दूसरा,* इससे स्थानीय जन-जीवन तथा नदी के साथ उनके संबंधों पर क्या प्रभाव पड़ा? *तीसरा,* बाढ़ सुरक्षा के मिथक का सन्दर्भ?

जैसा कि उपरोक्त वर्णित किया गया है कि ब्रिटिश शासन द्वारा अपने निहित उद्देश्यों की प्राप्ति करने के लिए उत्तर बिहार के क्षेत्र तथा नदियों की विशेष भौगोलिक स्थिति को समझे बिना तकनीकी हस्तक्षेप किये गये तथा आधुनिक तकनीक का उपयोग कर सिंचाई की व्यवस्था की गयी। आधुनिक सिंचाई तकनीक तथा उनके प्रभाव के अध्ययन सम्बन्धी विभिन्न शोध यह बताते हैं कि इनसे नुकसान ही अधिक हुआ है। ब्रिटिश शासन द्वारा भारत में बाढ़ नियंत्रण के विभिन्न प्रयासों तथा इनके प्रभावों पर सत्यजीत सिंह लिखते हैं कि विकास की आधुनिक संकल्पना के समर्थक बड़े बांधों के निर्माण को जहाँ आवश्यक मानते हैं वही अपने पक्ष को और मजबूत करते हुए इसे सिंचाई की अच्छी व्यवस्था के लिए भी हितकारी मानते हैं। ब्रिटिश शासन की यह नीति भारत में ब्रिटिश द्वारा उनके उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया गया प्रयास था। जिसका समतामूलक समाज की स्थापना से कोई सरोकार नही था (सिंह स. ,1997)। बाढ़ से सुरक्षा के औपनिवेशिक प्रयास ने बाढ़ को अनिश्चित बना दिया है। जो बाढ़ पहले निश्चित समय पर आती थी तथा निश्चित समय पर चली जाती थी, उसकी प्रकृति को परिवर्तित कर और अधिक विध्वंसक बना दिया है। इस सम्बन्ध में अनुपम मिश्र तर्क देते हैं कि बाढ़ अतिथि नहीं हैं। यह अचानक नहीं आती। इसके आने की तिथियाँ पक्की होती हैं, लेकिन अब जब बाढ़ आती है तो हम कुछ ऐसा व्यवहार करते हैं कि यह अचानक आई विपत्ति है। इसके पहले जो तैयारियाँ करनी चाहिए, वो बिल्कुल नहीं कर पाते। इसलिए बाढ़ की मारक क्षमता पहले से अधिक हो जाती है। अनुपम मिश्र ब्रिटिश शासन तथा आधुनिक तकनीकी प्रयासों के प्रभाव को पारंपरिक ज्ञान के शून्यीकरण की राजनीति के रूप में भी देखते है। (मिश्र, 2008)। उनके अनुसार छोटे से लेकर बड़े बाँध, बड़े-बड़े तटबंध बाढ़ से सुरक्षा के लिए बनाये गये, बगैर इन नदियों का स्वभाव समझे। नदियों की धारा इधर से उधर न भटके– यह मानकर हमने एक नए भटकाव के विकास की योजना अपनाई है। उसको तटबंध ा कहते हैं। यह बंगलादेश में बने हैं और इनकी लम्बाई सैकड़ों मील तक जाती है। आज पता चलता है कि इनसे बाढ़ रुकने की बजाय बढ़ी ही है। नुकसान भी ज्यादा हुआ है। अभी तो कहीं-कहीं यह एकमात्र उपकार यह करते है कि एक बड़े इलाके कि आबादी जब बाढ़ से प्रभावित होती है, तो इन तटबंधों पर ही शरण लेने आ जाते हैं (मिश्र, 2008)। बाढ़ के पानी की महत्ता का जिक्र करते हुए मिश्र कहते हैं कि उत्तर बिहार का पूरा इलाका अपनी सम्पन्नता के लिए जाना जाता था। यहाँ धान की ऐसी किस्में रहीं हैं जो बाढ़ के पानी के साथ-साथ खेलती हुयी ऊपर उठती थी। और बाढ़

को विदा कर खलिहान में आती थीं। इसी क्रम में दिनेश मिश्र भी लिखते हैं कि आधुनिक तकनीकें न तो बाढ़ नियंत्रण में सफल रहीं हैं और न ही लोगों के अनुकूल साबित हुई हैं। ऐसा इसलिए है क्योकि यह आधुनिक तकनीकें नदी के जल के नियंत्रण पर ही अपना सारा ध्यान केन्द्रित करती हैं न कि उस बाढ़ के पानी के संभावित उत्तम उपयोग पर (मिश्र, 2009)। ब्रिटिश शासन की बाढ़ नियंत्रण नीतियों का उड़ीसा के सन्दर्भ में अध्ययन करे हुए रोहन डिसूजा भी इस निष्कर्ष पर आते हैं कि पूर्व औपनिवेशिक समाज में पूर्वी भारत के किसानों ने बाढ़ के उपयोग तथा उस पर निर्भर कृषि की परंपरा को विकसित किया था। ओडिशा में कुल कृषि योग्य भूमि के 87 प्रतिशत हिस्से पर चावल की भिन्न-भिन्न किस्मों का उत्पादन किया जाता था। यह देखा गया है कि एक वर्ष के तीन का उत्पादन किया जाता था जिन्हें बिआली, सरद, तथा दलुआ के रूप में जाना जाता है। लियूटेनेंट कर्नल हेग, जिन्होंने ओडिशा कैनाल योजना 1873 की समीक्षा के दौरान चिन्हित किया कि ओडिशा के लोगों की सम्पूर्ण खेती की व्यवस्था अनिश्चित वर्षा तथा निश्चित समय पर आने वाली बाढ़ के अनुकूल है। यहाँ का किसान एक जुआरी की तरह है जिसका एक खेत ऊंची जमीन पर है तो दूसरा नीची और तीसरा इन दोनों के बीच की दूरी पर स्थित है, तो अगर वह किसी एक खेत की फसल को बाढ़ या सूखा के कारण खो भी देता है तो वह निश्चित होता है कि अपने किसी दूसरे खेत की फसल को बचाने में कामयाब हो ही जायेगा।

औपनिवेशिक सत्ता ने डेल्टा की बाढ़ की घटना को भूवैज्ञानिक प्रक्रिया से एक विनाशकारी घटना के रूप में संरचित किया। नदी पर जिन तटबंधों का निर्माण किया गया वह अब गाद की एक विशाल मात्रा को खेती की भूमि में जाने से रोकता है जिसके कारण जिले के कई हिस्सों में गेंहूँ, सरसों, मूंग इत्यादि जैसी फसलें इतना नुकसान झेल रही हैं कि उत्पादकों ने इन्हें उपजना ही बंद कर दिया है। कृषि के लिए नदी के पानी के साथ आने वली गाद बहुत उपयोगी होती है। जब बाढ़ की लहर सापेक्षिक रूप से धीमी होती है तो भारी तथा कोरस बालू के कण जो खेत को हानि पहुंचा सकते है वह नदी की तलहटी में ही रह जाते है, जबकि लाभकारी कीचड, जो आर्गेनिक जैविक पर्दार्थों से बनी होती है,वह बाढ़ के पानी के साथ रुक रुक कर बहती जाती है। जे. डब्लू. ओटली, सरकार को लिखे अपने एक नोट में लिखते हैं कि महानदी में सिल्ट में 67.3 प्रतिशत जैविक आर्गेनिक पदार्थ पाए गये। जबकि चावल के उत्पादन में पानी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है परन्तु यह पानी तथा मिट्टी का सामंजस्य होता है जो अधिकतम उत्पादन की संभावना को निर्धारित करता है। ब्रिटिश उपनिवेश ने बाढ़ नियंत्रण की जिस नीति को अपनाया वह उनके राजनितिक उद्दश्यों का परिणाम थी। ताकि वह इनके माध्यम से स्थानीय जनसँख्या पर नियन्त्रण कर सके तथा अपने अनुसार सामाजिक तथा आर्थिक संबंधों को परिवर्तित कर सकें। इस सदर्भ में रोहन

डिसूजा कहते है कि ब्रिटिश बाढ़ नियंत्रण नीतियों ने भारत की बाढ़ अनुकूल समाज तथा बाढ़ आधारित कृषि पद्यति को परिवर्तित कर इसे बाढ़ पीड़ित बन दिया है। इस प्रकार नदी तथा बाढ़ के साथ स्थानीय लोगों के सम्बन्ध अब परिवर्तित हो गये हैं तथा साथ ही कृषि तथा कृषकों की दशा में भी प्रतिकूल बदलाव आयें हैं।

साथ ही लोगों के भोजन तथा खाद्य सुरक्षा पर पड़ने वाले प्रभावों को देखें तो इसमें भी विपरीत प्रभाव दिखता है। यद्यपि बाढ़ क्षेत्र के लोग भोजन के रूप में मछली का सेवन व्यापक तौर पर करते हैं। मछली-भात उत्तर बिहार का मुख्य भोजन है जिसे यहाँ का समुदाय दैनिक भोजन के रूप में खाता है। मगर कोसी नदी पर तटबंध तथा बराज के निर्माण के बाद इस इलाके में मतस्य पालन भी प्रभावित हुआ है और मछलियों की प्रजातियों की संख्या भी घटी है। नदी जल के प्रवाह में आने वाली बाधाओं के कारण ऐसा हुआ है। सहरसा के एक ग्रामीण निवासी के अनुसार "हम लोगों ने गरीबी देखना शुरू किया 1970 में, जब से हमारा गाँव कटना शुरू हो गया। उस वक्त तक हमारे यहाँ रोहू, गागर, गोलहा, और बोआरी मछलियाँ बहुत होती थीं। इसमें से सबसे हल्की मछली का वजन पांच किलोग्राम होता था। अब यह मछलियाँ दिखाई भी नहीं देती। इसके साथ ही कोकचा, कउआ, धेल्लै, अरुआरी, बेलौनी, रेवा इत्यादि प्रकार की मछलियाँ भी समाप्त हो गयीं हैं (मिश्र, 2006)। जो उत्तर बिहार का क्षेत्र कभी अपनी सम्पन्नता के लिए जाना जाता था वह आज गरीबी तथा पिछड़ेपन का पर्याय बन हुआ है। नेशनल फॅमिली हेल्थ सर्वे (2015-2016) के आंकड़ों के अनुसार उत्तर बिहार के सहरसा जिले के छह-59 माह के 69 बच्चे तथा 15-49 वर्ष की 61. 1: महिलाएं व्यापक रूप से अनीमिया की समस्या से ग्रसित पाएं गयें हैं। साथ ही इन क्षेत्रों में पलायन का प्रतिशत बहुत ही अधिक है। बाढ़ के समय लगभग 90-95 प्रतिशत पुरुष जनसँख्या जीवन-यापन तथा अपने परिवार के लोगों की भोजन की आवश्यकता की पूर्ति के लिए पलायन को मजबूर होते हैं। आज बिहार का यह क्षेत्र पूरे भारत में मजदूर भेजने का उपजाऊ मैदान बन गया है।

## निष्कर्ष

पूर्व उपनिवेशिक समाज में पूर्वी भारत के किसानों ने बाढ़ के उपयोग तथा उस पर निर्भर कृषि की परंपरा को विकसित किया था। बाढ़ से साथ समायोजन स्थापित करके जीने का यह ज्ञान लोगों की कई पीढ़ियों का संकलित ज्ञान था जिसे हर पीढ़ी ने आगे की पीढ़ी को आगे बढाया। भारत में लोगों ने नदियों को विभिन्न जीवंत रूपकों के माध्यम से समझा। नदी तथा सिंचाई की जिस परंपरागत पद्धति को समाज समावेशी तरीके से व्यवहार में लाता आया था उसे आधुनिक तकनीकी ज्ञान से पिछड़ा बता दिया गया तथा औपनिवेशिक शासन ने इस समुदाओं के नदियों के साथ सम्बन्ध को जहाँ व्यापक रूप से परिवर्तित किया वहीं बाढ़ की समस्या को और

भयंकर बनाने का कार्य किया है। तथा साथ ही व्यापक आर्थिक, सामाजिक तथा पारिस्थितिकीय परिवर्तनों को अंजाम दिया। ब्रिटेन ने अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए एक संपन्न क्षेत्र तथा एक सम्पन्नं जल संस्कृति को आधुनिक तकनीक से बर्बाद किया। ब्रिटिश उपनिवेशी शासन से स्वतंत्रता के उपरांत भारतीय राज्य ने भी इस सम्बन्ध में जो नीति अपनाई उसमे पूर्व अपनाई गयी नीति की निरंतरता देखने को मिलती है। बाढ़ नियंत्रित करने की लिए तटबंधों की लम्बाई जितनी बढ़ाई जा रही है उतना ही बाढ़ प्रभावित क्षेत्र का विस्तार भी बढ़ता जा रहा है। यही कारण है कि स्थानीय लोग आज भी इस तटबंधों को स्वीकार नहीं कर पाएं हैं तथा बाढ़ के समय तटबंधों को काटकर पर अपना प्रतिरोध तथा इन आधुनिक तकनीकों की सीमाओं पर सवालिया निशान लगाते हैं।

## ग्रन्थसूची

1. अनुपम मिश्र. (2008). *तैरने वाला समाज आज डूब रहा है.* समसामयिक वार्ता.
2. अल्बर्ट रोराबचेर, *"बिहार एंड मिथिला : द हिस्टोरिकल रूट्स ऑफ बैकवर्डनेस"* मनोहर पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2016.
3. गौरीनाथ (2019) संपा. कोसी के किसान , कोसी प्रतिष्ठान, सुपौल, बिहार
4. प्रवीण सिंह. (2003). *कोलोनिसिंग द रिवरः कोलोनियल टेकनोलॉजी, इरीगेशन एंड फ्लड कण्ट्रोल इन नार्थ बिहार 1850-1950.* पी.एच.डी थीसिस, न्यू दिल्ली, सेण्टर ऑफ हिस्टोरिक स्टडीज, जवाहरलाल नेहरु यूनिवर्सिटी.
5. प्रवीण सिंह. (2008). द कोलोनियल स्टेट, जमींदार एंड थे पॉलिटिक्स ऑफ फ्लड कण्ट्रोल इन नार्थ बिहार 1850-1945. *सेज पब्लिकेशनस* 45 (2).
6. पंकज झा (2017), बाढ़ से जियब बाँध से मरबः बाढ़ नियंत्रण की राजनीति, *प्रतिमानः समय समाज और संस्कृति,* जनवरी-जून, वर्ष-5, अंक-9,
7. माधव गाडगिल तथा रामचंद्र गुहा. (1995). *इकोलॉजी एंड इकविटीः द यूज एंड एब्यूज ऑफ नेचर इन कंटेम्पररी इंडिया.* पेंगुइन बुक्स.
8. दिनेश कुमार मिश्र, (2009) "बाढ़ की राजनीति बनाम राजनीति की बाढ़", *कोसी मित्र पत्रिका,* अंक-2, मई-अगस्त.
9. दिनेश कुमार मिश्र, *"कोसी नदी की कहानीः दुई पाटन के बीच में",* लोक विज्ञान संस्थान, देहरादून, 2006.
10. दिनेश कुमार मिश्र, (2001) "लिविंग विथ फ्लड", *इकॉनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली,* सितम्बर.
11. रामचंद्र गुहा माधव गाडगिल. (1992). *द फिस्सरड लैंड : इकोलॉजिकल हिस्ट्री ऑफ इंडिया. (*कमल नयन चौबे, अनु.) ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

12. सत्यजीत सिंह. (1997). *टेमिंग द वाटरः द पोलिटिकल इकॉनमी ऑफ लार्ज डैम इन इंडिया.* नई दिल्ल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
13. नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे (2015-2016), परिवार और स्वास्थ्य कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार.
14. पुष्यमित्र, *"रेडियो कोसी"*, ज्योतिपर्व प्रकाशन, गाजियाबाद, 2016.
15. अमरनाथ, "भूख मिटाने के लिए बच्चों की मजदूरी पर निर्भर हैं किसान", *इंडिया वाटर पोर्टल.* URL& http%//hindi-indiawaterportal-org/node/49964-

# बांग्लादेश में इस्लामिक उग्रवाद का बदलता स्वरूप और उसकी चुनौतियाँ

## रविन्द्र कुमार मीना

***lkjk'k*** *वर्तमान समय में बांग्लादेश इस्लामिक उग्रवाद के एक नए केन्द्र के रूप में उभरा है जिसका ज्वलंत उदाहरण ढाका में 1 जुलाई 2016 के आर्टिशन कैफे पर हुए हमले के रूप में देखा जा सकता है। जिसमें 20 से अधिक विदेशी नागरिक मारे गए थे। इस हमले की विशेषता यह रही कि इसने देश के इतिहास में पहली बार वैश्विक इस्लामिक उग्रवादी संगठन 'इस्लामिक स्टेट' तथा स्थानीय जेहादी संगठनों के व्यापक परिदृश्य को साफ-साफ परिलक्षित किया। मौजूदा दौर में इस्लामिक उग्रवादी संगठन अपना सीधा निशाना उदारवादी समूहों, ब्लार्गस एवं गैर-मुस्लिम समुदायों (अहमदिया) को प्रमुख रूप से बना रहे हैं। देश में समकालीन इस्लामिक उग्रवाद के इस स्वरूप को उभारने में वस्तुतः कई कारकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा, लेकिन इनमें सबसे महत्वपूर्ण कारक घरेलू राजनीतिक दशा, विशेष इस्लामिक संस्कृति की उपज तथा वैश्विक परिदृश्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।*

### प्रस्तावना

यद्यपि 1971 में बांग्लादेश की स्वतंत्रता के बाद धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रवाद, लोकतंत्र एवं समाजवाद-शासन के चार प्रमुख आधार स्तम्भ थे। लेकिन शासन के आरम्भिक वर्षों में ही विशेषकर 1974 के बाद देश के संस्थापक शेख मुजीबुर रहमान ने अपने शासन कार्यों एवं दैनिक जीवन में धर्मनिरपेक्षता एवं बांग्ला अस्मिता के स्थान पर इस्लामिक मूल्यों, परम्पराओं तथा विदेश नीति में इस्लाम को तवज्जो देना शुरू कर दिया। जो कालान्तर में 1974 एवं 1975 में क्रमशः *आर्गेनाइजेशन ऑफ इस्लामिक कोओपरेशन* एवं *इस्लामिक डेवलेपमेंट बैंक* आदि की सदस्यता ग्रहण करने के बाद साफ झलकने लगा।[1]

लेकिन यथार्थ रूप से देश में बांग्ला पहचान एवं धर्म निरपेक्षता के ऊपर सबसे बड़ा प्रहार सैनिक शासक जिया-उर-रहमान (1975-1981) के शासनकाल में पड़ा जब

रहमान ने अपने शासनकाल में शासन को औचित्यपूर्ण ठहराने के लिए कई संवैधानिक संशोधनों एवं शासनगत नियमों के द्वारा इस्लाम को आरोपित करना शुरू कर दिया। इस क्रम में जिया-उर-रहमान ने सर्वप्रथम संविधान में निहित प्रस्तावना में 'अल्लाह की असीम शक्ति में विश्वास' ('Absolute Trust and Faith in the Almighty Allah') तथा 'बिस्मिल्लाह अर-रहमान-अर-रहीम' ('Bismillah-ar-Rahaman-ar-Rahim') आदि शब्दों को स्थापित करके धर्मनिरपेक्षता की पहचान को हटाकर इस्लाम के रूप में विस्थापित कर दिया।[2] साथ ही 1979 में कार्यपालिका आदेश के द्वारा *जमात-आई-इस्लामी* [3] की राजनीतिक बहाली एवं 1979 में बांग्लादेश नेशनल पार्टी की स्थापना के जरिए देश में इस्लामिक माहौल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।[4] जनरल इरसाद (1981-1990) ने भी अपने शासन को बनाए रखने के लिए समाज में इस्लामीकरण के आयामों को खुलकर प्रोत्साहित किया, जिसमें-क्वामी-मदरसों [5] एवं इस्लामिक कट्टरवादी संगठनों को प्रश्रय देना प्रमुख रहे। लेकिन अपने शासन काल का सबसे महत्वपूर्ण निर्णय जून 1988 में आया, जब 'इस्लाम' को राज्य धर्म के रूप में घोषित करते हुए बांग्ला पहचान को हमेशा के लिए इस्लाम के अधीन स्थापित कर दिया। कालान्तर में देश में इस्लामिक माहौल को प्रज्ज्वलित करने में सबसे निर्णायक भूमिका निभायी।

## लोकतंत्र की पुनः बहाली एवं इस्लामिक उग्रवाद का उदय

देश में 90 के दशक के बाद उपजे राजनीतिक परिदृश्य ने इस्लामिक उग्रवाद का मार्ग प्रशस्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। गौरतलब है कि स्वतंत्र बांग्लादेश के समय धर्मनिरपेक्षता शासन के चार आधार स्तम्भों में से एक आधार स्तम्भ था। लेकिन लोकतंत्र की पुनः बहाली के बाद धर्मनिरपेक्षता की राह में सबसे बड़ा बाधा आवामी लीग ने खड़ी की है, जिसने 1991 के चुनाव के बाद सार्वजनिक सभाओं, राजनीतिक अभिवादन तथा दैनिक जीवन में खुलकर इस्लामिक मूल्यों का प्रयोग करके देश में छद्म धर्मनिरपेक्षता की राजनीति को प्रोत्साहन देना शुरू कर दिया। साथ 1994 में *जमात-आई-इस्लामी* के साथ राजनीति सहभागिता के दाव-पेंच ने भी परोक्ष रूप से देश में *जमात-आई-इस्लामी* एवं अन्य इस्लामिक संगठनों को आंशिक रूप से समाज में इस्लामीकरण की राजनीति की ओर धकेलने में महत्त्वपूर्ण साबित हुई है।[6]

समकालीन इस्लामिक उग्रवादियों एवं जमात-आई-इस्लामी की कट्टरवादी भावना के विकास में मौजूदा राजनीतिक परिदृश्य का सबसे बड़ा हाथ रहा है। जिसमें आवामी लीग एवं बांग्लादेश नेशनल पार्टी के बीच राजनीतिक हिंसा, हड़ताल एवं राजनीतिक प्रताड़नाओं का सबसे बड़ा योगदान रहा है।[7] जैसा कि बांग्लादेश *इनस्टिट्यूट ऑफ ह्यूमन राइट्स* की रिपोर्ट के अनुसार अक्टूबर 2001 से फरवरी 2005 की अवधि में लगभग 1100 से अधिक लोग राजनीतिक हिंसा का शिकार हुए हैं।[8] लेकिन देश के इतिहास में इस्लामिक दलों के लिए सबसे निर्णायक मोड़ अक्टूबर 2001 में आया, जब

बांग्लादेश नेशलन पार्टी एवं जमात-आई-इस्लामी के राजनीतिक गठबंधन में खुलकर इस्लामिक उग्रवादियों को प्रश्रय दिया गया। साथ ही समाज में विशेष इस्लामिक लोक संस्कृतियों के माध्यम से देश में इस्लामिक कट्टरवाद की भावना को जगाने में सत्तागत पार्टी ने परोक्ष रूप से समर्थन किया।

इस दौर में इस्लामिक कट्टरवाद को बढ़ाने में इस्लामिक लोक संस्कृतियों का बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, जिसमें प्रमुख रूप से 'वजमहफिल' (मौलवी के द्वारा धार्मिक व्याख्यान) 'सालिश' (स्थानीय स्तर पर मौलवियों के द्वारा विवादों को सुलझाना) तथा 'फतवा' (इस्लामिक विशेषज्ञ मुफ्ती के द्वारा किसी विषय पर अपना वक्तव्य सुनाना) आदि प्रमुख लोक संस्कृति रही है, जिनका प्रयोग *जमात-आई-इस्लामी* के द्वारा सूदूर ग्रामीण इलाकों में कट्टरवाद की भावना को भुनाने के लिए धड़ल्ले से प्रयोग किया गया है। उदाहरण के तौर पर 2001 में *जमात-आई-इस्लामी* के सांसद दिलावर हुसैन 'वजमहफिल' नामक इस्लामिक लोक संस्कृति को आधार बनाकर युवाओं के बीच भारत विरोधी एवं ओसामा बिन लादेन की विचारधारा की प्रशंसा के तौर पर बखूबी प्रयोग किया है।[9] वहीं 'सालिश' के द्वारा भी स्थानीय विवाद को सुलझाने के नाम पर महिलाओं के अधिकारों का हनन एवं शोषण की घटनाएँ इस दौर की सबसे बड़ी विशेषता रही है। लेकिन इस दशक में महिलाओं के खिलाफ शोषण के आयाम के रूप में इस्लामिक सिद्धान्त फतवा का इस्तेमाल राजनीतिक दुष्प्रभाव (Political Propagand) के रूप में इस्लामिक कट्टरवादियों ने बखूबी किया, जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण 1993 में तसलीमा नसरीन के 'लज्जा'[10] नामक उपन्यास पर प्रतिबंध के रूप में देखने को मिला। वही इस्लामिक लोक संस्कृति के अन्य प्रारूपों में आधुनिक इस्लामिक उपन्यास (प्रतिरक्षा, गोलापार-क्रान्ता) जेहादी सीडी, कैसेट्स एवं इस्लामिक प्रेरक गानों ने भी देश में जेहादी विचारों को आगे बढ़ाने में अग्रणी भूमिका निभायी है।

## इस्लामिक उग्रवाद की उत्पत्ति एवं प्रमुख इस्लामिक संगठन

बांग्लादेश के इतिहास में बांग्लादेश नेशनल पार्टी एवं जमात-आई-इस्लामी का शासनकाल (2001-2006) इस्लामिक उग्रवादियों के लिए स्वर्णकाल साबित हुआ है। इस शासनकाल की प्रमुख विशेषता यह रही कि इसमें पहली बार इस्लामिक उग्रवादियों को राजनीतिक संरक्षण प्राप्त हुआ। इसी के मद्देनजर अली रियाज़ ने उजागर किया है कि इस्लामिक उग्रवादियों के लिए 2005 सबसे महत्त्वपूर्ण वर्ष रहा जिसमें विभिन्न इस्लामिक उग्रवादी संगठनों ने लगभग 45 मिनट में करीब 450 से अधिक बम विस्फोट करके सम्पूर्ण विश्व का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने में पूरी तरह सफल रहे।[11] इसी परिदृश्य पर हिरानमय कारलेकर ने समाज में बढ़ते हुए इस्लामिक कट्टरवाद की दशा को स्पष्ट करते हुए बताया की इस दौर में इस्लामिक उग्रवादियों ने दो तरीके से इस्लामीकरण की प्रक्रिया को अंजाम दिया। *प्रथम* देश में इस्लामीकरण का माहौल पैदा करके तथा *दूसरा* देश की शिक्षा प्रणाली में इस्लामिक मूल्यों का

समावेश करके देश में इस्लामिक उग्रवाद के लिए अनूकूल परिस्थितियों को उत्पन्न करके।[12] अतः 90 के दशक के बाद देश के निम्नलिखित उग्रवादी संगठनों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित हैः–

### *हरकत-उल-जिहाद-अल-इस्लामी बांग्लादेश*

यह संगठन 1988 में मौलाना अब्दुर रहमान फारुकी और अलीबुल हक के द्वारा स्थापित किया गया था। जो देश का सबसे पुराना इस्लामिक उग्रवादी संगठन है। इस मुख्य लक्ष्य जेहाद की संकल्पना के लिए विश्व में मुजाहिदीनों को तैयार करना रहा है। यह संगठन 1998 में ओसामा बिन लादेन के द्वारा जारी किए गए 'फतवा' का आधिकारिक समर्थक संगठन है। इसका सबसे बड़ा हमला 2004 में आवामी लीग की चुनावी सभा पर था। साथ ही यह पाकिस्तानी जेहादी संगठन *लश्कर-ए-तैयबा* एवं भारत विरोधी गतिविधियों के लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार रहा है। लेकिन 17 अक्टूबर 2005 को खालिदा सरकार ने इसको प्रतिबंधित कर दिया है। वही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर 2008 से अमेरीका ने भी इस पर प्रतिबंध लगा दिया है।

### *जमात-उल-मुजाहिद्दीन बांग्लादेश*

यह भी 90 के दशक में अस्तित्व में आया था जिसकी स्थापना अब्दुर रहमान सिद्धिकी इस्लाम (बांग्ला-भाई) ने की थी। इस संगठन ने सबसे ज्यादा आतंकी हमलों को अंजाम दिया है, जिसमें सबसे प्रमुख 2005 में 450 से ज्यादा बम विस्फोट करने में इसका हाथ रहा। इस संगठन ने अपनी अधिकतर गतिविधियों को अंजाम *जमात-आई-इस्लामी* के छात्र संगठन *'इस्लामी छात्र शिविर'* के माध्यम के दिया है। लेकिन सरकार ने भारी अन्तर्राष्ट्रीय दबाव के चलते इस पर 23 फरवरी 2005 में प्रतिबंध लगा दिया गया। वहीं 2007 में आतंकवाद निरोध के तहत इसके 700 से अधिक सदस्यों को सरकार गिरफ्त में ले चुकी है।[13]

### *हिजब-उत-ताहिर*

यह विदेशी इस्लामिक उग्रवादी संगठन है, जिसकी स्थापना 1953 में की गई थी लेकिन बांग्लादेश में यह अपनी गतिविधि 2001 में मोहिद्दीन अहमद के नेतृत्व में अंजाम दे रहा था। इसका दायरा प्रमुख रूप से देश के विश्वविद्यालयों विशेषकर ढाका विश्वविद्यालय एवं चटागाँव में युवाओं के बीच इस्लामिक कट्टरवाद को बढ़ाना इसका प्रमुख लक्ष्य रहा। लेकिन सरकार ने 2009 में इस पर प्रतिबंध लगा दिया। इसके अलावा अन्य जेहादी संगठनों में *शहादत-ए-अल हिकमा* एवं *हिजबुल तौउहिद* आदि संगठन भी देश में इस्लामिक स्टेट की संकल्पना को अंजाम देने के लिए प्रछन्न रूप से जेहादी गतिविधियों को संचालित कर रहे हैं।[14]

### *अन्तरराष्ट्रीय परिदृश्य तथा नए इस्लामिक उग्रवादी संगठनों का पुनः उदय*

देश में वैश्विक इस्लामिक उग्रवाद का प्रभाव 1 जुलाई 2016 को सामने आया जब इस्लामिक स्टेट[15] की विचारधारा से प्रेरित होकर ढाका के आर्टिशन कैफे पर हमले के द्वारा युवा जिहादियों (17 से 26 वर्ष तक की आयु सीमा) ने 20 से अधिक विदेशी नागरिकों को मौत की घाट उतार दिया। हालाँकि सरकार ने इस हमले के पीछे इस्लामिक स्टेट के हाथ का खण्डन किया है, लेकिन इसकी व्यापकता, भीषणता और कार्यशैली काफी हद तक इस्लामिक स्टेट की विचारधारा से प्रेरित थी।[15] सरकार के अनुसार यह हमला नियो जमात-उल-बांग्लादेश के प्रमुख तमीम चौधरी के द्वारा संचालित किया गया था।[16]

विशेषकर 2013 के बाद देश की घरेलू परिस्थितियों का फायदा उठाते हुए 'इस्लामिक स्टेट आधुनिक सोशल साइट्स जैसे-फेसबुक, यूट्यूब एवं इस्लामिक पत्रिकाओं ('अमाक' न्यूज ऐजेन्सी) आदि आधुनिक उपागमों के माध्यम से युवाओं के बीच कट्टरवादी विचारधारा फैलाने में पूरी तरह कामयाब रहे हैं। इस्लामिक स्टेट के अलावा एक अन्य वैश्विक इस्लामिक उग्रवादी संगठन *'अलकायदा इन द इण्डियन सब कॉन्टीनेंट'*[17] भी 2014 के बाद से देश में अपना प्रभाव छोड़ने में पूरी तरह से सफल रहा है, जिसका ज्वलंत उदाहरण एक नए इस्लामिक उग्रवादी संगठन अन्शार-अल-इस्लाम (अन्शारूल्लाह-बांग्ला टीम) के रूप में देखा जा सकता है। यह 2007 में स्थानीय स्तर पर मध्य एशिया के इस्लामिक संगठन *जमा-अ-तुल* मुसलेमिन से निकला है। इस संगठन की विचारधारा यमन में अलकायदा के नेता अनवर-अल-अवलाकी तथा मुफ्ती जेशीमुद्दीन रहमानी के जेहादी विचारों से प्रेरित रही है। इस संगठन ने अपना अधिकतर आधार आधुनिक पढ़े-लिखे सम्भ्रांत वर्ग को बनाया है, जिसका प्रमुख निशाना मुख्य रूप से उदारवादी समूहों, गैर-सरकारी संगठन एवं ब्लॉगर्स रहे हैं। यह पूर्ववर्ती इस्लामिक उग्रवादी संगठनों *जमात-उल-मुजाहिद्दीन* बांग्लादेश तथा हरकत-उल-जिहाद-अल-बांग्लादेश आदि से भिन्न अपनी गतिविधियों को अंजाम देता है। यह सामान्यतयाः इस्लामिक उग्रवाद की विचारधारा के खिलाफ आवाज उठाने वाले विचारों को ही उन्मूलन करने पर ज्यादा तवज्जो देता है। इसके अलावा यह विशेष रूप से अपने छोटे-छोटे समूहों तथा टुकड़ियों के द्वारा चार से सात लोगों का संगठन बनाकर अपनी गतिविधियों को अंजाम देता है।[18] जैसा कि मार्च 2017 में जारी किए गए वीडियो में इसने स्पष्ट किया कि वह देश में क्वामी-मदरसों में सुधार तथा गैर-सरकारी संगठनों (क्रिश्चियन गैर-सरकारी संगठनों) के खिलाफ है।[19]

इसके अलावा मौजूदा दौर में इस्लामिक उग्रवाद की विचारधारा का सबसे बड़ा प्रभाव देश की युवा महिलाओं पर पड़ रहा है, जो जेहादी गतिविधियों की तरफ प्रवृत्त हो रही हैं। इस मुहिम में देश में प्रथम जेहादी महिला का उदाहरण दिसम्बर 2016 में सामने आया है। जब शकीरा नामक महिला ने अपने आप को आत्मघाती हमले में

उड़ा लिया। इस परिदृश्य को उजागर करते हुए काउन्टर टेरिरिज़्म और ट्रांसनेशनल क्राइम की रिपोर्ट में कहा गया है कि अधिकतर महिलाएँ जेहादी गतिविधियों की प्रेरणा सोशल साइट्स एवं इस्लामिक स्टेट की बढ़ती लोकप्रियता को आधार बनाकर ग्रहण कर रही हैं।[20]

## निष्कर्ष

वर्तमान में इस्लामिक उग्रवाद के उद्भव के पीछे ऐतिहासिक रूप से सैनिक शासकों के कार्यकालों में इस्लाम को जानबूझकर राजनीतिक लाभ के लिए एक यंत्र के रूप में प्रयोग किया है। जो कालान्तर में 90 के दशक में लोकतंत्र की पुनः बहाली के उपरान्त देश की दोनों राष्ट्रीय दलों की राजनीतिक वैमनस्यता एक खालीपन को जन्म दिया है, जिसकी पूर्ति विभिन्न इस्लामिक उग्रवादी संगठनों तथा *जमात आई इस्लामी* ने समाज में इस्लामीकरण की भावना उत्पन्न करके काफी हद तक पूरी करने की कोशिश की है।

हालाँकि देश में 2008 में आवामी लीग के शासन काल में अधिकतर इस्लामिक उग्रवादी संगठनों को आतंकवाद निरोधक कानून के तहत प्रतिबंधित कर दिया गया था। लेकिन 2013 के बाद शाबाग आन्दोलन[21] एवं इस्लामिक स्टेट की बढ़ती लोकप्रियता से पुनः देश में इस्लामिक उग्रवादी संगठनों के उभरने का मौका मिला है। समकालीन सरकार के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती आधुनिक तकनीकी से युक्त युवाओं के बीच बढ़ते प्रभाव एवं इस्लामिक उग्रवादियों के द्वारा फैलाए जा रहे राजनीतिक दुष्प्रभाव को रोकना-भविष्य के लिए सबसे बड़ा चुनौती रहेगा।[22]

## संदर्भ सूची

1. Raj Kumar Sharma, "Rise of Islamic Radicalism in Bangladesh Implications for the Security of North-East India," *Himalayan and Central Asian Studies* Vol.19. No. 1-2, January-June 2015, P. 69.
2. Ali Riaz, *Bangladesh : A Political History since Independence*, London, New York, I.B. Tauris, 2016. P. 72.
3. स्वतंत्रता संग्राम के दौरान (1971) जमात–आइ–इस्लाम के प्रमुख धड़े 'रजाकरस' एवं अलशम्स ने 'मुक्तिबाहिनी' (बांग्लादेशी सेना) एवं बांग्ला-धर्मनिरपेक्ष लोगों के खिलाफ व्यापक कत्लेआम करने के चलते 1971 में प्रतिबंध लगा दिया था, लेकिन 1979 में कार्यपालिका के आदेश के बाद जमात-आई-इस्लामी की राजनीतिक सहभागिता पुनः बहाल कर दी गयी।
4. Martin Griffiths & Mubashar Hasan, "Playing with Fire : Islamism and Politics in Bangladesh," *Asian Journal of Political Science*, Vol. 23, No. 2. 2015, P. 234.
5. क्वामी-मदरसा– यह मूलतः इस्लामिक परम्परा के आधार पर कुरान, हदीश तथा सुन्ना आदि सिद्धान्तों को आधार बनाकर अरैबिक भाषा एवं शरीयत के नियमों के इर्द-गिर्द

पाठ्यक्रम पर आधारित है जिसके आधार पर 80 के दशक के दौरान मोहम्मद अशादुल्लाह-अल-गालिब ने 'अहल-ए-हदीथ आन्दोलन बांग्लादेश' नामक संगठन के द्वारा मररसों को राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए खूब इस्तेमाल किया था।

विस्तृत जानकारी के लिए देखें–

Ali Riaz, *Faithful Education Madrassahs in South Asia*, London, , Rutgers Univercity Press,2008, P-116. - 150.

6. Ali Riaz, "Traditional Institutions as Tools of Political Islam in Bangladesh," *Journal of Asian and African Studies*, Vol. 40. No. 3, 2005, P. 173.

7. लोकतंत्र की वापसी के बाद (1971) देश के प्रमुख राष्ट्रीय दल आवामी लीग एवं बांग्लादेश नेशनल पार्टी के बीच अस्मिता की जंग हमेशा बनी रही है, जहाँ आवामी लीग मुजीबुर रहमान, बांग्ला-पहचान तथा भारतीय झुकाव की राजनीति को तवज्जो देता है। वहीं बांग्लादेश नेशनल पार्टी ने बांग्लादेश राष्ट्रवाद के आधार पर भारत विरोधी एवं इस्लामिक मूल्यों को राजनीति में समावेश की राजनीति को तवज्जो देने की पुरजोर कोशिश की है।

विस्तृत जानकारी के लिए देखें–

Ali Riaz and C. Christine Fair (eds.) *Political Islam and Governance in Bangladesh*, New York, Routledge, 2011, P.13.

8. 21 अगस्त 2004 को ढाका में आवामी लीग की रैली पर हुए ग्रेनेड हमला अब तक का सबसे बड़ा राजनीतिक हमला था, जिसमें 22 से ज्यादा लोग मारे गए थे उसमें आवामी लीग के प्रमुख नेता आई. रहमान भी शामिल था।

9. Syed Jamil Ahmed, "Hegemony Resistance and Subaltern Silences : Lessons From Indigenous Perfarmences of Bangladesh," *TDR-the Drama Review 1988*, Vol. 50, No. 2, 2006, P. 74.

10. 'लज्जा' तसलीमा नसरीन द्वारा 1993 लिखित उपन्यास हैं जिसमें भारत में बाबरी मस्जिद (1992) के विध्वंस के बाद बांग्लादेश में मुस्लिम बहुसंख्यकों के द्वारा हिन्दू महिलाओं के खिलाफ किए गए अत्याचारों का वर्णन है। लेकिन 'सहाबा सैनिक परिषद' नामक कट्टरवादी संगठन ने बांग्लादेश में तसलीमा नशरीन के खिलाफ फतवा जारी करते हुए इसका पुरजोर विरोध किया था।

विस्तृत जानकारी के लिए देखें–

Md. Mahmudul Hasan, "Free Speach, Ban and 'Fatwa'. A Study of the Taslima Nasrin Affair," *Journal of Postcolonial Writings*, Vol. 46, No. 5, 2010, 540-52.

11. Ali Riaz, " Bangladesh " in 2005: Standing at the Crossroads." *Asian Survey*, Vol. 46, No. 1, 2005. P. 108.

12. Hiranmay Karlekar, Bangladesh: *The Next Afghanistan*, Sage Publication, New Delhi, 2005, p. 253.

13. Sajjan M. Gohel, "Bangladesh an Emerging Centre for Terrorism in Asia", *Prespectives on Terrorism*, Vol. 8, No. 3, June 2014, p. 87.

14. Sreeradha Datta, "Bangladesh and Religions Extremism," *Aakrosh* Vol. 9, No. 32, 2006, p. 72.

15. इस्लामिक-स्टेट की स्थापना 1999 में अबु बकर ने इस्लामिक स्टेट ऑफ इराक एवं लेवेन्त के नाम से की थी लेकिन वैश्विक जगत में इसकी पहचान 2013 में इराक के मोशुल शहर पर कब्जा करने के बाद मिली। इसका मुख्य उद्देश्य विश्व में 'मुस्लिम खिलाफत' की स्थापना करना है।

16. Abdul Basit, Sara Mahmood, Iftekharul Bashar and Mohmmed Sinan Syech, "South Asia: Afghanistan, Pakistan, Bangladesh, India" *Counter Terrorist Trends and Analysis,* Vol. 10, No. 2018, p. 45.

17. 'अलकायदा इन द इण्डियन सब कॉन्टीनेट' इस्लामिक उग्रवादी संगठन-अलकायदा की पाँचवी शाखा है जो अल जवाहरी के द्वारा 2014 में दक्षिण एशिया में इस्लामिक स्टेट की स्थापना के लिए बनाया गया था।

18. Shahab Enam Khan, "Bangladesh: The Changing Dynamics of Violent Extremism and the Response of the State", *Small wars & Insurgencies,* Vol. 28, No. 1, 2017, p. 202.

19. Iftekharul Bashar, "The Evolving Threat in Bangladesh" *Counter Terrorist Trends and Analyses* Vol. 9, No. 3, March 2017, p. 16.

20. Nazneen Mohsina, "Growing Trends of Female 'Jihadism' in Bangladesh," *Counter Terrorist Trends and Analyses,* Vol. 9, No. 8, August 2017, p. 7.

21. शाबाग-आन्दोलन मूलतः फरवरी 2013 में ढाका में हुआ था, जिसका प्रमुख उद्देश्य 1971 में जमात-आई-इस्लामी के द्वारा युद्ध जनित अपराध के दोषियों को सजा दिलाना था। इसी प्रक्रिया के तहत इंटरनेशनल-क्राइमस ट्रीब्यूनल ने फरवरी 2013 में जमात-आई-इस्लामी के दोषी नेताओं के खिलाफ कार्रवाई के आदेश दिए हैं।

22. अली रीयाज के अनुसार 2013 के बाद बांग्लादेश में प्रकट हुआ इस्लामिक उग्रवाद 5वीं पीढ़ी से सम्बन्धित है जो प्रथम पीढ़ी (अफगान मुजाहिदीन 1979-1990) से एकदम विपरीत वैश्विक नेटवर्क एवं आधुनिकी तकनीकी से सम्बन्धित है–

    विस्तृत जानकारी के लिए देखें–

    Ali Riaz, "Who are the Bangladeshi Militants?" *Prespectires on Terrorism*, Vol.10, No. 1, Feb-2016, p. 2-18.

# भारत में निर्धनता की समस्या : चुनौतियाँ और समाधान


## राजबीर सिंह दलाल एवं जगजीत सिंह



***lkjk'k%*** *भारतीय अर्थव्यवस्था का आकार इतना बढ़ गया है कि यह दुनिया में तीसरे स्थान पर आने वाली सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है, वहीं दूसरी तरफ भारत की 60 फीसदी आबादी अभी भी भरपेट खाना नहीं खा पाती। आज भारत में आर्थिक विकास जितना बढ़ रहा है गरीबी भी उतनी ही बढ़ रही है। देश में गरीबी-उन्मूलन के लिए योजनाएं तो खूब बनाई गई परन्तु इनका कोई विशेष प्रभाव देखने को नहीं मिला है। वास्तव में अमीरी और गरीबी की विषमता घटने की बजाए बढ़ गई है। भारत में गरीबों की कुल संख्या में वृद्धि हो रही है जो कि विकास में एक बाधा है तथा इसके अन्तः विरोधों को प्रदर्शित करती है। गरीबी एक बीमारी की तरह है जिससे अन्य समस्याओं जैसे अपराध, धीमा विकास, खराब सेहत, अशिक्षा आदि जुड़े हुए हैं।*[1]


**प्रस्तावना**

निःसन्देह आज भारत के सामने अनेक समस्याएं हैं उनमें से सबसे गम्भीर समस्या गरीबी है। भारत को गरीबी अपनी विरासत ब्रिटिश साम्राज्य से आर्थिक शोषण में मिली हुई है। इस लेख के माध्यम से निर्धनता की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है तथा इसके पीछे कारणों व उनके उन्मूलन हेतु भारत सरकार द्वारा समय-समय पर किये गए प्रयासों का उल्लेख किया गया है तथा साथ ही इस समस्या से निपटने हेतु कुछ उपायों को सुझाया गया है।

**vo/kkj.kk%** वर्तमान सन्दर्भ में गरीबों को आंकना भी एक नई चुनौती है क्योंकि लोक नियंत्रण आधारित संसाधन लगातार कम हो रहे हैं। ऐसा नही है कि गरीबी को मिटाना सम्भव नही हैं परन्तु वास्तविकता यह है कि गरीबी को मिटाने की इच्छा शक्ति कहीं नहीं है। कई लोगों की सोच है कि गरीबी का बने रहना समाज की जरूरत है। व्यवस्था की मजबूरी है और सबसे बड़ी बात यह है कि गरीबी एक मुद्दा है।[5] गरीबी की कोई निश्चित परिभाषा निर्धारित नहीं है। परन्तु फिर भी हम गरीबी की अवधारणा

को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार, 'अवसरों और विकल्पों का अभाव ही गरीबी है यह मानव समाज में प्रभावकारी रूप से भागीदारी करने वाली मूल क्षमता का अभाव होना है इसका अर्थ है कि किसी के पास संसाधनों का उतना अभाव होना कि वह परिवार को न तो भर पेट भोजन कराने में सक्षम है और न ही उसके तन ढकने में, इसका मतलब असुरक्षा लाचारी और बहिष्कार होता है।' विश्व बैंक के अनुसार] 'किसी को उसके कल्याण से महरूम रखना भी गरीबी का एक रूप है इसमें कम आय और आत्म सम्मान से जीने के लिए मूलभूत चीजों एवं सेवाओं को ग्रहण करने की अक्षमता शामिल होती है। उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि गरीबी किसे कहा जाए इसकी कोई स्पष्ट या आर्थिक परिभाषा नहीं है।

**fu/kurk j[kk %** निर्धन कौन है या निर्धनता का निर्धारण कैसे किया जाए? यह एक जटिल प्रश्न है आमतौर पर निर्धनता का निर्धारण निर्धनता रेखा या गरीबी रेखा से निर्धारित किया जाता है। निर्धनता रेखा आय के उस स्तर को कहते हैं जिससे कम आमदनी होने पर इन्सान अपनी भौतिक जरूरतों को पूरा करने में असमर्थ होता है। गरीबी रेखा अलग-2 देशों में अलग-अलग होती है जैसे कि अमेरिका में निर्धनता रेखा भारत में मान्य निर्धनता रेखा से काफी ऊपर है। भारत में निर्धनता रेखा का निर्धारण करते समय जीवन निर्वाह के लिए खाद्य आवश्यकता, कपड़ों, जूतों, ईंधन और प्रकाश, भौतिक एवं चिकित्सा संबंधी आवश्यकताओं आदि पर विचार किया जाता है। निर्धनता रेखा का आंकलन करते समय खाद्य आवश्यकता के लिए वर्तमान सूत्र वांछित कैलौरी आवश्यकताओं पर आधारित है। जो ग्रामीण क्षेत्रों में 2400 कैलौरी प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन एवं नगरीय क्षेत्रों में 2100 कैलौरी प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन है।[6] इसी तरह तेंदुलकर समिति द्वारा आर्थिक आधार पर भी निर्धनता रेखा के आंकड़े निर्धारित किए गये हैं। वर्ष 2011-12 में किसी व्यक्ति के लिए निर्धनता रेखा का निर्धारण ग्रामीण क्षेत्रों में 816 रु. प्रतिमाह और शहरी क्षेत्रों में 1000 रु. प्रतिमाह निर्धारित किया गया था। इस हिसाब से शहर में 33.33 रु. प्रतिदिन तथा गांवों में 27.20 रु. प्रतिदिन उपभोग करने वाला व्यक्ति गरीब नहीं है लेकिन सच्चाई कुछ और ही दिखाई पड़ती है ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों की संख्या 25.7 प्रतिशत तथा शहरों में 37.7 प्रतिशत है।[7] इसी आधार पर योजना आयोग ने सर्वोच्च न्यायालय में दायर एक हलफनामें में दावा किया था कि ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिदिन 27 रु. तक तथा शहरी क्षेत्रों में प्रतिदिन 33 रु0 तक उपभोग व्यय करने वाले ही निर्धन हैं इससे ऊपर के लोग निर्धन नहीं हैं इस पर सरकार की तीखी आलोचना हुई थी। योजना आयोग ने इस स्थिति से स्वंय को बचाने के लिए प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद के तत्कालीन अध्यक्ष डा. सी. रंगराजन की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ समूह को गठित करके निर्धनता के आंकलन की विधि सुझाने की अनशंसा की थी। रंगराजन समिति के अनुसार, '2011-12 में ग्रामीण स्तर पर 39.9 प्रतिशत तथा शहरी स्तर पर 26.4

प्रतिशत निर्धनता अनुपात है'। इस समिति के अनुसार भारत में निर्धनों की संख्या 260. 5 मिलियन ग्रामीण तथा 102.5 मिलियन शहरी है इस तरह से भारत में 363.0 मिलियन लोग गरीब हैं।[8]

**fu/kurk d dkj.k** : भारत में व्यापक निर्धनता के अनेक कारण हैं जिनमें सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि प्रमुख हैं। परन्तु हम इस लेख में कुछ एक महत्वपूर्ण कारणों की चर्चा कर रहे हैं जो इस प्रकार से हैं:

1. *ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन:* भारत में निर्धनता का एक ऐतिहासिक कारण ब्रिटिश शासन के दौरान अत्यधिक आर्थिक शोषण और निम्न आर्थिक विकास दर है। औपनिवेशिक सरकार की नीतियों ने पारम्परिक हस्त शिल्पकारी को नष्ट कर दिया और लघु उद्योगों के विकास को हतोत्साहित किया। इस काल में भारतीय अर्थव्यवस्था पूरी तरह से एक निर्भर अर्थव्यवस्था मे तब्दील हो चुकी थी क्योंकि भारत से संसाधनों का प्रवाह एक तरफा था अर्थात् यहाँ से धन और संसाधन केवल ब्रिटेन में भेजे जा रहें थे भारतीयों के विकास हेतु कोई ध्यान नहीं दिया गया। विकास की धीमी दर से 1980 के दशक तक जारी रही इसके परिणामस्वरूप रोजगार के अवसर घटे और आय की वृद्धि दर गिरी। इसके साथ-2 जनसंख्या में उच्च दर से वृद्धि हुई इन दोनों ने प्रतिव्यक्ति आय की संवृद्धि दर को कम कर दिया। आर्थिक प्रगति को बढ़ावा और जनसंख्या नियंत्रण दोनों मोर्चों पर असफलता के कारण निर्धनता का प्रकोप बना रहा।

2. *आय की असमानता एवं भ्रष्टाचार* : उच्च निर्धनता दर का एक और कारण आय की असमानता एवं भ्रष्टाचार रहा है भूमि और अन्य संसाधनों का असमान वितरण तथा निरन्तर बढ़ता भ्रष्टाचार गरीबी की मात्रा और आकार दोनों ही बढ़ा रहा है। वर्तमान में देश की 90 प्रतिशत आबादी के पास 10 प्रतिशत संसाधन है और 10 प्रतिशत आबादी 90 प्रतिशत संसाधनों पर काबिज है। निजी सम्पति और गरीबी अपने आकार में अप्रत्याशित रूप से बढ़ी है। उदारीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण की प्रक्रिया के चलते समाज में विषमता और गहराई है। कोटक ग्रुप एवं अर्नस्ट एंड यंग की ताजा रिपोर्ट बताती है कि भारत में खुशग्वार अमीरों जिनकी सालाना आय तीन करोड़ रूपये से अधिक है, कि संख्या में 2013-14 में 16 प्रतिशत की बढोतरी हुई है जो कुल जनसंख्या में 1.17 लाख है। रिपोर्ट यह भी बताती है कि इनके खर्चों में सबसे ऊपर सोना और ज्वैलरी, कपड़े और एक्सेसरी तथा लक्ज़री हॉलीडे हैं। अमीर भारतीय में से 50 प्रतिशत अमीर साल में तीन बार लक्जरी ट्रिप लगाते हैं और इस दौरान एक जोड़ा (औसतन) प्रति रात 1.25 लाख रूपये खर्च करता है। इंडिया इम्पोर्टस एसोसिएशन की ताजा रिपोर्ट बताती

है कि भारत में विदेशों में छुट्टियां मनाने वाले लोगों की संख्या 34 प्रतिशत हो गई है। जून 2014 की रिपोर्ट के अनुसार 2013-14 में विदेशों में छुट्टियां मनाने वालों तथा काम के सिलसिले में विदेश जाने वाले भारतीय अमीरों की संख्या 16 मिलियन थी जो 2014-15 में बढ़कर 20 मिलियन होने की संभावना है। शाइनिंग इंडिया के कर्णधार इस श्रेणी का सूत्र है।[9]

भ्रष्टाचार की जड़ें हमारी संस्कृति में काफी गहरी हो गई है। देश में काले धन का आकार जहां 1955-56 में जी.डी.पी. का 4.5 प्रतिशत था, अब 60 प्रतिशत हो गया। जो एक चिन्ता की बात है। देश में 125 करोड़ लोगों में से मुश्किल से 4.5 करोड़ टैक्स रिटर्न करते हैं। टैक्स के बचने की प्रवृत्ति काफी उच्च रही है। भ्रष्टाचार भारतीय प्रशासन एवं राजनीति में एक स्वीकृत बुराई के रूप में स्थापित हो चुका है। भारत को एक सॉफ्ट स्टेट के रूप में जाना जाता है और भ्रष्टाचार के मामले में यह दुनिया के 175 देशों में 85वें पायदान पर है। अनेक नीतियों के बावजूद हम किसी सार्थक ढंग से इस मुद्दे से नहीं निपट सके हैं।

3. *शोषण तथा भूमि संसाधनों की कमी :* देश में भूमि संसाधनों की कमी निर्धनता का एक प्रमुख कारण रही है क्योंकि भारत की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है और कृषि उनका प्रमुख व्यवसाय है लेकिन भूमि संसाधनों की कमी के कारण उन्हे निर्धनता का जीवन जीना पड़ रहा है। कृषि भूमि का काफी बढ़ा भाग शहरीकरण की चपेट में आ चुका है। आधारभूत संरचना के विकास, आवासीय भूखण्डों तथा परती होती कृषि भूमि अन्य कारण है जिन्होनें कृषि क्षेत्र पर आजीविका हेतु निर्भर क्षमशक्ति पर दबाव बढ़ा दिया है। इतना ही नहीं कृषि क्षेत्र का देश के सकल घरेलू उत्पाद में योगदान घटकर मात्र 16 प्रतिशत रह गया है जबकि अब भी इस क्षेत्र पर लगभग 60 प्रतिशत आबादी अपनी आजीविका हेतु निर्भर है।

4. *ऋण ग्रस्तता :* निर्धनता का एक और प्रमुख कारण ऋण ग्रस्तता है। देश में अधिकतर किसानों के पास भूमि कम है अतः इन छोटे किसानों को बीज, उर्वरक, कीटनाशकों जैसे कृषि आगतों की खरीदारी के लिए धनराशि की जरुरत पड़ती है क्योंकि अब खेती बाड़ी में उत्पाद से पहले काफी कुछ धन खर्च करना पड़ता है चाहे वह खेत की जुताई-बुआई हो या फिर कीट-नाशकों एवं रसायनों (खादों) का प्रयोग। छोटा एवं मंझला किसान अपनी फसल आने से पहले ही उसकी कीमत के बराबर निवेशकर चुका होता है। इसके लिए वे कर्ज लेते है जो सामान्यतः आढ़ती एवं साहूकार से लिया जाता है। निर्धनता के कारण वे इसका भुगतान करने मे असमर्थ होते हैं जिससे अत्यधिक ऋणग्रस्त हो जाते हैं। बेरोज़गारी, अर्द्धबेरोज़गारी, नशा

आदि निर्धनता के अन्य प्रमुख कारण है जो सामान्यतः समाज के कमजोर एवं गरीब वर्गों में हावी रहते है। इस हेतु काफी हदतक सरकारी नीतियां एवं कार्यक्रम भी जिम्मेदार है। एक तरफ जहां बिहार जैसे आर्थिक रूप से पिछड़े राज्य ने अपने यहां 5000 करोड़ के राजस्व का नुकसान उठाकर भी नशाबंदी को तवज्जो दी है और पूरे प्रान्त में उसे अप्रैल 2016 से लागू कर रहा है। वहीं दूसरी तरफ पंजाब जैसे सम्पन्न स्टेट अपने राजस्व को बढ़ाने हेतु निरन्तर इस (शराब बेचने) पर ध्यान केन्द्रित किए है। गत् वर्ष इस मद से जहां पंजाब को 4600 करोड़ रूपये मिले हैं वहीं वर्ष 2016 में यह लक्ष्य 5060 करोड़ रूपये का कर दिया गया है।[10] यानि सरकार का काम नशाबंदी होना चाहिए लेकिन दुःख की बात है कि उसने इसे अपनी आय का जरिया बना लिया है। जी न्यूज चैनल (10.12.2015) के अनुसार 'भारत में 3.85 लाख कैदी विभिन्न जेलों में सड़ रहे हैं जिनमें से 1.81 लाख तो केवल आवश्यक बांड न भर पाने के कारण जेलों में बंद है, वहीं सलमान खान जैसे सक्षम लोगों के लिए न्यायिक व्यवस्था काफी शिथिल व अप्रभावी सिद्ध हो रही है। जिसे हाई कोर्ट द्वारा लोअर कोर्ट के निर्णय के विरूद्ध (Hit & Run Case) केवल तीन घंटों में ही जमानत मिल जाती है'। हरियाणा मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष विजेन्द्र जैन के अनुसार, ''हमनें पिछले दो वर्षो में मानव अधिकारों के उल्लधंन की 4332 शिकायतें प्राप्त हुई हैं जिनमें से लगभग 60 प्रतिशत पुलिस विभाग के विरूद्ध है। इनमें से 3000 शिकायतें आयोग निपटा चुका है।[11] इससे स्पष्ट है कि देश में कानून और न्याय व्यवस्था सक्षम लोगों के लिए ही है न की गरीब लोगों के लिए।

5. *शहरों की ओर पलायन :* आज गांवों से शहरों की ओर पलायन एक गम्भीर समस्या बनी हुई हैं। लोग रोजगार प्राप्त करने के लिए शहरों की तरफ पलायन कर रहे है। शहरों में उपयुक्त रोजगार पाने में असफल अनेक लोग रिक्शा चालक, विक्रेता, गृह निर्माण श्रमिक, घरेलू नौकर आदि के रुप में कार्य करने लगे। अनियमित और कम आय के कारण ये लोग मंहगे मकानों में नही रह सकते। वे शहरों से बाहर झुग्गियों में रहने लगे और निर्धनता की समस्या जो मुख्य रूप से एक ग्रामीण परिघटना थी, नगरीय क्षेत्र की भी एक विशेषता बन गई। ये झुग्गियां न केवल जीता जागता धरती पर नरक है अपितु सभी प्रकार के अपराध एवं बुराइयों के आश्रय स्थल भी। एक तरफ महानगरों में धनाढ्य लोगों की सम्पति एवं संख्या बढ़ रही है तो दूसरी ओर इन झुग्गियों और इनमें रहने वाले लोगों की संख्या और आकार भी निरन्तर बढ़ रहा है। यह विकास की एक त्रासदी है। भारत में इस वक्त लगभग 10 करोड़ बुजुर्ग लोग है। हेल्पेज इंडिया (वृद्धजनों के कल्याण हेतु काम करने वाली संस्था) की रिपोर्ट के अनुसार राजधानी दिल्ली में वरिष्ठ नागरिकों की

सुरक्षा के लिए पुलिस के तमाम प्रबन्धों के बावजूद ये अपराधियों का आसान निशाना बन रहे हैं। जिससे उनके मन में असुरक्षा की भावना और बढ़ती जा रही है। दिल्ली में इस वक्त करीब 16 लाख वरिष्ठ नागरिक हैं और दिल्ली पुलिस आकंड़ों के अनुसार राजधानी में 2013 में 15, 2014 में 19 तथा 2015 में अब तक 12 वरिष्ठ नागरिकों की हत्या हो चुकी है। असुरक्षा की भावना 60-65 वर्ष की आयु के लोगों की अपेक्षा 80 वर्ष से अधिक आयु के लोगों के 29 प्रतिशत अधिक पाई गई है।[12] दिल्ली महिला आयोग की अध्यक्ष स्वाति मालीबाल के अनुसार 2014 में दिल्ली में महिलाओं के खिलाफ अपराध सम्बन्धित कुल 11,000 मुकदमे विभिन्न थानों में दर्ज हुए थे। लेकिन पुलिस ने इनमें से महज 3,500 मामलों में ही आरोप पत्र दायर किए और केवल नौ लोगों को सजा हुई। ऐसे में महिलाओं के खिलाफ अपराध कम होने की उम्मीद कैसे रखी जा सकती है।[13]

6. *बेरोजगारी एवं भुखमरी:* निर्धनता की जड़ बेरोजगारी को माना जा सकता है। लोगों के पास अपनी आजीविका के पर्याप्त साधन न होने के कारण भुखमरी व गरीबी की समस्या से जूझना पड़ रहा है। एक तरफ देश में खाद्यान्न का रिकार्ड उत्पादन हो रहा है (25.5 करोड़ 2014 में) वहीं दूसरी तरफ देश की लगभग आधी आबादी एक डालर प्रतिदिन से भी कम खर्च पर गुजर बसर कर रही है। अमीर एवं गरीब के बीच की खाई गत् दो दशकों में खतरनाक स्तर पर बढ़ी है। साथ ही उनका उपभोक्ता स्तर भी। राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल के निदेशक डॉ. ए. के. श्रीवास्तव के अनुसार, 'देश की 70 प्रतिशत जनसंख्या को 50 प्रतिशत से कम पोषक तत्व मिल रहे हैं। यही कारण है कि इस समय देश में 46 प्रतिशत बच्चे अंडरवेट हैं।' उन्होनें बताया कि अगर दूध में फल एवं सब्जियों (जूस) को मिला लिया जाए तो पोषक तत्वों की कमी को पूरा किया जा सकता है। भारत दुग्ध उत्पादन में प्रथम और खाद्य उत्पादन में चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ा देश है। पोस्ट हार्वेस्ट के बाद हर वर्ष कुछ कारणों के 84 हजार करोड़ रूपये का खाद्यान्न उपभोक्ता तक नहीं पहुंच पाता है। अगर इसे बचा लिया जाए तो हम पूरे देश को आराम से भोजन खिला सकतें हैं।[14] विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार, 'भारत 2015 में विदेशों से भेजे गए धन (72 अरब डॉलर) की प्राप्ति करने वाला सबसे बड़ा देश रहा है, इसके बाद चीन (64 अरब डॉलर) और फिलिपींस (30 अरब डॉलर) का स्थान रहा है। भारत में सबसे ज्यादा पैसा अमेरिका से (54 अरब डॉलर) आया है। वर्ष 2015 में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रवासियों की संख्या बढ़कर सबसे अधिक 25 करोड़ के पार पहुंच गए।[15] प्रतियोगिता के चलते भारतीय उद्योग अत्यधिक तकनीकी युक्त हो गया है। जिसके चलते 2005-10 के दौर में भारतीय उद्योग ने रोज़गार विहीन वृद्धि

दर्ज की है। प्रतिमाह 10 लाख युवा रोज़गार हेतु बाजार में शामिल हो रहे हैं। मैनुफेक्चरिंग तथा कृषि क्षेत्र में वृद्धि दर ढीली है। खेतीबाड़ी पर अब भी 60 प्रतिशत से अधिक आबादी निर्भर है किन्तु सकल घरेलू उत्पाद में इसका हिस्सा घटकर 16 प्रतिशत रह गया है। 53 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि सिंचाई सुविधाओं की कमी से ग्रस्त है। जिस गति से अर्थव्यवस्था विकसित हुई है तदनुरूप रोजगार का सृजन नहीं हो पाया उल्टा उद्योगपतियों का लाभ तो बढ़ता गया और उसमें श्रमपतियों का हिस्सा घटता गया।[16]

7. *शिक्षा की गुणवत्ता में भारी अन्तरः* भारत में शिक्षा की गुणवत्ता में काफी अन्तर है। एक तरफ निजी स्कूलों की शिक्षा है जो हर तरह से श्रेष्ठ है और दूसरी तरफ सरकारी स्कूलों की शिक्षा जो निरन्तर गर्त में जा रही है। हाल ही मे हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड द्धारा घोषित परिणामों से यह स्पष्ट है कि जहाँ निजी स्कूलों का पास प्रतिशत (46.44) इतना उम्दा है वहीं पर सरकारी स्कूलों का परिणाम (26 प्रतिशत) उससे लगभग आधा है। लगभग 200 स्कूलों में 10वीं तथा 12वीं कक्षा के सभी विद्यार्थी बोर्ड की परीक्षा में असफल रहे हैं। इनमें भी 10वीं का परिणाम ज्यादा खराब रहा है। एक ओर प्रदेश में 650 स्कूलों का पास प्रतिशत 80 से 100 के बीच रहा है वहीं दूसरी तरफ जीरो पास प्रतिशत के ज्यादातर स्कूल देहातों से संबंधित हैं और यह स्थिति कम या अधिक पूरे देश की ही है।[17]

8. *संसाधनों की कमी एवं उनका निम्नस्तरीय रखरखाव* : भारत मे न केवल संसाधनों की कमी है अपितु उपलब्ध संसाधन का निम्न स्तरीय रखरखाव भी है जिसका सीधा असर आम नागरिक तथा गरीब लोगों पर पड़ता है। इसकी एक मुख्य वजह यह है कि सरकार का रवैया ढीला ढाला और नीति लचर रहती है। जैसे राजधानी में एक मात्र फोरेंसिक परीक्षण लैबोरेटरी (रोहिणी) में 203 पद खाली पड़े हैं जिसमें लंबित केसों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। लैबोरेटरी में वर्ष 2011 में 1179 मामले जांच हेतु लम्बित थे जबकि वर्ष 2014 में ऐसे मामलों की संख्या बढ़कर 2169 हो गई। यह जानकारी लैबोरेटरी के निदेशक आर.के. सरीन ने दिल्ली महिला आयोग को लिखित तौर पर दी है।[18] इस देरी के चलते एक तरफ जहां पीड़ित पक्ष को न्याय मिलने की संभावना धूमिल हो रही है। वहीं दूसरी तरफ अपराधियों के बच निकलने की संभावना बढ़ जाती है। शीघ्र तथा सस्ता न्याय किसी भी समाज एवं राष्ट्र की गुणवत्ता का पैमाना है। किन्तु दुख की बात है कि भारत में 3.5 करोड़ मुकदमें अदालतों में लंबित पड़े हैं जिनमें अकेले चैक बांडस से सम्बन्धित 18 लाख से अधिक केस है। गरीब तथा पीड़ित पक्ष पर न्यायिक प्रक्रिया की जटिलता एवं देरी की सबसे अधिक मार पड़ती है।[19] हरियाणा

रोडवेज की 288 नई बसें गुड़गांव स्थित हरियाणा रोडवेज इंजीनियरिंग कार्पोरेशन में धूल फांक रही है जबकि प्रदेश सरकार 600 नई अतिरिक्त बसें खरीदने की तैयारी में है। गौरतलब है कि पिछली सरकार (हुडा के समय) द्वारा 850 बसें खरीदी गई थी, जिसमें से 288 के अतिरिक्त बाकी बसें अक्तूबर, 2014 में अलाट कर दी थी।[20] ऐसी स्थिति लगभग पूरे देश मे ही है। सरकार अपने सार्वजनिक उपक्रमों (पी एस यू) को बेचकर धन कमाना चाहती है और अपनी बढ़ती हुई राजस्व की मांग को पूरा कर रही है जबकि उसे चाहिए इनका बेहतर रखरखाव सुनिश्चित करें। विनिवेश के माध्यम से जहाँ 2013 में भारत सरकार 22,000 करोड़ रू. अर्जित किये वहीं यह रकम 2015 में 35,000 करोड रू. से भी अधिक की है तथा 2016 में 50,000 करोड रू. होने का लक्ष्य रखा गया है।[21]

**fu/kurk fojks/kh mik;** : निर्धनता-उन्मूलन कार्यक्रम भारत की विकास रणनीति का एक प्रमुख उदेश्य रहा है सरकार की वर्तमान निर्धनता निरोधी रणनीति मोटे तौर पर दो कारकों आर्थिक संवृद्धि को प्रोत्साहन और लक्षित निर्धनता-निरोधी कार्यक्रमों पर निर्भर है। आर्थिक संवृद्धि अवसरों को व्यापक बना देती है और मानव विकास में निवेश के लिए आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराती है इन परिस्थितियों में लक्षित निधि निर्धनता निरोधी कार्यक्रमों की स्पष्ट आवश्यकता है। यद्यपि ऐसी अनेक योजनाएं हैं जिनको प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से निर्धनता को कम करने के लिए बनाया गया है उनमें से कुछ का उल्लेख हम यहां कर रहे हैं :

1. *महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार अधिनियम 2005* : इसका (मनरेगा) उदेश्य ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका सुरक्षित करने के लिए हर घर के लिये मजदूरी/रोजगार कम से कम 100 दिनों के लिए उपलब्ध करना है। इस प्रावधान के तहत एक तिहाई रोजगार महिलाओं के लिए सुरक्षित किया गया है। इस योजना के अन्तर्गत 4.78 करोड़ परिवारों को रोजगार उपलब्ध करवाया गया है ताकि निर्धनता को कम करने में सहायता मिल सके। इसके परिणाम भी सामने आए है विशेषकर बिहार, झारखण्ड, उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश से काम के लिए दिल्ली एवं आसपास के क्षेत्रों में काम हेतु आने वाले लोगों की संख्या में काफी कमी आई है।

2. *राष्ट्रीय काम के बदले अनाज कार्यक्रम* : इस कार्यक्रम को देश में 2004 में 150 पिछड़े जितने में लागू किया गया था। यह कार्यक्रम उन सभी ग्रामीण निर्धनों के लिए है जिन्हें मजदूरी रोजगार की आवश्यकता है और जो अकुशल शारीरिक काम करने के इच्छुक हैं। इस योजना के लिए केन्द्र द्वारा राज्यों को निःशुल्क खाद्यान्न उपलब्ध करवाया जाता है ताकि निर्धन लोग काम के बदले अनाज प्राप्त करे सके।

3. *प्रधानमत्री रोज़गार योजना :* 1993 में यह योजना प्रारम्भ की गई। इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों और छोटे शहरों में शिक्षित बेरोजगार युवाओं के लिए स्वरोजगार के अवसर सृजित करना है उन्हे लघु व्यवसाय और उद्योग स्थापित करने में उनकी सहायता दी जाती है ताकि निर्धन लोग निर्धनता से ऊपर उठ सकें।

4. *ग्रामीण रोजगार सृजन कार्यक्रम* : इस कार्यक्रम की शुरुआत 1995 में की गई थी। इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों और छोटे शहरों में स्वरोजगार के अवसर सृजित करना है 10वीं पंचवर्षीय योजना में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 25 लाख नए रोजगार सृजित करने का लक्ष्य रखा गया था ताकि देश में निर्धनता में कटौती की जा सके।

5. *स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना* : इस योजना का आरम्भ 1999 में किया गया। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य सहायता प्राप्त निर्धन परिवारों को स्वसहायता समूहों में संगठित कर बैंक ऋण और सरकारी सहायिकी के संयोजन द्वारा निर्धनता रेखा से ऊपर लाना है। अप्रैल 2014 से इस योजना का नाम बदलकर राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM) कर दिया गया है। यह योजना स्वरोजगार सर्वजन पर आधारित है।

6. *प्रधानमंत्री ग्रामोद्य योजना :* इस योजना को विशेष कर ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी-उन्मूलन के लिए सन् 2000 में आरम्भ किया गया। इस योजना के अन्तर्गत प्राथमिक स्वास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, ग्रामीण आश्रय, ग्रामीण पेयजल और ग्रामीण और ग्रामीण विद्युतीकरण जैसी मूल सुविधाओं के लिए राज्यों को अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता प्रदान की जाती है ताकि ग्रामीण क्षेत्रों के गरीब लोगों का जीवन स्तर ऊँचा उठाया जा सके।

7. *अंत्योदय अन्न योजना* : यह योजना दिसम्बर 2000 में शुरु की गई थी। इस योजना के अन्तर्गत निर्धनता रेखा से नीचे के एक करोड़ परिवारों की पहचान की गई। इस योजना का मुख्य लक्ष्य गरीब परिवारों को दो रु. प्रति किलोग्राम गेंहूं तीन रु. प्रति किलोग्राम की दर से पात्र एक परिवार को 25 किलोग्राम अनाज उपलब्ध करवाया गया। निर्धनों को और अधिक सहायता प्रदान करने के लिए अप्रैल 2002 में अनाज की मात्रा 25 किलोग्राम से बढ़ाकर 35 किलोग्राम कर दी गई।

8. *खाद्य सुरक्षा अधिनियम :* यह योजना गरीबी-उन्मूलन के लिए 2013 में शुरू की गई। भारतीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013 के तहत खाद्य एवं पोषण संबधी सुरक्षा काफी सस्ती कीमतों पर उपलब्ध कराई जाती है ताकि मानव गरिमामय जीवन निर्वाह कर सके। इस अधिनियम के तहत 75 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या एवं 50 प्रतिशत शहरी जनसंख्या को लाभ पहुंचाने का

लक्ष्य रखा गया है। इसके लागू होने से सरकार को सालाना करीब 1.35 करोड़ रूपये सबसिडी के तौर पर खर्च करने होंगे।[22]

9. *डी.बी.टी. योजना* : सार्वजनिक वितरण प्रणाली को अधिक प्रभावी एवं पारदर्शी बनाने के लिए वर्तमान राजग सरकार ने 15 नवम्बर, 2014 से देश के 54 चुने हुए जिलों में से 'पहल' नाम से एल.पी.जी. सब्सिडी के नकद हस्तांतरण (डी.बी.टी.) की योजना प्रारंभ की है जिसे 1 जनवरी, 2015 से पूरे देश में लागू कर दिया गया। इस योजना से एक तरफ जहाँ उपभोक्ता के खाते में एल.पी.जी. सब्सिडी सीधे तौर पर हस्तांतरित हो रही है वहीं इसके लागू होने से काफी बड़ी संख्या में बोगस खाते धारकों का फर्जीवाड़ा भी उजागर हुआ है। जिससे भ्रष्टाचार से निजात मिली है। इतना ही नहीं लगभग 31 लाख उपभोक्ताओं ने एल.पी.जी. सब्सिडी छोड़ी भी है। यह स्कीम अपने तरह की विश्व की सबसे बड़ी योजना है। जिसे गिन्नीज वर्ल्ड बुक रिकार्ड में जगह मिली है। इसी प्रकार सामाजिक सुरक्षा पेंशन भी ज्यादातर लोगों के खातों में सीधे आधार कार्ड के माध्यम से जोड़ दी गई है।[23] केन्द्रीय मंत्री एम.वैकेया नायडू के अनुसार, ''एन.डी.ए. सरकार उन उपभोक्ताओं की एल.पी.जी. सब्सिडी हटाने पर विचार कर रही है जिनकी सालाना आय 10लाख रूपये से अधिक है। अब तक 30 लाख लोग एल.पी.जी. सब्सिडी छोड़ चुके हैं। मंत्रियों को भी सब्सिडी की कोई जरूरत नहीं।'' अवैध कनैक्शनों को पहचानकर अब तक सरकार हजारों करोड़ रूपये बचा रही है।[24] इसके अतिरिक्त अनेक अन्य कार्यक्रम राष्ट्रीय तथा प्रान्तीय स्तर पर संचालित है जिनका उद्देश्य गरीबी उन्मूलन तथा सामाजिक सुरक्षा एवं कल्याण है। यद्यपि प्रान्तीय स्तर पर संचालित ऐसे कार्यक्रम एक प्रदेश से दूसरे में भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।

10. *प्रधानमन्त्री सुरक्षा बीमा योजना* : यह योजना 1 जून, 2015 को भारत सरकार द्वारा प्रारम्भ की गई जिसमें 18-70 वर्ष की आयु का कोई भी व्यक्ति जिसका किसी भी बैंक में बचत खाता है लाभार्थी हो सकता है। इस योजना के तहत दुर्घटना से मौत की हालत में 12 रू. सालाना के प्रिमियम पर दो लाख रू. तक का बीमा उपलब्ध रहता है। भारत सरकार ने इस योजना के तहत आम नागरिक और विशेषकर गरीब लोगों को बड़ी राहत दी है। पूर्ण विकलांगता की स्थिति में भी बीमा राशि दो लाख रू. की रहती है लेकिन यदि एक आंख या एक हाथ पैर की विकलांगता है तो यह राशि एक लाख रू की रहती है। अटल पेंशन योजना और जीवन ज्योति योजना इस योजना के साथ प्रधांनमन्त्री नरेन्द्र मोदी ने 9 मई 2015 प्रारम्भ की गई अन्य समाज कल्याण की योजनाएं हैं। ऐसे खाते का आधार कार्ड से जुड़ा होना आवश्यक

हैं? यदि किसी व्यक्ति के एक से अधिक बैंक खाते है तो उसे केवल एक ही खाते पर यह सुविधा मिल सकती है। इस योजना की अवधि एक वर्ष की है। जो अपने आप रिन्यू होती रहती है और प्रिमीयम भी बैंक खाते से स्वतः काट लिया जाता है।

11. *प्रधानमन्त्री जनधन योजनाः* राष्ट्रीय वितीय समावेशन मिशन के उद्देश्य से यह योजना 15 अगस्त 2014 को प्रारम्भ की गई है और इस योजना के तहत 17 जुलाई 2017 तक 29.18 करोड़ लाभार्थियों ने बैंकों में तथा बैंक मित्रों (1. 25 लाख) के पास 65000 करोड़ रू. की धनराशि जमा की है। इस योजना के तहत जीरो बैलेंस पर खाता खोला जाता है और खाताधारी की दुर्घटना में मौत पर एक लाख रू. की बीमा सुविधा तथा सामान्य मृत्यु पर 30000 रू. की बीमा सुविधा बिना किसी प्रिमियम के प्राप्त रहती है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक लोगों को देश की बैकिंग प्रणाली से जोड़ना और विभिन्न समाजकल्याण और विकास योजनाओं में देय राशि उन लाभार्थियों को नकद या बिचौलियों के माध्यम से न देकर, सीधे उनके खातों में जमा करवाना है। प्रधानमंत्री मोदी के अनुसार, ''देश की वितीय संसाधन गरीब के काम आए, यही से इस योजना की शुरूआत होती है। अर्थात 'सबका साथ सबका विकास' यानि समावेशी-विकास के दर्शन पर आधारित है जिसमें वितीय सेवाओं का सभी तक विस्तार करना लक्ष्य है। रूपे डेबिट कार्ड का प्रयोग करके वे न केवल धन जमा तथा निकलवा सकते हैं अपितु उन्हें इस योजना के तहत ऋण और बीमा की सुविधा भी रहती है अतः यह योजना एक साथ सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा भी अपने उपभोक्ताओं को प्रदान करती है।

12. *प्रधानमन्त्री आवास योजनाः* प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी ने इस दृष्टि के साथ की जब देश 2022 ई. में अपनी स्वतन्त्रता की हीरक जयंती मना रहा होगा, प्रत्येक परिवार के पास पक्का मकान होना चाहिए। इस योजना को 17 जून, 2016 को प्रारम्भ किया। इस योजना में आर्थिक रूप से गरीब तथा कम आय वर्ग के वे लोग लाभार्थी है जिनके पास अपना पक्का मकान नही है। यह योजना चार घटकों में संचालित होगी– झुग्गी झोपड़ियों का पुर्नधार, साख संयोजित अनुदान, पार्टनरशिप में सामर्थनुसार मकान और लाभार्थी का अपनी इच्छानुसार मकान बनाना। इस योजना के तहत आर्थिक रूप से गरीब परिवार की वार्षिक आय तीन लाख रू. तथा कम आय वर्ग के परिवार की छह लाख रू. से अधिक नहीं होनी चाहिए। इस योजना के तहत लाभार्थी को 6-12 लाख रू. तक का ऋण किसी-भी सरकारी क्षेत्र के बैंक से तीन-6.5

प्रतिशत की दर पर देय रहेगा और संबंधित व्यक्ति इस राशि का भुगतान 15 वर्षों में कर सकेगा। इस प्रकार इस योजना द्वारा गरीबी पर भारत सरकार की तरफ से एक ठोस प्रहार किया गया है। यह गौर तलब है कि आज भी देश में आबादी का एक बड़ा भाग झुग्गी-झोपड़ियों एवं कच्चे मकानों में रहने को मजबूर है। देश के वर्तमान राष्ट्रपति रामनाथ कोविन्द ने भी अपने शपथ ग्रहण समारोह में इस बात का विशेष रूप से उल्लेख किया है कि अपने बाल्यकाल में उनके परिवार के पास कच्चा घर होता था और चौमासे में दौरान उसके गिरने का हर समय खतरा बना रहता था।

13. *प्रधानमन्त्री कौशल विकास योजना* : प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी का मानना है कि यदि हम भारत को विकसित देश बनाना चाहते है तो हमें कौशल विकास तथा कुशल भारत का निर्माण करना होगा। इसी विजन को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने देश के युवाओं को जिनके पास किसी भी प्रकार का हुनर या कार्य है उनके कौशल को विकसित करने की योजना बनाई है ताकि वे बेहतर आजीविका अर्जित कर सके। इस योजना का शुभारम्भ 16 जुलाई 2015 को भारत सरकार द्वारा किया गया। इस योजना को लागू करने का दायित्व कौशल विकास और उद्यमिता मन्त्रालय ने राष्ट्रीय कौशल विकास निगम को सौंपा है। इस योजना का प्रमुख उद्देश्य अल्पअवधि का गुणवतापूर्वक प्रशिक्षण देकर कार्यरत तथा संभावित कारीगरों को पूर्ण कौशल प्रदान करना तथा प्रमाण-पत्र देना है ताकि वे बेहतर आजीविका कमा सके। बेरोजगारी को खत्म करने तथा कुशल भारत का निर्माण करने की दिशा में यह केन्द्र सरकार की प्रमुख योजना है जिसका लक्ष्य 2016-2020 ई. में 120 अरब रू0 की लागत से एक करोड़ से अधिक युवाओं को प्रशिक्षित करना है।

उपरोक्त कार्यक्रमों व योजनाओं के मिले जुले परिणाम हुए हैं। उनके कम प्रभावी होने का एक मुख्य कारण उचित कार्यान्वयन और सही लक्ष्य निश्चित करने की कमी है। साथ अच्छी नीयत के बावजूद इन योजनाओं के लाभ उनके पात्र, निर्धनों को पूरी तरह नहीं मिल पाया है इसलिए हाल के वर्षों में निर्धनता-उन्मूलन कार्यक्रमों कें उचित परिवीक्षण पर अधिक बल दिया गया है।

## निष्कर्ष एवं समाधान

भारत में एशिया के सबसे अधिक अरबपति है तथा देश के जी.डी.पी. का (2012 में बिलिनेयर) 12 प्रतिशत हिस्से का स्वामित्व रखते हैं। भारत एशिया की सबसे तेज गति से विकसित हो रही अर्थव्यवस्था के रूप में जानी जाती है तथा जब भारतीय विदेशों में होते हैं तो वे काफी खर्च भी कर रहे हैं। विदेशों में भारतीय अर्थव्यवस्था के

उन्नत स्वरूप की काफी मजबूत छवि बन रही है किन्तु हमें दूसरी तरफ उन विसंगतियों को भी नही भूलना चाहिए तो उस पर दाग की भांति है। भारत में पाँच वर्ष से कम आयु के कुपोषण के शिकार बच्चे विश्व में सर्वाधिक है तथा मातृत्व मृत्यु दर भी काफी ऊंची है। निःसन्देह भारत में 30-40 करोड़ लोगों का विशाल मध्य वर्ग है किन्तु साथ ही 35 करोड़ लोगों का अतिगरीब वर्ग भी है। गरीबी की यह मात्रा उसे मापने के पैमाने के अनुसार भिन्न-भिन्न है। दुनिया में भारत एक बड़े बाजार के रूप में जाना जाता है तथा सॉफ्ट ड्रिंक्स तथा नूडलस की मांग लगातार बढ़ रही है और विभिन्न किस्म के ब्रांडों का रुख भारतीय बाजारों की ओर है। [25] एक तरफ राजधानी में लाखों लोग मलिन बस्तियो में रहने पर मजबूर और उनका जीवन एक डॉलर प्रतिदिन से भी कम खर्च पर चल रहा है वही दूसरी तरफ दिल्ली के विधायक देश में सबसे मंहगे होंगे। उनके वेतन में करीब 400 फीसदी बढ़ोतरी के प्रस्ताव को दिल्ली मंत्रिमंडल में मंजूरी दे दी प्रत्येक विधायक को 2.5 लाख रूपये प्रतिमाह मिलेंगे। 3 दिसम्बर 2015 को दिल्ली विधानसभा ने इस बिल को पास कर दिया है। [26] सातवें वेतन आयोग की रिपोर्ट 1 जनवरी 2016 से लागू होगी। इसमें 16 प्रतिशत वेतन बढ़ाने की सिफारिश की गई है। न्यूनतम वेतन 18000 रूपये तथा अधिकतम 2.5 लाख रूपये प्रतिमाह होगा। ये सिफारिशें लागू होने के बाद वित वर्ष 2016-17 में सरकारी खजाने पर 1.02 लाख करोड़ रूपये का अतिरिक्त बोझ पड़ेगा। इसका लाभ 47 लाख केन्द्रीय कर्मचारियों तथा 52 लाख पेंशन भोगियों को मिलेगा।[27] आर्थिक विषमता के बढ़ते पैमाने को समय रहते रोकने की आवश्यकता है अन्यथा यह भारतीय लोकतन्त्र को भी खोखला बना देगा क्योकि आर्थिक विषमता सामाजिक एवं राजनीतिक विषमता को जन्म देती है जो लोकतन्त्र के मूल सिद्धान्त, 'समानता' के खिलाफ है।

निसन्देह भारत में निर्धनता एक गम्भीर समस्या है तथा कुछ सामाजिक और आर्थिक समूह निर्धनता के प्रति अधिक असुरक्षित है। आशा की जा रही है कि निर्धनता उन्मूलन में अगले दस से पद्रंह वर्षों में अधिक प्रगति होगी। यह मुख्यतः उच्च आर्थिक संवृद्धि, सभी को निशुल्क प्राथमिक शिक्षा पर बल, जनसंख्या वृद्धि में गिरावट, महिलाओं और समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के बढ़ते सशक्तिकरण के कारण संभव हो सकेगा। विश्व भर में अभी करीब 250 करोड़ टन खाद्यान्न उत्पन्न हो रहा है। जिसमें भारत में सबसे ज्यादा 26 करोड़ टन अनाज हर साल पैदा हो रहा है। परंतु एक-तिहाई अनाज गोदामों में गल सड़ जाता है या ट्रांसपोर्टेशन व सप्लाई करते समय बर्बाद हो जाता है। यदि इसे बचा लिया जाए तो देश से काफी हद तक भुखमरी की समस्या से निजात दिलाई जा सकती है।' खेती 1999 के बाद से लगातार घाटे का सौदा हो रहा है जिससे किसानों द्वारा आत्महत्या की घटनाएं बढ़ रही है और उनका खेती से मोह भंग हो रहा है। 1991 में जहां देश भर में 11 करोड़ किसान थे

अब उनकी संख्या घटकर करीब नौ करोड़ रह गई है इतना ही नहीं देश की जी.डी. पी. में खेतीबाड़ी एवं सम्बन्ध क्षेत्र का हिस्सा घटकर मात्र 16 प्रतिशत ही रह गया है। वहीं दूसरी तरफ कृषि पर आजीविका हेतु निर्भर जनसंख्या का प्रतिशत (लगभग 60) अभी भी काफी बड़ा है जिसका सीधा-सीधा अर्थ है कि कृषि क्षेत्र से जुड़े लोगों का जीवन स्तर निरन्तर गिर रहा है और इसमें सीमान्त एवं छोटे किसानों की दशा खेतीहर मजदूरों से भी कमजोर है। अतः समय रहते सरकार को कृषि क्षेत्र पर ध्यान देने की जरूरत है। यद्यपि किसान क्रेडिट कार्ड (K.C.C.) ने इस दिशा में एक सार्थक पहल की है लेकिन अभी-भी कृषि एवं किसानों के हालात को सुधारने हेतु काफी कुछ करने की आवश्यकता है। घटती कृषि भूमि के क्षेत्र के विकल्प के रूप में *ऐथरोपोनिक्स फार्मिंग व वर्टिकल फार्मिंग* एक अच्छा विकल्प है।[28] साथ ही सरकार को किसानों को अधिक सब्सिडी एवं उनके जिन्सों की खरीद निर्धारित मूल्यों पर सुनिश्चित करने की जरूरत है क्योंकि भारत में कृषि केवल किसान तथा मजदूर की आजीविका तक ही सीमित नहीं है अपितु देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ भी है यदि कृषि उत्पाद की पैदावार कम होती है तो इसका सीधा असर उद्योग, व्यापार, वाणिज्य एवं सेवा क्षेत्र पर भी पड़ता है? केन्द्रीय सड़क परिवहन मन्त्री नितिन गडकरी ने ड्राइवरलैस कार को लाइसेंस देने से मना करते हुए कहा कि इससे देश में बेरोज़गारी बढ़ेगी और ट्रांसपोर्टर इसका फायदा उठाऐगे। उन्होंने स्पष्ट किया कि सरकार ड्राइवरों को प्रशिक्षण देने पर अपना ध्यान केन्द्रित करेगी। इससे करीब 50 लाख लोगों को रोजगार मिलेगा। भारत में इस वक्त 22 लाख ड्राइवरों की कमी है। सरकार ऐसी किसी भी तकनीक या पॉलिसी को बढ़ावा नहीं देगी जो बेरोज़गारी को बढ़ाती हो[29]।

लोगों के लिए निर्धनता की अधिकारिक परिभाषा उनके केवल एक सीमित भाग पर लागू होती है परन्तु इसके दूसरे पात्र इससे अछूते हैं। हो सकता है कि बड़ी संख्या में लोग अपना भोजन जुटाने में समर्थ हों लेकिन क्या उनके पास शिक्षा है? या घर है या स्वास्थ्य सेवा सुविधा है? या आत्म विश्वास है? क्या वे जाति और लिंग आधारित भेदभाव से मुक्त हैं? क्या बाल श्रम की प्रथा अब भी प्रचलित है? विश्वव्यापी अनुभव बताते है कि विकास के साथ-साथ निर्धनता की परिभाषा भी बदलती है। निर्धनता उन्मूलन हमेशा एक शांतिशील लक्ष्य है आशा है कि हम अगले दशक के अंत तक सभी लोगों को आय के संदर्भ में न्यूनतम आवश्यक आय उपलब्ध करा सकेंगे। सभी को स्वास्थ्य, सेवा, शिक्षा और रोजगार सुरक्षा उपलब्ध कराना, लैंगिक समता तथा निर्धनों का सम्मान जैसी बड़ी चुनौतियां हमारे लक्ष्य हैं जिन्हें तभी प्राप्त किया जा सकता है यदि हमारी सरकार की इच्छा शक्ति दृढ़ व सोच अच्छी होगी। व्यक्ति के इरादे नेक हो और मेहनत तथा जज्बा ठीक दिशा में लगे तो कुछ भी असंभव नहीं है। गरीबी के दुष्चक्र को तोड़ने हेतु संबंधित लोगों को स्वयं भी सार्थक पहल करनी होगी। चम्मच से खिलाने की प्रवृत्ति से बाहर उन्हें अपने गौरव तथा आत्मसम्मान को पहचानना होगा,

तब ही जाकर बात बनेगी। रोजगार सृजन, सामाजिक आर्थिक विषमता को न्यूनतम करने तथा उपलब्ध संसाधनों का समुचित दोहन एवं रखरखाव करना सरकार की वरियता रहनी चाहिए। निःसन्देह हमने विगत लगभग सात दशकों में गरीबी-उन्मूलन एवं विकास की विभिन्न योजनाओं तथा कार्यक्रमों पर अरबों रू. खर्च किए है किन्तु आशातीत परिणाम नहीं मिल पाए है। इसके पीछे अन्य कारकों की अपेक्षा निम्न स्तरीय निगरानी तथा समीक्षा कारक है। संवैधानिक पदों पर विराजमान लोगों को अपने कर्तव्यों को ईमानदारी एवं पूरी निष्ठा से निभाने की आवश्यकता है। देश में बढ़ती असहिष्णुता के प्रचार की राजनीति पर श्री टी.एस. ठाकुर, भारत के मुख्य न्यायाधीश का यह कथन है कि यह एक सियासी मुद्दा है और देश की न्यायपालिका प्रत्येक नागरिक के अधिकारों का संरक्षण करने में हर तरह से सक्षम है एक तत्काल एवं स्टीक टिप्पणी है।

## सन्दर्भ

1. दी ट्रिब्यून, चण्डीगढ़, 4 दिसम्बर, 2015, पृष्ठ 14
2. दी ट्रिब्यून, चण्डीगढ़ 5 दिसम्बर, 2015, पृष्ठ 1
3. दैनिक ट्रिब्यून, बठिण्डा, 7 दिसम्बर, 2014, पृष्ठ 12
4. सचिन कुमार जैन, 'गरीबी की अवधारणा', www.mediafor rights.org
5. राम लखन मीना, 'गरीबी समस्या नहीं अभिशाप' blogspotcom. 08 अप्रैल 2011
6. Hi Wikipedia.org
7. योजना आयोग की रिपोर्ट, 'निर्धनता एक समस्या', पंजाब केसरी, 24 जुलाई, 2013, पृष्ठ 9
8. प्रतियोगिता दर्पण, अर्थव्यवस्था एक दृष्टि में, उपकार प्रकाशन, आगरा, 2015, पृष्ठ 22
9. लहरें' दैनिक ट्रिब्यून, बठिण्डा, 15 नवम्बर, 2015, पृष्ठ 1
10. दी ट्रिब्यून, चण्डीगढ़, 02 दिसम्बर, 2015 पृष्ठ 10
11. दी ट्रिब्यून, चण्डीगढ़, 18 दिसम्बर, 2015, पृष्ठ 2
12. दैनिक ट्रिब्यून, बठिण्डा, 15 नवम्बर, 2015, पृष्ठ 10
13. दैनिक ट्रिब्यून, बठिण्डा, 3 दिसम्बर, 2015, पृष्ठ 1
14. दैनिक ट्रिब्यून, चंडीगढ़, 19 दिसम्बर, 2015, पृष्ठ 12
15. दैनिक ट्रिब्यून, चंडीगढ़, 20 दिसम्बर, 2015, पृष्ठ 12
16. जयश्री सेनगुप्ता, 'ए स्ट्रोंग एंड पावरफूल इंडिया', दी ट्रिब्यून, चण्डीगढ़, 10 नवम्बर, 2015, पृष्ठ 8
17. दैनिक ट्रिब्यून, चण्डीगढ़, 23 दिसम्बर, 2015, पृष्ठ 3
18. दैनिक ट्रिब्यून, 7 दिसम्बर, 2015, बठिण्डा, पृष्ठ 1
19. दैनिक ट्रिब्यून, चण्डीगढ़, 9 दिसम्बर, 2015 पृष्ठ 8

20. दैनिक ट्रिब्यून, चण्डीगढ़, 30 नवम्बर, 2015, पृष्ठ 1
21. दी ट्रिब्यून, चण्डीगढ़, 22 दिसम्बर, 2015, पृष्ठ 14
22. राष्ट्रीय भौक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, अर्थव्यवस्था और लोकतांत्रिक राजनीति, नई दिल्ली, मार्च, 2015, पृष्ठ 38-39
23. दैनिक ट्रिब्यून, बठिण्डा, 6 दिसम्बर, 2015, पृष्ठ 1
24. दैनिक ट्रिब्यून, 15 नवम्बर, 2015, पृष्ठ 12
25. जयश्री सेनगुप्ता, 'ए स्ट्रोंग एंड पावरफूल इंडिया', दी ट्रिब्यून, चण्डीगढ़, 10 नवम्बर, 2015, पृष्ठ 8
26. दैनिक ट्रिब्यून, चण्डीगढ़, 29 नवम्बर, 2015, पृष्ठ 1
27. दैनिक ट्रिब्यून, चण्डीगढ़, 11 नवम्बर, 2015, पृष्ठ 1
28. दैनिक ट्रिब्यून, बठिण्डा, 1 दिसम्बर, 2015, पृष्ठ 9
29. दैनिक ट्रिब्यून, बठिण्डा 26 जुलाई 2017, पृष्ठ 9

# THE INDIAN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION

## NON-ELECTED MEMBERS OF THE EXECUTIVE COUNCIL

**President**
M. VENKAIAH NAIDU
Vice-President of India

**Chairman**
T.N. CHATURVEDI
Former Governor of Karnataka

**Vice President**
SHEKHAR DUTT
(Former Governor of Chhattisgarh)

**Co-opted Members**

ARUN KUMAR GROVER
Vice-Chancellor
Panjab University,
Chandigarh-160014.

JOSEPH K. ALEXANDER
Chairman
IIPA Kerala Regional Branch,
T.C.14/2144, Medes Lane, Palayam,
Thiruvananthapuram-695034.

S.S. KSHATRIYA
Chairman
IIPA Maharashtra Regional Branch,
16th Floor, New Administrative Building,
Opp. Mantralaya, Hutatma Rajguru Chowk,
Madame Cama Road, Mumbai-400032.

N. LOKENDRA SINGH
Chairman
IIPA Manipur Regional Branch,
C/o Registrar,
Manipur University,
Canchipur,
Imphal-795003.

AJIT KUMAR TRIPATHI
Chairman
IIPA Odisha Regional Branch,

**Secretaries to Government of India**

AJAY MITTAL
Secretary
Department of Personnel & Training,
Ministry of Personnel,
Public Grievances & Pensions,
Govt. of India,
Room No.112,
North Block,
New Delhi-110001.

ASHOK LAVASA
Secretary
Department of Expenditure,
Ministry of Finance, Govt. of India,
Room No.128 C, North Block,
New Delhi-110001.

AMITABH KANT
Chief Executive Officer, NITI Aayog,
Govt. of India, NITI Bhavan,
Sansad Marg, New Delhi-110001.

**IIPA Academic Staff**

DOLLY ARORA
IIPA, New Delhi-110002.

K.K. PANDEY
IIPA, New Delhi-110002.

GIRISH KUMAR
IIPA,
New Delhi110002.

**Director & Member-Secretary**
TISHYARAKSHIT CHATTERJEE
Indian Institute of Public Administration
I.P. Estate, Ring Road,
New Delhi-110002.

Telegram: ADMNIST

Telephone: 23702400-17

R.N.I No. 4809/57

# INDIAN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION
# NEW DELHI

## INDIAN JOURNAL OF PUBLIC ADMINISTRATION

(Quarterly: published since January 1955)
Editor: MAHENDRA PRASAD SINGH

Yearly Subscription:
**Individuals**: (Inland) Rs.425.00; (Abroad) $120 or £48;
Single Copy: (Inland) Rs.120.00; (Abroad) $30 or £12;
Special Number: (Inland) Rs.275.00; (Abroad) $80 or £ 36
**Institution/Library**: (Inland) Rs. 700.00; (Abroad) $ 240.00 or £ 96.00
**Life Members of IIPA:** Annual subscription: Rs.300.00; Single Copy Rs.75.00; Special Number Rs.200.00

## IIPA NEWSLETTER

(Monthly recorder of national and international news of public administration and allied matters since 1956)
Editor: TISHYARAKSHIT CHATTERJEE

Yearly Subscription: India: Rs. 10.00; Abroad: $ 4.00 or £ 2.00

## DOCUMENTATION IN PUBLIC ADMINISTRATION

(Quarterly: Published since 1973)
Editor: TISHYARAKSHIT CHATTERJEE, Director, lIPA, New Delhi
Assistant Editor: A.K. NATH, Dy. Librarian, lIPA, New Delhi
Yearly Subscription: India: Rs. 150.00; Abroad: $ 60.00 or £ 24.00

## NAGARLOK

(Urban Affairs Quarterly: Published since 1969)
Editor: TISHYARAKSHIT CHATTERJEE, Director, lIPA, New Delhi
Assistant Editor: V.N. ALOK, Associate Professor in Urban Finance, IIPA, New Delhi
Yearly Subscription: India: Rs. 200.00.

## लोक प्रशासन (अर्ध–वार्षिक)

सम्पादकः एस. एन. मिश्र

वार्षिक शुल्क : आजीवन सदस्य-रू. 150, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 200, संस्थागत ग्राहक-रू. 300
सामान्य अंक : आजीवन सदस्य-रू. 75, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 100, संस्थागत ग्राहक-रू. 150
विशेषांक : आजीवन सदस्य-रू. 100, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 200, संस्थागत ग्राहक-रू. 200

Bank drafts/postal orders should be drawn only in favour of "**Director, Indian Institute of Public Administration**"
Note: Subscribers are advised to secure safe delivery through Registered Post @ Rs. 100.00 per periodical.

*For complete information about IIPA publications write to:*

THE EDITOR
INDIAN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION
Indraprastha Estate, Ring Road, New Delhi-110 002 (India)

Edited by S.N. Mishra and printed and published by Snehlata for Indian Institute of Public Administration, New Delhi, Ph.: 23468368 and Printed at New United Process, A-26, Naraina Industrial Area, Phase-II, New Delhi-110 028.